मास्टर ऑफ आर्ट्स (संस्कृत)

Master of Arts (Sanskrit)

प्रथम सेमेस्टर - एम0 ए0 एस0 एल - 503

भारतीय दर्शन

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम समिति **MASL-503**

कुलपति (अध्यक्ष)
उ0 मु0 वि0 वि0, हल्द्वानी

प्रोफे0 ब्रजेश कुमार पाण्डेय,
विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र,
जे0 एन0 यू0 दिल्ली,

प्रोफे0 रमाकान्त पाण्डेय,
राष्ट्रीय संस्कृत संस्था,जयपुर परिसर, राजस्तान,

प्रोफे0 कौस्तुभानन्द पाण्डेय,
संस्कृत विभाग, कुमाउँ विश्वविद्यालय,अल्मोड़ा,

प्रो0 एच0पी0 शुक्ल,
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उ0 मु0 वि0 वि0, हल्द्वानी

डॉ0 देवेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
उ0 मु0 वि0 वि 0, हल्द्वानी

डॉ0 नीरज कुमार जोशी,
असि. प्रोफे.-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उ0 मु0 वि0 वि 0, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ0 देवेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य,संस्कृत विभाग
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

इकाई लेखन	**इकाई संख्या**
डॉ0 लालाशंकर गयावाल भरतपुर राजस्थान	**खण्ड 1 (इकाई 1 से 3)**
डॉ0 योगेन्द्र कुमार नेशनल पी.जी.कालेज बड़हलगंज, गोरखपुर	**खण्ड 2 (इकाई 1 से 5)**
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र सहायक आचार्य,संस्कृत विभाग उ0मु0वि0वि 0, हल्द्वानी	**खण्ड 3 (इकाई 1 से 5)**
डॉ0 पंकज मिश्र राजधानी कालेज,राजा गार्डेन,दिल्ली	**खण्ड 4 (इकाई 1 से 6)**
डॉ0 माया शुक्ला एम.बी.पी.जी;कालेज, हल्द्वानी	**खण्ड 5 (इकाई 1 से 5)**

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष : 2020

ISBN : **978-93-84632-23-6**
प्रकाशक: (उ 0 मु 0 वि 0 वि 0) -263139

मुद्रक:

नोट : - इस अध्ययन सामग्री का प्रकाशन छात्र हित में शीघ्रता के कारण किया गया है सम्पादित संस्करण का प्रकाशन अगले वर्ष सम्भव है। इस सामग्री का उपयोग अन्यत्र कहीं भी उ0मु0वि की लिखित या प्रशासनिक अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता है।

अनुक्रम

खण्ड -1 अद्वैत वेदान्त	**पृष्ठ संख्या 01 - 04**
इकाई 1- विशिष्टाद्वैतवेदान्त दर्शन का सिद्धान्त	05-21
इकाई 2- द्वैत वेदान्त दर्शन का सिद्धान्त	22-36
इकाई 3- द्वैताद्वैत वेदान्त दर्शन का सिद्धान्त	37-48
खण्ड 2- सांख्यकारिका	**पृष्ठ संख्या 49**
इकाई 1- सांख्यदर्शन का संक्षिप्त इतिहास एवं तत्व मीमांसा	50-69
इकाई 2- दु:खत्रय, सत्कार्यवाद पुरूष –बहुत्व, प्रकृति –पुरूष समबन्ध	70- 83
इकाई 3- सांख्यकारिका 1 से 10 मूल पाठ, अर्थ व्याख्या	84-102
इकाई 4- सांख्यकारिका 11 से 20 मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या	103-118
इकाई 5 – सांख्यकारिका 21 से 30 मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या	119-134
खण्ड 3- वेदान्तसार	**पृष्ठ संख्या 135**
इकाई 1- वेदान्त दर्शन का ऐतिहासिक स्वरूप	136-147
इकाई 2- वेदान्तसार के प्रमुख सिद्धान्त का समीक्षक	148-157
इकाई 3- मंगलाचरण से अनुबन्ध चुतुष्ट्य तक	158-186
इकाई 4- आवरण एवं विक्षेप शक्ति	187- 208
इकाई 5- सूक्ष्म शरीर एवं पंचीकरण	209-229

प्रथम सेमेस्टर /SEMESTER-I

खण्ड -1 अद्वैत वेदान्त

इकाई 01 : विशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन का सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 इकाई की पृष्ठभूमि
1.3.1 विशिष्टाद्वैत का उद्भव
1.3.2 विशिष्टाद्वैत का साहित्य
1.4 ज्ञान मीमांसा
1.4.1. ज्ञान
1.4.2 ज्ञान के साधन -प्रमाण
1.5 तत्व मीमांसा
1.5.1 विशिष्टाद्वैत
1.5.2 तत्व - ईश्वर, चित् तथा अचित्
1.5.3 सृष्टि प्रक्रिया
1.5.4 बन्धन और मोक्ष
1.5.5 शरणागति
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 बोध प्रश्नों / अभ्यासों के उत्तर
1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्यसामग्री
1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भारतीय दर्शन में विशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन से सम्बन्धित यह इकाई है, इससे पूर्व के इकाईयों के अध्ययन से आप बता सकतें हैं कि भारतीय दर्शन किसे कहते हैं ? भारतीय दर्शन के कितने प्रकार हैं ?

भारतीय दर्शन दो भागों में विभक्त है- आस्तिक तथा नास्तिक। आस्तिक दर्शन वेद के समर्थक हैं ये षड्विध हैं- न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग तथा मीमांसा और वेदान्त। नास्तिक दर्शन वेद के निन्दक हैं ये हैं- चार्वाक, जैन तथा बौद्ध। षड्विध आस्तिक दर्शनों में वेदान्त दर्शन का विशिष्ट स्थान है। वेदान्त दर्शन की भी कई शाखायें हैं । अद्वैत वेदान्त दर्शन के पश्चात् वेदान्त दर्शन के कौन-कौन प्रमुख सिद्धान्त हैं उन सिद्धांतों का परिचय इस इकाई में प्राप्त करेंगें।

इस इकाई के अध्ययन के बाद वैष्णव सम्प्रदाय के प्रमुख दार्शनिकों के चिन्तन विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त से आप अच्छी तरह से परिचित हो जायेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

- बता सकेंगे कि वेदान्त दर्शन के कौन - कौन सम्प्रदाय हैं।
- जान पायेंगे प्रमुख दार्शनिक सिंद्धान्त विशिष्टाद्वैत को।
- परिचित हो पायेंगें इसके ज्ञान मीमांसा के तत्वों से
- तथा इसके तत्वों मीमांसा के प्रमुख तत्वों से भी अवगत हो सकेंगे ।

1.3 इकाई की पृष्ठभूमि

1.3.1 विशिष्टाद्वैत का उद्भव

श्रुतियों पर आधारित तथा प्रस्थानत्रयी की व्याख्या के रूप में पल्लवित हिन्दू दर्शन को ही वेदान्त दर्शन के नाम से जाना जाता है। आचार्य शंकर के अद्वैतवाद के बाद रामानुज का विशिष्टाद्वैत, मध्व का द्वैत तथा निम्बार्क का द्वैताद्वैत आदि वेदान्त दर्शन का विकास हुआ । विशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन को विकसित करने का श्रेय आचार्य रामानुज को है। इनका जन्म दसवीं शताब्दी के आसपास माना जाता है। रामानुज के दर्शन के प्रचार ने भक्तिमार्ग को पुष्ट किया ।

1.3.2 विशिष्टाद्वैत का साहित्य

विशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन का उद्भव बोधायन रचित ''ब्रह्मसूत्रत्ति '' से माना जाता है। स्वयं रामानुज

कहते हैं-

यथार्थं सर्वं विज्ञानम् इति वेदविदां मतम्।
श्रुतिस्मृतिभ्यः सर्वस्य सर्वात्मव प्रतीतितः।।

रामानुज ने प्रस्थानत्रयी (श्रीमद्भगवद्गीता, उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र) भाष्य की श्रृंखला में ''श्रीभाष्य'' की रचना की। रामानुज के अन्य रचित ग्रन्थ हैं- वेदान्तसार, वेदान्तदीप, वेदार्थसंग्रह। वेदार्थसंग्रह उपनिषद वाक्यों की विशिष्टाद्वैतपरक व्याख्या तथा भक्ति सिद्धान्तों का दार्शनिक निरूपण करता है। गद्यत्रय एवं नित्यग्रन्थ श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के समर्थन में लिखे गये अन्य ग्रन्थ हैं। सुदर्शन भट्ट ने श्रीभाष्य पर श्रुतप्रकाशिका टीका लिखी।

1.4 ज्ञान मीमांसा

1.4.1 ज्ञान

रामानुज ज्ञान को द्रव्य मानते हैं। द्रव्य के दो प्रकार हैं- जड़ और अजड़। रामानुज ने ज्ञान को 'अजड़' माना है क्योंकि वह चेतन जीव और जड़ जगत् दोनों से भिन्न है। ज्ञान जड़ पदार्थों से भिन्न है क्योंकि वह उनके समान स्वचेतन और स्वयंवेद्य नहीं है, तथा ज्ञान न स्वयं को और न पदार्थों को जान सकता है। ज्ञान कभी स्वयं के लिये नहीं होता, वह सदा परार्थ अर्थात् आत्मा या ज्ञाता के लिये होता है। वह स्वयं को और ज्ञेय पदार्थों को प्रकाशित करता है, जिससे आत्मा उन्हें जान सके। रामानुज के अनुसार आत्मा ज्ञाता है जो ज्ञानस्वरूप और ज्ञानाश्रय दोनों है, किन्तु ज्ञानमात्र नहीं है। ज्ञान सत् पदार्थ का ही होता है, और पदार्थ के अनुरूप होता है। इसे सत् ख्याति या यथार्थख्याति कहते हैं।

सत्ख्यातिवाद- अर्थात् सभी विज्ञान यथार्थ हैं। विज्ञान की ज्ञान मीमांसा में यह एक सबसे महत्वपूर्ण बात है। वे सभी ज्ञान को यथार्थ मानते हैं। उनके अनुसार प्रमा के ज्ञान का कोई न कोई विषय होता है जिसकी सत्ता को वह प्रकाशित करता है। इसलिये उसे असत्य या मिथ्या नहीं कह सकते हैं। रामानुज के अनुसार भ्रम ज्ञान और असत्य ज्ञान भी सत्य होता है क्योंकि उसका विषय असत्य नहीं होता। इसलिये भ्रम भी सत्य होता है। रस्सी में सर्प की प्रतीति कपोल कल्पना नहीं है, क्योंकि रस्सी और सर्प दोनों की सत्ता अनुभवसिद्ध है।

प्रमा - वस्तुओं के रूप का प्रकाशक ज्ञान बुद्धि के द्वारा इन्द्रियों के सहयोग से अपने प्रकाश्य के संबंध में करता है, प्रकाश्य वस्तु की वास्तविक अवस्था और व्यावहारिक उपयोगिता का ज्ञान प्रमा कहलाता है। रामानुजाचार्य के अनुसार प्रमा या सम्यक् ज्ञान सदा सविकल्पक होता है, अतः किसी निर्विकल्पक वस्तु का ज्ञान असम्भव है।

1.4.2 ज्ञान के साधन (प्रमाण)

प्रमा ज्ञान का पर्याय है। प्रमा की उत्पत्ति के कारण को प्रमाण कहते हैं। रामानुज ज्ञानोत्पत्ति के लिये

प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द, इन तीनों प्रमाणों को मान्यता देते हैं, एवं अन्य प्रमाणों को इन्हीं में अन्तर्भूत मानते हैं।

प्रत्यक्ष- साक्षात्कारिणी प्रमा का कारण प्रत्यक्ष है। साक्षात्कारिणी प्रमा वस्तु और इन्द्रियों के सन्निकर्ष से उत्पन्न होती है। रामानुज निर्विकल्प और सविकल्प प्रत्यक्ष का भेद स्वीकार करते हैं, किन्तु न्याय के विपरीत, वे यह मानते हैं कि निर्विकल्प प्रत्यक्ष निष्प्रकारक या निर्धर्मक ज्ञान नहीं हैं, किन्तु उसमें भी जाति-धर्म का ग्रहण होता है, यद्यपि यह ज्ञात नहीं होता है कि यह इसका जातिधर्म है जो इस जाति के समस्त व्यक्तियों में समान रूप से पाया जाता है। वस्तु का दूसरी, तीसरी बार प्रत्यक्ष सविकल्पक होता है जिसमें जातिधर्म का जातिधर्म के रूप में ज्ञान होता है।

अनुमान- रामानुज द्वारा अनुमान का निरूपण न्याय के समान ही है। अनुपलब्ध को उपलब्ध कराना ही अनुमान का फल है। अनुमान प्रत्यक्ष के समान सविशेष विषयक है। अनुमिति ज्ञान का कारण है। अनुमान दो प्रकार के होते हैं- स्वार्थानुमान एवं परार्थानुमान। स्वार्थानुमान व्यक्ति अपने स्वयं के लिये करता है। परार्थानुमान दूसरों को बताने के लिये किया जाता है। परार्थानुमान पाँच चरणों में पूर्ण होता है- प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। अनुमान के आगमनात्मक तथा निगमनात्मक प्रकारों का भी वर्णन श्रीभाष्य में प्राप्त होता है।

शब्द- लौकिक और वैदिक भेद से दो प्रकार के हैं। रामानुज के अनुसार शब्द का अर्थ वैदिक अर्थात् वेद ही है। नैयायिकों की तरह वे वेद को आप्त नहीं मानते। इन्होंने परम तत्व का निरूपण करने वाली स्मृतियों और पुराणों को भी वेद जैसा प्रामाणिक माना है। शब्द प्रमाण में रामानुज ने पांचरात्र आगम को वेद के समकक्ष रखा है। वे ज्ञानकर्म-समुच्चयवादी हैं। वे यह मानते हैं कि मीमांसा और वेदान्त एक ही शास्त्र के दो भाग हैं। ब्रह्मजिज्ञासा के पूर्व धर्मजिज्ञासा आवश्यक है। सत्कर्म से चित्तशुद्धिहोती और इसका बोध होता है कि केवल कर्म से मोक्ष नहीं मिल सकता, उसके लिये ब्रह्मज्ञान आवश्यक है।

बोधप्रश्न

प्र.(1.) निम्न वाक्यों में सही के आगे सही तथा असत्य के आगे (x) का अंकित करें।

(क) रामानुज ने श्री सम्प्रदाय की स्थापना की ( )

(ख) ये शंकराचार्य के अनुयायी थे ( )

(ग) 'वेदार्थसंग्रह' के रचना कार रामानुज थे ( )

(घ) रामानुज ज्ञान को द्रव्य मानते हैं। ( )

(ङ) रामानुज चार प्रमाण मानते हैं ( )

अभ्यास-

प्रश्न (1.) रामानुज के अनुसार कितने प्रमाण हैं, नाम लिखें-

.....

.....

.....

.....

.....

बोधप्रश्न-

प्र.(2.) निम्न प्रश्नों के उत्त र लिखें-

(क) रामानुज किस वाद के प्रतिपादक आचार्य हैं..... ।

(ख) विशिष्टाद्वैत का विच्छेद करें.....।

(ग) प्रस्थानत्रयी से तात्पर्य है .....।

(घ) परार्थानुमान में कितने वाक्य होते हैं..... ।

(ङ) रामानुज की सृष्टि प्रक्रिया किस दर्शन के समान है .....।

अभ्यास

प्रश्न (2.) सत्ख्याति से क्या तात्पर्य है लिखें

.....

.....

.....

.....

.....

1.5 तत्व-मीमांसा

1.5.1 विशिष्टाद्वैत (विशिष्टअद्वैत)

रामानुजाचार्य के अनुसार द्वैत-रहित अद्वैत और अद्वैत-शून्य द्वैत दोनों ही कोरी कल्पना हैं क्योंकि भेद के बिना अभेद और अभेद के बिना भेद सिद्ध नहीं होता। अतः दोनों सदा साथ रहते हैं और इनमें पार्थक्य सम्भव नहीं है। तत्त्व सदा द्वैतविशिष्ट-अद्वैत होता है। इसी का संक्षिप्त रूप विशिष्टरूप है। द्वैत विशेषण है, अद्वैत विशेष्य है और विशेषणयुक्त विशेष्य को विशिष्ट कहते हैं । यद्यपि रामानुज ने द्वैत और अद्वैत दोनों को सत्य और अपृथक् माना है तथापि वे दोनों को समान स्तर के नहीं मानते। अद्वैत मुख्य है और द्वैत गौण है। अद्वैत आत्मरूप है, द्रव्य है, अङ्गी है। द्वैत शरीररूप है, गुण है, अङ्ग है। अद्वैत विशेष्य है, द्वैत विशेषण है। अतः द्वैत अद्वैत पर आश्रित रहता है। द्वैत अद्वैत का विशेषण बन कर ही उससे अपृथक् रहता है। यह विशिष्टाद्वैत है जो द्वैताद्वैत से भिन्न है क्योंकि उसमें द्वैत और अद्वैत दोनों समान रूप से सत्य और एक ही स्तर के होते हैं।

रामानुज चित्, अचित् और ईश्वर, इन तीनों तत्त्वों को (तत्त्व-त्रय) मानते हैं। चित् चेतन भोक्ता जीव है। अचित् जड़ भोग्य जगत् है। ईश्वर दोनों का अन्तर्यामी है। चित् और अचित् दोनों नित्य और परस्पर-स्वतन्त्र द्रव्य हैं। किन्तु दोनों ईश्वर पर आश्रित हैं और सर्वथा उनके अधीन हैं। दोनों स्वयं में द्रव्य हैं, किन्तु ईश्वर के गुण या धर्म हैं। दोनों ईश्वर के शरीर हैं और ईश्वर उनका अन्तर्यामी आत्मा है। जीव अपने शरीर का आत्मा है, किन्तु ईश्वर का शरीर है जो जीव का भी आत्मा है। शरीर और आत्मा का सम्बन्ध अपृथक् सिद्ध है जो आन्तरिक अपार्थक्य सम्बन्ध है। रामानुज के अनुसार 'शरीर' वह है जो आत्मा द्वारा धारण किया जाये (धार्य), नियमन किया जाये(नियाम्य) और अपनी अर्थसिद्धि के लिये साधन के रूप में प्रवृत्त किया जाये (शेष), तथा आत्मा' वह है जो शरीर को धारण करे (धर्ता), नियमन करे (नियन्ता) और जो साधन रूप में प्रवृत्त होने वाले शरीर का साध्य हो (शेषी)। यह सब चेतन और अचेतन विश्व परमपुरूष ईश्वर द्वारा नियाम्य, धार्य तथा शेष होने के कारण उनका शरीर है। ईश्वर चिदचिद्विशिष्ट है। चिदचिद् ईश्वर के विशेषण, धर्म, गुण, प्रकार, अंश, अंग, शरीर, नियाम्य, धार्य और शेष हैं, तथा ईश्वर उनके विशेष्य, धर्मी, द्रव्य, प्रकारी, अंगी, शरीरी या आत्मा, नियन्ता, धर्ता और शेषी हैं। चित् और अचित् दोनों ईश्वर के समान नित्य तत्त्व हैं, किन्तु ईश्वर से बाह्य और पृथक् नहीं हैं। ये ईश्वर का शरीर हैं। ईश्वर में सजातीय और विजातीय भेद नहीं है क्योंकि ईश्वर के समान या भिन्न कोई अन्य स्वतन्त्र तत्त्व नहीं है। किन्तु ईश्वर में स्वगत भेद विद्यमान हैं क्योंकि उनका शरीर नित्य एवं परस्पर भिन्न चित् और अचित् तत्त्वों से निर्मित है। ईश्वर का अपने चिदचिद्-शरीर से सम्बन्ध स्वाभाविक और सनातन है।

1.5.2 तत्वत्रय

ईश्वर रामानुजाचार्य के ईश्वर के निरूपण में तीन बिन्दु मुख्य हैं। प्रथम, ईश्वर और ब्रह्म एक ही हैं। ब्रह्म

या ईश्वर सविशेष सगुण हैं तथा चिदचिद्-विशिष्ट हैं। ईश्वर इस चिदचिद्रूप विश्व का अन्तर्यामी आत्मा है तथा इस सकल जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-लय का कारण भी है। रामानुज के अनुसार ईश्वर जगत् का अभिन्न-निमित्तोपादान कारण है। चित् या जीव एवं अचित् या जड़ तत्त्व दोनों नित्य पदार्थ हैं तथा नित्य होने के कारण उत्पत्ति-विनाशरहित हैं। अतः सृष्टि का तात्पर्य इनके स्थूलरूप धारण करने से है और प्रलय का तात्पर्य इनके सूक्ष्मरूप में चले जाने से है। प्रलयकाल में चित् और अचित् अपनी सूक्ष्मावस्था में रहते हैं, यह ब्रह्म की कारणावस्था है। सृष्टि के समय चिदचित् स्थूल रूप धारण कर लेते हैं, यह ब्रह्म की कार्यावस्था है।

ईश्वर हेयगुणरहित और अशेषकल्याणगुणसागर है। वे नारायण या वासुदेव हैं। लक्ष्मी उनकी पत्नी हैं। शुद्धसत्त्वनिर्मित वैकुण्ठ उनका निवास है। वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और करुणासागर हैं। उनके दिव्यगुण नित्य, शुद्ध और अनन्त हैं। उनका ज्ञान, आनन्द, प्रेम, ऐश्वर्य, बल, शक्ति, कृपा आदि अपार हैं। ईश्वर एक हैं, किन्तु अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के कारण वे स्वयं को पाँच रूपों में प्रकट करते हैं- अन्तर्यामी, पर, व्यूह, विभव और अर्चावतार। चिदचिद्विशिष्ट ईश्वर या ब्रह्म का उपनिषदों में प्रतिपादन उपलब्ध है।

चित् या चेतन जीव यद्यपि ईश्वर का विशेषण, प्रकार या गुण है, तथापि वह स्वयं चेतन द्रव्य है। जीव एक नहीं, अनेक हैं। जीव नित्य, जन्म-मरणरहित और अणुरूप है। वह शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन, अहंकार और बुद्धि से विलक्षण है। वह स्वप्रकाश चेतन द्रव्य है और वह अपने धर्मभूत ज्ञान का आश्रय है। साथ ही वह नित्य स्वचेतन ज्ञाता या द्रष्टा है, अतः ज्ञानस्वरूप भी है। ज्ञान उसका आवश्यक, अनिवार्य और अपृथक्सिद्ध स्वरूप है। अतः उसे एक साथ ज्ञानस्वरूप और ज्ञानाश्रय कहा जाता है। वह स्वभाव से आनन्दरूप है। रामानुज ने चित् या जीवात्मा के तीन प्रकार माने हैं।

1. नित्य-मुक्त जीव जो कभी बद्ध नहीं रहे, जो अविद्या, कर्म और प्रकृति से सदा मुक्त हैं एवं जो वैकुण्ठ में सदा भगवत्-सेवा में रत रहते हैं। ये शेष, गरूड, विश्वक्सेन आदि हैं ।
2. मुक्त जीव जो बन्धन से मुक्त हो चुके हैं ।
3. बद्ध जीव जो अविद्या और कर्म के कारण जन्म-मरण रूपी संसारचक्र में घूम रहे हैं तथा विविध दुःख भोग रहे हैं।

चित्त और ईश्वर

जीव और ईश्वर में विशेषण-विशेष्य, गुण-द्रव्य, अंग-अंगी और शरीर-आत्मा का सम्बन्ध है तथा जीव की सार्थकता ईश्वर का अविभाज्य शुद्ध अंग बनकर ईश्वरीय ज्ञान और आनन्द का अनुभव करने में है। रामानुज जीव और ईश्वर में भेद, अभेद या भेदाभेद सम्बन्ध स्वीकार नहीं करते। उन्होनें इन तीनों सम्बन्धों का खण्डन किया है। शुद्ध भेद या शुद्ध अभेद (भेदशून्य अभेद) कल्पनामात्र है, क्योंकि भेद और अभेद सदा साथ-साथ रहते हैं जिन्हें अलग नहीं किया जा सकता। अद्वैत विशेष्य है

जो सदा द्वैतविशेषण से विशिष्ट रहता है। यही विशिष्टाद्वैत नाम की सार्थकता है। चिदचित्-विशिष्ट ईश्वर ही ब्रह्म है। रामानुज ने समवाय सम्बन्ध का भी खण्डन किया है क्योंकि उनके अनुसार समवाय बाह्य सम्बन्ध है और अनवस्थादोष से दूषित है। रामानुज ने जीव और ईश्वर में अपृथक्सिद्धि नामक सम्बन्ध स्वीकार किया है जो आन्तर और वास्तविक सम्बन्ध है जीव ईश्वर पर सर्वथा आश्रित है और ईश्वर से अपृथक् है । अचित् ज्ञान शून्य तथा विकारास्पद को अचित् कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है

1. **मिश्र सत्व** - इसमें सत्व, रजस् तथा तमस् तीनों गुण मिले रहते हैं, इसे प्रकृति या माया कहते हैं। यह जड़, भोग्य है, जगत् का उपादान कारण है। नित्य जड़ होते हुए भी यह ईश्वर का शरीर है। सृष्टि ईश्वर की लीला है और उनका संकल्प मात्र है।

2. **शुद्ध सत्व या नित्य विभूति** - रजस्तमः शून्य होने से अप्राकृत और दिव्य है। यह नित्य, अतिशयतेजोमय, ज्ञान एवं आनन्द का जनक, शुद्धसत्वरूप द्रव्यविशेष है। ईश्वर का विग्रह, नित्य तथा मुक्त शरीरों के शरीर, बैकुण्ठ लोक, भगवान् के विभव आदि भी इसी शुद्ध सत्व से निर्मित है। रामानुज के अनुसार आत्मा शरीर के बिना नहीं रहता, अतः मोक्ष दशा में कर्मजन्य प्राकृत देह पात के बाद मुक्तपुरुष को भगवत्संकल्प से निर्मित अप्राकृत शुद्धसत्वशरीर प्राप्त होता है।

3. **सत्व शून्य या काल** - काल सत्वशून्य जड़ द्रव्य है। दिक् को आकाश से अभिन्न माना गया है जो प्रकृति जन्य है।इस प्रकार रामानुज ने षड् द्रव्य स्वीकार किये हैं-

चेतन- चित् और ईश्वर।

जड़- प्रकृति और काल ।

अजड़- धर्मभूतज्ञान और नित्यविभूति ।

ये षड् द्रव्य अचित्, चित् तथा ईश्वर इन तीन तत्त्वों के अन्तर्गत समाविष्ट हो जाते हैं।

1.5.3 सृष्टि प्रक्रिया-

रामानुज के अनुसार अव्यक्त का विकास सांख्य दर्शन के अनुसार ही मानते हैं। अव्यक्त का प्रथम विकार महत् है, महत् से अहंकार की उत्पत्ति होती है। अहंकार तीन प्रकार के होते हैं- सात्विक , राजस् तथा तैजस्। अहंकार के सात्विक रूप से पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन ग्यारह इन्द्रियाँ उत्पन्न होती है। मन उभयात्मक है, यह अन्तरिन्द्रिय है, यह ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों दोनो में आता है। किन्तु रामानुज ने मन को ज्ञानेन्द्रियों के साथ रखा है। मन को इसके कार्य के अनुसार कई नाम दिये जाते हैं- मन जब निर्णय करता है तो यह बुद्धि है, अज्ञान से शरीर को जब आत्मा मानता है

तो अहंकार है, जब चिन्तन या विचार करता है तो चित्त है। रामानुज भूतादि की क्रमिक उत्पत्ति मानते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त चौबीस तत्वों से जीवात्मा और परमात्मा के लिये भोग्य वस्तुओं, भोग के साधन और भोग के स्थानों का निर्माण होता है। निर्माण का यह कार्य ब्रह्म के द्वारा होता है। सृष्टि के पूर्व की स्थिति को अद्वारक सृष्टि कहते हैं तथा ब्रह्म द्वारा की गई सृष्टि सद्वारक सृष्टि कहलाती है। सद्वारक सृष्टि की प्रक्रिया पंचीकरण है।

पंचीकरण- पंच महाभूतों का पूर्ण विकास हो जाने के बाद उनमें से प्रत्येक महाभूत के दो दो बराबर भाग किये जाते हैं। पुनः आधे भाग को चार-चार भागों में विभाजित किया जाता है। अपने आधे भाग के साथ शेष बचे चार महाभूतों के 1/8 भाग को जोड़ने से एक महाभूत का निर्माण होता है, चूँकि एक महाभूत में पाँचों तत्वों की उपस्थिति होती है अतः इसे पंचीकरण कहते हैं तथा जिस महाभूत में जिस तत्व की अधिकता होती है उसी के नाम से वह जाना जाता है।

जगत्- रामानुज अचित् द्रव्य से जगत् को उत्पन्न मानते हैं क्योकि अचित् एक नित्य द्रव्य है। सृष्टि के मूल में परब्रह्म का संकल्प है। ईश्वर के संकल्प से ही सृष्टि की उत्पत्ति होती है। इसलिए जगत् के उपादान तथा निमित्त दोनो कारण की सत्ता नित्य एवं सत्य है। ईश्वर और उसकी अंशभूता प्रकृति का कार्यरूप जगत् भी सत्य है। सत् कारण से सत् कार्य की उत्पत्ति होती है, क्योंकि कारण और कार्य में केवल अवस्था भेद का अंतर है। कारण स्वयं कार्य रूप में परिवर्तित हो जाता है। एक ही पदार्थ एक अवस्था विशेष में कारण कहलाता है और दूसरी अवस्था में **कार्य**- **कारणभूतद्रव्यस्यावस्थान्तरापत्तिरेव हि कार्यता- श्रीभाष्य 1/1/5** इसे ही सत्कार्यवाद कहतें हैं अर्थात् कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व अपने कारण में सत् रूप में विद्यमान रहता है, यहाँ कारण से कार्य का आविर्भाव होता है। रामानुज का सिद्धांत सत्कार्यवाद का सिद्धांत है। इसके अनुसार चित् और अचित् ही जगत् के रूप में प्रकट होते हैं , चित् और अचित् विकसित होकर नाम रूप धारण कर जगत् की संज्ञा प्राप्त कर लेते हैं। ईश्वर इन दोनो चित् और अचित् के साथ अपृथक् रूप से जुड़ा रहता है अर्थात् ब्रह्म भी कारण से कार्य रूप में परिवर्तित होता है। अतः जगत् ब्रह्म की स्थूलावस्था सिद्ध होती है। रामानुज जगत् को ब्रह्मात्मक मानते हैं। जगत् ब्रह्म में ही स्थित है, ब्रह्म ही उसका कारण है और वही उसका गन्तव्य भी है। जगत् की सत्ता पारमार्थिक है क्योंकि यह सविशेष ब्रह्म की विभूति है।आचार्य शंकर ने जगत् के मिथ्यात्व की सिद्धि के लिये माया सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं, रामानुज शंकर के इस सिद्धांत को मिथ्यावाद कहते हैं तथा इसका खण्डन करते हैं। मायावाद के खण्डन में रामानुज के द्वारा दिये गये तर्क को अनुपपत्ति कहते हैं ये सात हैं-

आश्रयानुपपत्ति,तिरोधानानुपपत्ति,स्वरूपानुपपत्ति,अनिर्वचनीयानुपत्ति,प्रमाणानुपपत्ति , निर्कानुपपत्ति

तथा निवृत्यनुपपत्ति ।

01.5.4 बन्धन और मोक्ष-

भारतीय दर्शन के सभी सम्प्रदाय जन्म-मृत्यु-चक्र को बन्धन तथा इसकी आत्यंतिक समाप्ति को मोक्ष नाम देते हैं। जीवों का बन्धन अविद्या और कर्म के कारण है । बन्ध और मोक्ष दोनों वास्तविक हैं । कर्म के कारण जीव का देह, प्राण, इन्द्रिय, अन्तःकरण आदि से सम्बन्ध होता है और यही उसका बन्धन है । शुद्ध चेतन जीव कर्म में क्यों फँसता है ? इसका कोई उत्तर नहीं है सिवाय इसके कि कर्म का जीव के साथ सम्बन्ध अनादि है । मोक्ष के लिये जीव को इस कर्म-मल को सर्वथा नष्ट करना आवश्यक है । ज्ञानकर्म-समुच्चय इसमें सहायक है । सत्कर्म चित्त को शुद्ध करते हैं। ज्ञान से चित्, अचित् और ईश्वर के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है । रामानुजाचार्य के अनुसार परज्ञान और पराभक्ति एक ही है और यही मोक्ष का कारण है। यह परज्ञान सविकल्प शाब्दबोध या बौद्धिक ज्ञान से भिन्न है, अन्यथा वेदान्तशास्त्र के सभी अध्येता मुक्त हो जायेंगे। परा भक्ति भी प्रपत्ति और स्मृति या उपासना का भगवत्साक्षात्काररूप चरम उत्कर्ष है जो भगवान् के अनुग्रह, कृपा या प्रसाद से ही सम्भव है। पर-ज्ञान या परा-भक्ति ईश्वर के स्वरूप का साक्षात् अनुभव है जो उनकी कृपा से ही सम्भव है। सत्कर्म और बौद्धिक ज्ञान का समुच्चय भक्ति का साधन है। भक्ति का अर्थ है प्रपत्ति और स्मृति। प्रपत्ति या शरणागति भगवत्प्राप्ति का सरल एवं सुनिश्चित साधन है।

भगवान् का वचन है-

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच।।

अर्थात् 'सब धर्मों को छोड़कर केवल मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुमको तुम्हारे सब पापों से मुक्त कर दूँगा।' भागवत में श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन, इस नवधा भक्ति में आत्मनिवेदन को शरणागति या प्रपत्ति की पराकाष्ठा बताया है। भागवत में कहा गया है कि जिस प्रकार भूख से व्याकुल पक्षियों के छोटे बच्चे, जिनके पंख अभी नहीं निकले हैं, अपने घोंसलों में माता की आतुरता से प्रतीक्षा करते हैं, जिस प्रकार छोटे बछड़े (बच्चे भी) भूख से व्याकुल होकर माता के दूध की प्रतीक्षा करते हैं, जिस प्रकार विरहिणी प्रिया अपने बाहर गये हुये प्रियतम के दर्शन के लिये दुःख से व्याकुल होकर तड़पती है। उसी प्रकार हे कमलनयन! यह हमारा मन आपके दर्शन के लिये तड़प रहा है। प्रपत्ति भगवान् के प्रति उत्कट प्रेम है, प्रेमा भक्ति है। रामानुज ने इसके साथ 'ध्रुवा स्मृति' को भी जोड़ दिया है। स्मृति का अर्थ है उपासना या ध्यान। ध्रुवा स्मृति में प्रेम और ज्ञान दोनों का संगम है। यह उत्कट प्रेम और निरन्तर चिन्तन का मिलन है। रामानुजाचार्य के अनुसार भक्ति का अर्थ है प्रपत्ति और ध्रुवा स्मृति। इस भक्ति का चरम उत्कर्ष भगवदनुग्रह से भगवान् के साक्षात् अनुभव में होता है। यही परा-भक्ति है, यही पर-ज्ञान है, यही ब्रह्म-साक्षात्कार है, यही मोक्ष है। आत्मा का आत्मस्वरूप बोध ही उसका मोक्ष है। जन्म मृत्यु से परे हो जाना मोक्ष है। जीवात्मा के कर्म नष्ट हो जाते हैं । यदि कर्म फल का नाश हो जाय तो शरीर सम्बन्ध की आवश्यकता

नहीं रहती है। इसलिये कर्मों और उनके फलों का आत्यन्तिक उच्छेद मोक्ष है। ईश्वर साक्षात्कार तथा पूर्ण ज्ञान की अवस्था में मोक्ष प्राप्त होता है अर्थात् जीवात्मा को परम पद प्राप्त हो जाता है।

मोक्ष के उपाय-

मोक्ष प्राप्ति के लिये सर्वोच्च साधन ईश्वर स्वयं है। इस संसार रोग की दवा ईश्वर की कृपा है। कर्म, ज्ञान, भक्ति इत्यादि सब साधन ईश्वर की कृपा प्राप्ति के लिये ही किये जाते हैं। कर्म और ज्ञान भक्ति के सहकारी हैं। तत्व ज्ञान के द्वारा जीवात्मा को अपने शुद्ध स्वरूप का बोध हो जाता है। ज्ञान और कर्म से हम अपने कर्म फलों का नाश कर सकते हैं।

भक्ति-

भगवत्साक्षात्कार के लिये चित् को ईश्वर में लगा देना ही भक्ति है। बुद्धि ही भक्ति का रूप ग्रहण कर लेती है, बुद्धि परक होने के कारण भक्ति को विशेष प्रकार का ज्ञान कहते हैं। भक्ति ज्ञान की पराकाष्ठा है। ज्ञान की चरम परिणति भगवान के प्रति परम प्रेम में होती है, इसे ही भक्ति कहते हैं। रामानुज ने ध्यान, उपासना, वेदना (ज्ञान) को भक्ति का पर्याय कहा है। कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग में समन्वय स्थापित करते हुए रामानुज कहते हैं कि भक्ति-रूप ज्ञान विशेष की उपपत्तिपर ईश्वराधन से प्राप्त ज्ञान से युक्त होकर कर्म या निष्काम कर्म करने से भक्ति योग की सिद्धि हो जाती है।

आत्मावलोकन के लिये पातंजल योग में उल्लिखित यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का अष्टांग योग साधन भक्ति का ही रूप है। इसके अतिरिक्त अर्चन, वन्दन, पादसेवन इत्यादि भागवत् दर्शन में मान्य क्रियाएँ भी आत्मावलोकन में सहायक हैं। अष्टांग योग की चरमोपलब्धि समाधि को रामानुज दर्शन में साधन ही माना गया है।

1.5. शरणागति-

भगवान् के प्रति भक्ति एवं प्रेम का मानव मात्र को अधिकार है। ज्ञान ईश्वर की कृपा से मिल सकता है। रामानुज दर्शन के अनुसार ईश्वर की कृपा प्राप्त करना ही मोक्ष का अन्यतम साधन है। ईश्वरार्पित होना ही प्रपत्ति अथवा शरणागति है। जब जीवात्मा ईश्वर को परम लक्ष्य के रूप में जान लेता है और उसे ही मोक्ष का सर्वोत्तम उपाय समझने लगता है तब वह शरणागति की मनःस्थिति में होता है अर्थात् ईश्वर की शरण में, ईश्वर का कृपा पात्र अपने आप को मानने लगता है। रामानुज ने शरणागति को भक्त के लिये आवश्यक प्रथम चरण और भक्ति की चरम परिणति माना है। सम्पूर्ण वेदान्त दर्शन और उसके विभिन्न सम्प्रदाय औपनिषदिक सिद्धान्त की व्याख्या करते हैं, परं मौलिकता की दृष्टि से रामानुज का विशिष्टाद्वैत दर्शन शंकराचार्य के दर्शन के समकक्ष माने जाते हैं। दोनो ही वेदान्त दर्शन एक दूसरे के पूरक तथा एक ही सिद्धान्त के दो पहलू हैं। दोनो अद्वैत मत के समर्थक हैं। रामानुज का वेदान्त दर्शन सविशेष ब्रह्म और जीव-जगत् के बीच शरीरात्मभाव सम्बन्ध द्वारा एकेश्वरवाद पर बल

देता है। रामानुज को भक्ति परक वेदान्त दर्शन को पुष्ट एवं विकसित करने का पूरा श्रेय जाता है। परवर्ती भक्ति परक वेदान्त दर्शनों जैसे मध्वाचार्य का द्वैतवाद, निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद, वल्लभ का शुद्धाद्वैतवाद तथा चैतन्य का अचिन्त्यभेदाभेदवाद में रामानुज दर्शन की छाप देखी जा सकती है। विशेष रूप से ब्रह्म और जीव तथा ब्रह्म और जगत् के सम्बन्ध की अवधारणाओं में, ज्ञान आदि के सम्बन्ध में मौलिक चिन्तन प्रस्तुत करने के कारण, भारतीय चिन्तन धारा में उनके विशिष्टाद्वैत दर्शन का विशिष्ट स्थान है।

बोधप्रश्न-

प्र.(3.) निम्न वाक्यों में सही के आगे सही तथा असत्य के आगे (x) का अंकित करें।

(क) रामानुज के अनुसार तीन तत्व होते हैं। ( )

(ख) रामानुज ने सत्ख्यातिवाद को नहीं माना है। ( )

(ग) ईश्वर और ब्रह्म एक ही हैं। ( )

(घ) रामानुज के चित् से तात्पर्य जीवात्मा से है। ( )

(ङ) बन्धन और मोक्ष प्रकृति को होता है। ( )

अभ्यास-

प्रश्न (3.) रामानुज के अनुसार विशिष्टाद्वैत को स्पष्ट करें-

.....

.....

.....

.....

प्रश्न (4.) शरणागति तथा प्रपत्ति से क्या तात्पर्य है।

.....

.....

.....

बोधप्रश्न-

प्र.(4.) निम्न प्रश्नों का उत्तर रिक्त स्थानों में भरें-

क. रामानुज किस वाद के प्रतिपादक आचार्य हैं .....।
ख. भक्ति से ..... प्राप्त होता है।
ग. मोक्ष किसको प्राप्त होता है।.....।
घ. जीवों का बन्धन किससे होता है .....।
ङ नवधा ..... है।

1.6 सारांश -

विशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन को विकसित करने का श्रेय आचार्य रामानुज को है। विशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन का सिद्धांत के प्रतिपादक आचार्य हैं। रामानुज ने प्रस्थानत्रयी भाष्य की श्रृंखला में ''श्रीभाष्य'' की रचना की। इनके अन्य ग्रन्थ हैं- वेदान्तसार, वेदान्तदीप, वेदार्थसंग्रह, गद्यत्रय एवं नित्यग्रन्थ। रामानुज ज्ञान को द्रव्य मानते हैं। द्रव्य के दो प्रकार हैं- जड़ और अजड़। रामानुज ने ज्ञान को 'अजड़' माना है। ज्ञान सत् पदार्थ का ही होता है और पदार्थ के अनुरूप होता है। इसे सत् ख्याति या यथार्थख्याति कहते हैं। सत्ख्यातिवाद- अर्थात् सभी विज्ञान यथार्थ हैं। प्रमा रामानुजाचार्य के अनुसार प्रमा या सम्यक् ज्ञान सदा सविकल्पक होता है, अतः किसी निर्विकल्पक वस्तु का ज्ञान असम्भव प्रमा ज्ञान का पर्याय है। प्रमा की उत्पत्ति के कारण को प्रमाण कहते हैं। रामानुज ज्ञानोत्पत्ति के लिये प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द, इन तीनों प्रमाणों को मान्यता देते हैं, एवं अन्य प्रमाणों को इन्हीं में अन्तर्भूत मानते हैं। प्रत्यक्ष साक्षात्कारिणी प्रमा का कारण है। साक्षात्कारिणी प्रमा वस्तु और इन्द्रियों के सन्निकर्ष से उत्पन्न होती है। अनुमान का निरूपण न्याय के समान ही है। अनुपलब्ध को उपलब्ध कराना ही अनुमान का फल है। अनुमान दो प्रकार के होते हैं स्वार्थानुमान एवं परार्थानुमान। परार्थानुमान पाँच चरणों में पूर्ण होता है- प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। शब्द लौकिक और वैदिक भेद से दो प्रकार के हैं। प्रमाण में रामानुज ने पांचरात्र आगम को वेद के समकक्ष रखा। विशिष्टाद्वैत रामानुजाचार्य के अनुसार द्वैत-रहित अद्वैत और अद्वैत-शून्य द्वैत दोनों ही कोरी कल्पना हैं क्योंकि भेद के बिना अभेद और अभेद के बिना भेद सिद्ध नहीं होता। अतः दोनों सदा साथ रहते हैं और इनमें पार्थक्य सम्भव नहीं है। तत्त्व सदा द्वैतविशिष्ट-अद्वैत होता है। इसी का संक्षिप्त रूप विशिष्टरूप है। द्वैत विशेषण है, अद्वैत विशेष्य है और विशेषणयुक्त विशेष्य को विशिष्ट कहते हैं।

रामानुज चित्, अचित् और ईश्वर, इन तीनों तत्त्वों को (तत्त्व-त्रय) मानते हैं। चित् चेतन भोक्ता जीव है। अचित् जड़ भोग्य जगत् है। ईश्वर दोनों का अन्तर्यामी है। चित् और अचित् दोनों नित्य और परस्पर-

स्वतन्त्र द्रव्य हैं। ईश्वर चिदचिद्विशिष्ट है। चिदचिद् ईश्वर के विशेषण, धर्म, गुण, प्रकार, अंश, अंग, शरीर, नियाम्य, धार्य और शेष हैं, तथा ईश्वर उनके विशेष्य, धर्मी, द्रव्य, प्रकारी, अंगी, शरीरी या

आत्मा, नियन्ता, धर्ता और शेषी हैं। चित् और अचित् दोनों ईश्वर के समान नित्य तत्त्व हैं, किन्तु ईश्वर से बाह्य और पृथक् नहीं हैं। ईश्वर का अपने चिदचिद्-शरीर से सम्बन्ध स्वाभाविक और सनातन है। ईश्वर रामानुजाचार्य के ईश्वर के निरूपण में तीन बिन्दु मुख्य हैं। प्रथम, ईश्वर और ब्रह्म एक ही हैं। रामानुज के अनुसार ईश्वर जगत् का अभिन्न-निमित्तोपादान कारण है। प्रलयकाल में चित् और अचित् अपनी सूक्ष्मावस्था में रहते हैं, यह ब्रह्म की कारणावस्था है। सृष्टि के समय चिदचित् स्थूल रूप धारण कर लेते हैं, यह ब्रह्म की कार्यावस्था है। ईश्वर हेयगुणरहित और अशेषकल्याणगुणसागर है। वे नारायण या वासुदेव हैं। लक्ष्मी उनकी पत्नी हैं। शुद्धसत्त्वनिर्मित वैकुण्ठ उनका निवास है। ईश्वर एक हैं, किन्तु अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के कारण वे स्वयं को पाँच रूपों में प्रकट करते हैं- अन्तर्यामी, पर, व्यूह, विभव और अर्चावतार। चित् या चेतन जीव यद्यपि ईश्वर का विशेषण, प्रकार या गुण है, तथापि वह स्वयं चेतन द्रव्य है। जीव एक नहीं, अनेक हैं। जीव नित्य, जन्म-मरणरहित और अणुरूप है। रामानुज ने चित् या जीवात्मा के तीन प्रकार माने हैं। नित्य-मुक्त जीव, मुक्त जीव तथा बद्ध जीव। जीव और ईश्वर में विशेषण-विशेष्य, गुण-द्रव्य, अंग-अंगी और शरीर-आत्मा का सम्बन्ध है तथा जीव की सार्थकता ईश्वर का अविभाज्य शुद्ध अंग बनकर ईश्वरीय ज्ञान और आनन्द का अनुभव करने में है। चिदचित्-विशिष्ट ईश्वर ही ब्रह्म है। रामानुज ने जीव और ईश्वर में अपृथक्सिद्धि नामक सम्बन्ध स्वीकार किया है जो आन्तर और वास्तविक सम्बन्ध है जीव ईश्वर पर सर्वथा आश्रित है और ईश्वर से अपृथक् है। अचित्- ज्ञान शून्य तथा विकारास्पद को अचित् कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है -मिश्र सत्व , शुद्ध सत्व या नित्य विभूति तथा सत्व शून्य या काल। सृष्टि प्रक्रिया रामानुज के अनुसार अव्यक्त का प्रथम विकार महत् है, महत् से अहंकार की उत्पत्तियॉ होती है। अहंकार तीन प्रकार के होते हैं- सात्विक , राजस् तथा तैजस्। अहंकार के सात्विक रूप से पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन ग्यारह इन्द्रियाँ उत्पन्न होती है। मन जब निर्णय करता है तो यह बुद्धि है, अज्ञान से शरीर को जब आत्मा मानता है तो अहंकार है, जब चिन्तन या विचार करता है तो चित्त है। रामानुज भूतादि की क्रमिक उत्पत्तियॉ मानते हैं। चौबीस तत्वों से जीवात्मा और परमात्मा के लिये भोग्य वस्तुओं, भोग के साधन और भोग के स्थानों का निर्माण होता है। सद्वारक सृष्टि की प्रक्रिया पंचीकरण है। पंचीकरण- पंच महाभूतों का पूर्ण विकास हो जाने के बाद उनमें से प्रत्येक महाभूतों की उपस्थिति होती है अतः इसे पंचीकरण कहते हैं तथा जिस महाभूत में जिस तŸव की अधिकता होती है उसी के नाम से वह जाना जाता है। जगत्- रामानुज अचित् द्रव्य से जगत् को उत्पन्न मानते हैं क्योकि अचित् एक नित्य द्रव्य है। ईश्वर के संकल्प से ही सृष्टि की उत्पत्तियॉ होती है। ईश्वर और उसकी अंशभूता प्रकृति का कार्यरूप जगत् भी सत्य है। सत् कारण से सत् कार्य की उत्पत्तियॉ होती है, इसे ही सत्कार्यवाद कहतें हैं रामानुज के अनुसार चित् और अचित् ही जगत् के रूप में प्रकट होते हैं, रामानुज जगत् को ब्रह्ममात्मक मानते हैं। बन्धन और मोक्ष जीवों का बन्धन अविद्या और कर्म के कारण है। बन्ध और मोक्ष दोनों वास्तविक हैं। कर्म के कारण जीव का देह, प्राण, इन्द्रिय, अन्तःकरण आदि से सम्बन्ध होता है और यही उसका बन्धन है। भारतीय दर्शन के

सभी सम्प्रदाय जन्म-मृत्यु-चक्र को बन्धन तथा इसकी आत्यंतिक समाप्ति को मोक्ष नाम देते हैं। आत्मा का आत्मस्वरूप बोध ही उसका मोक्ष है। जन्म मृत्यु से परे हो जाना मोक्ष है। भागवत में श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन, इस नवधा भक्ति में आत्मनिवेदन को शरणागति या प्रपत्ति की पराकाष्ठा बताया है। मोक्ष के उपाय- मोक्ष प्राप्ति के लिये सर्वोच्च साधन ईश्वर स्वयं है। कर्म, ज्ञान, भक्ति इत्यादि सब साधन ईश्वर की कृपा प्राप्ति के लिये ही किये जाते हैं। भक्ति- भगवत्साक्षात्कार के लिये चित् को ईश्वर में लगा देना ही भक्ति है। भक्ति ज्ञान की पराकाष्ठा है। प्रपत्ति या शरणागति ईश्वरार्पित होना अर्थात् ईश्वर की शरण में, ईश्वर का कृपा पात्र होना ही प्रपत्ति अथवा शरणागति है। रामानुज ने शरणागति को भक्त के लिये आवश्यक प्रथम चरण और भक्ति की चरम परिणति माना है।

सम्पूर्ण वेदान्त दर्शन और उसके विभिन्न सम्प्रदाय औपनिषदिक सिद्धान्त की व्याख्या करते हैं, परं मौलिकता की दृष्टि से रामानुज का विशिष्टाद्वैत दर्शन शंकराचार्य के दर्शन के समकक्ष माने जाते हैं। रामानुज को भक्ति परक वेदान्त दर्शन को पुष्ट एवं विकसित करने का पूरा श्रेय जाता है। विशेष रूप से ब्रह्म और जीव तथा ब्रह्म और जगत् के सम्बन्ध की अवधारणाओं में, ज्ञान आदि के सम्बन्ध में मौलिक चिन्तन प्रस्तुत करने के कारण, भारतीय चिन्तन धारा में उनके विशिष्टाद्वैत दर्शन का विशिष्ट स्थान है।

1.7 शब्दावली

अचित्- ज्ञानशून्य तथा विकारास्पद जड़ तत्व।

अद्वारक सृष्टि- इस सृष्टि के पूर्व की स्थिति को कहते हैं।

अनुपपत्तियाँ- आश्रयानुपपत्ति,तिरोधानानुपपत्ति,स्वरूपानुपपत्ति,अनिर्वचनीयानुपत्ति,प्रमाणानुपपत्ति , निर्कानुपपत्ति तथा निवृत्यानुपपत्ति ।

अष्टांग योग- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि क

ईश्वर- ईश्वर और ब्रह्म एक ही हैं।

चित्- चेतन जीव।

नवधा भक्ति- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।

प्रपत्ति - तात्पर्य देखें शरणागति।

शरणागति- ईश्वर की शरण में जाना ही शरणागति तथा प्रपत्ति है।

सद्वारक सृष्टि- ब्रह्म द्वारा की गई सृष्टि कहलाती है।

1.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1**1-क-** सही **ख-** गलत **ग-** सही **घ-** सही **ड-** गलत

2. (क) विशिष्टाद्वैतवाद

(ख) विशिष्ट अद्वैतवाद

(ग) श्रीमद्भगवद्गीता, उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र

(घ) पाँच वाक्य

(ङ) सांख्य दर्शन

3. **क-** सही **ख-** गलत **ग-** सही **घ-** सही **ड-** गलत

(4.) (क) विशिष्टाद्वैतवाद

(ख) मोक्ष

(ग) जीवात्मा को

(घ) अविद्या और कर्म से (ङ) भक्ति

अभ्यास-

(1.) देखें उपखण्ड- 1.4.2

(2.) देखें उपखण्ड- 1.4.2

(3.) देखें खण्ड- 1.6

(4.) देखें उपखण्ड- 1.5.5

1.9 संदर्भ ग्रन्थसूची

1.दासगुप्ता एस0 एन0 (1989) भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग- 3 राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर द्वितीय संस्करण.।

2. दत्त एवं चटर्जी (1994) भारतीय दर्शन, पुस्तक भण्डार, पटना।

3. शर्मा चन्द्रधर (1998) भारतीय दर्शन आलोचना एवं अनुशीलन मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली .

1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1.दासगुप्ता एस0 एन0 (1989) भारतीय दर्शन कोश, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर द्वितीय संस्करण.

2. शर्मा राममूर्ति (1998) अद्वैत वेदान्त, इतिहास तथा सिद्धान्त, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली।

3. ऋषि उमाशंकरशर्मा(1984) माधवाचार्यकृतसर्वदर्शनसंग्रह,चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी, तृतीय संस्करण।

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

- विशिष्टाद्वैत दर्शन के आधार पर तत्वत्रय का विश्लेषण करें।
- विशिष्टाद्वैत दर्शन के ज्ञान मीमांसा पर एक निबन्ध लिखें।
- विशिष्टाद्वैत दर्शन पर एक निबन्ध।
- विशिष्टाद्वैत दर्शन की परम्परा पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई 2: द्वैत वेदान्त दर्शन का सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 इकाई की पृष्ठभूमि -
2.3.1 द्वैत का उद्भव
2.3.2 द्वैत का साहित्य
2.4 ज्ञान मीमांसा
2.4.1. ज्ञान
2.4.2 ज्ञान के साधन (प्रमाण)
2.5 तत्व मीमांसा
2.5.1 द्वैतवाद
2.5.2 पदार्थ एवं द्रव्य
2.5.3 परमात्मा एवं जीव
2.5.4 मोक्ष का स्वरूप
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भारतीय दर्शन में भाग प्रथम के द्वैत वेदान्त दर्शन से सम्बन्धित यह इकाई है, इससे पूर्व के इकाईयों के अध्ययन से आप बता सकतें हैं कि आस्तिक दर्शन किसे कहते हैं तथा वे कितने हैं ? वेदान्त दर्शन के कितने सम्प्रदाय हैं ? भारतीय आस्तिक दर्शनों में वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्धित वेदान्त दर्शन का विशिष्ट स्थान है। वेदान्त दर्शन के भी कई शाखायें हैं । रामानुज के विशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन के पश्चात् वेदान्त दर्शन के कौन-कौन प्रमुख सिद्धान्त हैं उन सिद्धांतों का परिचय इस इकाई में प्राप्त करेंगें ।

इस इकाई के अध्ययन के बाद वैष्णव सम्प्रदाय के द्वैतवेदान्त दर्शन तथा उनके चिन्तन एवं सिद्धांतो से आप भली प्रकार से परिचित हो जायेंगे ।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

- बता सकेंगे कि वैष्णव वेदान्त दर्शन के कौन - कौन सम्प्रदाय तथा सिद्धान्त हैं ।
- इनके प्रमुख दार्शनिक सिंद्धान्तों को जान पायेंगे तथा इनके ज्ञान मीमांसा तथा तत्वों मीमांसा के प्रमुख सिद्धान्तों एवं तत्वों से परिचित हो जायेंगे ।

2.3 इकाई की पृष्ठभूमि

अन्य वैष्णव वेदांत सम्प्रदायों के समान मध्व दर्शन का ‘‘द्वैतवाद’’ भी शंकराचार्य के अद्वैतवाद के विरोध में खड़ा हुआ है। इस दर्शन की प्रसिद्धि रामानुज के दर्शन के जैसी ही है। इनके मत में निमित्त कारण तथा उपादान कारण का आत्यन्तिक भेद या द्वैत मान्य है। द्वैतवाद के समर्थन में मध्व ने सांख्य तथा न्याय-वैशेषिक दर्शनों के कुछ एक सिद्धांतो की महत्ता को स्वीकार करते हुए औपनिषदिक दर्शन की नयी व्याख्या प्रस्तुत की है।

2.3.1 द्वैत का उद्भव-

वैष्णव दार्शनिक मध्वाचार्य का जन्म 1197 ई. में दक्षिण में उडुली जिले के अन्तर्गत विल्व नामक ग्राम में हुआ था। मध्व को आनन्दतीर्थ, पूर्णबोध और पूर्णप्रज्ञ आदि नामों से जाना जाता है। उन्होंने ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषदों पर भाष्य लिखा है। इनका मत ब्रह्मसम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। इनके सिद्धान्त को द्वैतवाद के नाम से जाना जाता है। इस मत के सिद्धान्त का प्रतिपादक श्लोक सर्वथा स्मरणीय है-

श्रीमन्मध्वमते हरिः परतरः सत्यं जगत् तत्वतो,

भेदोजीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभावं गताः ।

मुक्तिर्नैजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत् साधनम्,

प्रत्यक्षादित्रितयं प्रमाणमखिलाम्नायैक वेद्यो हरिः ।।

2.3.2 द्वैत का साहित्य

मध्व के द्वारा लिखित प्रमुख ग्रन्थों में प्रस्थानत्रय (ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता तथा उपनिषद्) पर भाष्य, ब्रह्मसूत्र पर अणुव्याख्यान नामक ग्रन्थ, भागवतपुराण पर भागवत-तात्पर्य-निर्णयटीका आदि हैं। उपाधिखण्डन, मायावादखण्डन, मिथ्यावानुमानखण्डन, तत्वोद्योत, तत्वविवेक, तत्वसंख्यान आदि भी इनकी अन्य रचनायें हैं।

2.4 ज्ञान मीमांसा

2.4.1. ज्ञान का स्वरूप

अन्य वैष्णव वेदान्तियों के सदृश मध्व भी ज्ञान के सविशेष-विषयत्व, स्वतः प्रामाण्य, वस्तुवाद एवं बाह्यार्थवाद का समर्थन करते है। इनकी ज्ञान मीमांसा न्याय-वैशेषिक की अपेक्षा सांख्य पर अधिक आधारित है। चूँकि कोई वस्तु निर्विशेष सामान्य मात्र नहीं, अपितु असंख्य विशेषों वाली होती है। अतः निर्विशेष ज्ञान असम्भव है। ज्ञान किसी वास्तविक पदार्थ का होता है, उस वस्तु के आकारों वाली बुद्धिवृद्धि के माध्यम से ही ज्ञाता को वस्तु का ज्ञान होता है। जैसी वस्तु हो ठीक उसी रूप का ज्ञान, अर्थात् यथार्थ को ग्रहण करने वाला ज्ञान प्रमा है जो स्वाभाविक रूप में स्वतःप्रमाण है। ज्ञान का स्वतःप्रामाण्य स्वयं सिद्ध है-उसकी प्रामाणिकता स्वयं उसी में, उसकी उत्पत्ति एवं ज्ञप्ति में निहित होती है। अयथार्थ ज्ञान या अप्रमा का परतःप्रमाण भी उत्पत्ति और ज्ञप्ति रूप में सम्पन्न होता है।

साक्षी-

मध्व वेदान्त में साक्षी के विना ज्ञान प्रमाणिक नहीं होता, क्योंकि ज्ञान साक्षी का बोध या पौरुषेय बोध है। आत्मा के स्वरूपभूत चैतन्येन्द्रिय को साक्षी कहते हैं। अनवस्था दोष से बचने के लिये ज्ञान का स्वतःप्रमाण मानना आवश्यक हो जाता है, अन्यथा एक ज्ञान की प्रमाणिकता किसी अन्य ज्ञान से, उसकी पुनः किसी अन्य से मानने पर अनवस्था दोष उत्पन्न हो जाता है। साक्षी को ही ज्ञान और उसकी प्रमाणिकता दोनो हो जाती है। मध्व के अनुसार साक्षी ही सभी प्रमाणों का प्रमाण है। क्योंकि वही सभी निश्चय, अध्यवसाय या अनुभव के मूल में है। वृत्ति ज्ञान का फलरूप प्रमा साक्षी निष्ठ होती है। इस प्रकार वृत्ति ज्ञान और साक्षीज्ञान दो प्रकार के ज्ञान मध्व वेदान्त में मान्य हैं।

तदनुसार प्रमाण भी दो प्रकार के हैं- अनु प्रमाण और केवल प्रमाण। अनुप्रमाण तीन प्रकार के हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द या आगम। यथार्थ ज्ञान के साधन को अनुप्रमाण कहते हैं जो तीन प्रकार के होने के कारण तीन प्रकार के यथार्थ ज्ञान को देते हैं- प्रत्यक्षज्ञान, अनुमितिज्ञान तथा शब्दज्ञान। यथार्थ ज्ञान को ही केवल प्रमाण कहते हैं यह चार प्रकार का होता है- 1. ईश्वरज्ञान, 2. लक्ष्मी-ज्ञान, 3. योगिज्ञान और 4. अयोगिज्ञान।

2.4.2 ज्ञान के साधन (प्रमाण)

तीन अनुप्रमाण-

स्मृति से भिन्न अनुभव ही प्रमाण है। प्रमाण शब्द साधन और उसके फल, दोनों का वाचक है। यथार्थ ज्ञान के साधन को अनुप्रमाण कहते हैं। अनुप्रमाण वृŸि◌ा ज्ञान है, यह तीन प्रकार का होता है- प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द या आगम।

प्रत्यक्ष प्रमाण- आसन्न और अव्यवहित रूप से विद्यमान कुछ वस्तुओं का ग्राहक साधन प्रत्यक्ष कहलाता है। अर्थात् निर्दोष इन्द्रियों से वस्तु के सन्निकर्ष को प्रत्यक्ष कहते हैं। यह सात प्रकार का होता है- साक्षी, मन, नेत्र, त्वक्, रसना, श्रोत्र, और घ्राण ये ही सात इन्द्रियाँ हैं। मुख्यतः चार प्रकार के प्रत्यक्ष का विवरण प्राप्त होता है- 1. ईश्वरप्रत्यक्ष, 2. लक्ष्मी-प्रत्यक्ष, 3. योगिप्रत्यक्ष और 4. अयोगिप्रत्यक्ष । मध्व के अनुसार सारे प्रत्यक्ष सविकल्पक ही होते हैं।

अनुमान प्रमाण- व्याप्ति के स्मरण के साथ-साथ लिंग, हेतु, व्याप्य या युक्ति का देश विशेष में ठीक-ठीक ज्ञान से साध्य, लिंगी या अनुमेय पदार्थ के ज्ञान या प्रमा का जनक साधन अनुमान प्रमाण कहलाता है। अनुमान के मुख्य दो अंग हैं- व्याप्ति और समुचित देश विशेष में साध्य की स्थिति। धूम व्याप्य और अग्नि व्यापक है। अनुमान तीन प्रकार का होता है-

1. **कार्यानुमान**- जहाँ कार्य से कारण का अनुमान होता है वह कार्यानुमान है, जैसे धूम से अग्नि का अनुमान।

2. **कारणानुमान**- जहाँ कारण से कार्य का अनुमान होता है वह कारणा है, जैसे विशेष प्रकार के बादल को देखकर वर्षा का अनुमान।

3. **अकार्याकारणानुमान**- जो अपने साध्य का न तो कारण है और न कार्य, फिर भी अनुमापक होता है वह अकार्याकारणानुमा होता है, जैसे रस रस रूप का अनुमापक है। दृष्ट और सामान्यतोदृष्ट के भेद से भी अनुमान के दो प्रकार होते है ।

शब्द प्रमाण या आगम प्रमाण- निर्दोष शब्द को कहते हैं, शब्द पद और वाक्य है। आकांक्षा, योग्यता और सन्निहित पदों के समूह को वाक्य कहते हैं। वाक्य करण या साधन है, पदार्थ की स्मृति

अवान्तर व्यापार तथा वाक्यार्थ का ज्ञान अवान्तर फल। आगम या शब्द प्रमाण दो प्रकार का होता है-अपौरुषेय और पौरुषेय या नित्य और अनित्य। वेद आदि सत्य आगम अपौरुषेय हैं तथा महाभारत, रामायण, पांचरात्र आदि पौरुषेय आगम हैं।

इन तीनों प्रमाणों में प्रत्यक्ष सर्वाधिक प्रामाणिक और निश्चयात्मक माना गया है। किसी अन्य प्रमाण या तर्क के द्वारा प्रत्यक्ष का बाध सम्भव नहीं है। मध्व वेदान्त में ये तीन ही प्रमाण हैं तथा अन्य प्रमाणों का अन्तर्भाव इन्हीं प्रमाणों में हो जाता है।

बोधप्रश्न-

प्र.(1.) निम्न वाक्यों में सही केआगे सही तथा असत्य के आगे (x)का अंकित करें।

(क) मध्व को आनन्दतीर्थ कहते हैं ( )

(ख) मध्व शंकराचार्य के विरोधी थे ( )

(ग) 'उपाधिखण्डन' के रचना कार मध्व थे ( )

(घ) मध्व अनुमान के चार प्रकार मानते हैं ( )

(ङ) मध्व ज्ञान का स्वतःप्रामाण्य मानते हैं। ( )

अभ्यास-

प्रश्न (1.) मध्व के मत में प्रत्यक्ष के प्रकारों को लिखें-

.....

.....

.....

.....

.....

बोधप्रश्न

प्र.(2.) निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखें-

(क) मध्व किस वाद के प्रतिपादक आचार्य हैं..... ।

(ख) किसके विना ज्ञान प्रामाणिक नहीं होता है.....।

(ग) यथार्थ ज्ञान के साधन को .....कहते हैं।

(घ) प्रस्थानत्रयी किसे कहते हैं .....।

(ङ) केवल प्रमाण कितने प्रकार का होता है.....।

अभ्यास-

प्रश्न (2.) साक्षी से क्या तात्पर्य है लिखें-

.....

.....

.....

.....

.....

2.5 तत्वमीमांसा

2.5.1 द्वैतवाद

मध्व का वस्तुवादी द्वैतवाद ईश्वर, जीव और जगत् की पारमार्थिक सत्ता स्वीकार करता है। प्रकृति, जीव और ईश्वर भिन्न तत्व हैं, ये अपनी-अपनी सत्ता रखते हैं, क्योंकि इनकी प्रतीति होती है। इनमें से किसी एक को दूसरे में अन्तर्भूत नहीं माना जा सकता। बहुत्व का एक में विलय नहीं होता और न तो बहुत्व या नाना को मिथ्या ही माना जा सकता है। परब्रह्म ईश्वर स्वतन्त्र तत्व है, जबकि प्रकृति और जीव परतन्त्र तत्व हैं। ईश्वर अनन्तकल्याणगुणसम्पन्न तथा परिपूर्ण हैं, इस प्रकार स्वतन्त्र और परतन्त्र रूप से तीनों तत्वों का दो वर्ग है। ये तीनों सत् तत्व हैं, क्योंकि इनकी सर्वदा प्रतीति होती है। मध्व द्वैत को सत्य मानते हैं- जो स्वरूपतः भिन्न होता है, वह अभिन्न नहीं हो सकता। ब्रह्म, जीव और प्रकृति स्वरूपतः भिन्न हैं, अतः इनमें अभेद सम्बन्ध नहीं हो सकता। ब्रह्म ही पूर्ण स्वतन्त्र, सत्य का सत्य, नित्यों का नित्य, चेतनों का चेतन तथा सत्ता , प्रतीति एवं प्रवृत्ति का निमित्त है।

मध्व भेद को वस्तुओं का स्वरूप मानते हैं , यह जगत् सत्य है और प्रत्येक पदार्थ अन्य सब पदार्था से सर्वथा भिन्न है। मध्व जीव और जगत् को ईश्वर का शरीर नहीं मानते हैं। जीव और जगत् विशेषण या गौण नहीं हैं। वे तात्विक और मुख्य हैं। ईश्वर परतन्त्र होने से उनकी सत्ता पर कोई आँच नहीं आती। वे परस्पर भिन्न हैं और ईश्वर से नितांत भिन्न हैं, अतः वे ईश्वर का शरीर नहीं हो सकते। मध्वाचार्य ने पंचविध नित्य भेद स्वीकार किये हैं जिनके ज्ञान हो जाने पर जीव मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। ये पाँच भेद हैं-

- ईश्वर और जीव का भेद
- जीव और जीव का भेद
- ईश्वर और जड़ का भेद
- जड़ और जड़ का भेद एवं
- जीव और जड़ का भेद

जैसा कि महाभारततात्पर्यनिर्णय में भी कहा गया है-

जगत्प्रवाहः सत्योऽयं पंचभेदसमन्वितः।

जीवेशयोर्भिदा चैव जीवभेदः परस्परम्।

जडेशयोर्जडानांच जडजीवभिदा तथा।। महाभारततात्पर्यनिर्णय-1.67-70

मध्व का भेद पर इतना दुर्निवार आग्रह है कि उन्होंने मुक्त जीवों में भी ज्ञान और आनन्द के तारतम्य रूपी भेद को स्वीकार किया है।

02.5.2 पदार्थ एवं द्रव्य

दस पदार्थ- मध्वदर्शन में पदार्थों की संख्या दस मानी गयी है- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, विशिष्ट, अंशी, शक्ति, सादृश्य तथा अभाव।

बीस द्रव्य- उनके मत में द्रव्य बीस प्रकार का होता है- परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, अव्याकृत, आकाश, प्रकृति, गुणत्रय, महत्तत्व, अंहकार, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, तन्मात्राएँ, महाभूत, ब्रह्माण्ड, अविद्या, वर्ण, अन्धकार, वासना, काल तथा प्रतिबिम्ब। मध्वाचार्य ने स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र नामक दो तत्त्वों को स्वीकार किया है। भगवान विष्णु स्वतन्त्र तत्त्व हैं और अस्वतन्त्र तत्त्व परमात्मा का दास जीव है।

सत्कार्यवाद और परिणामवाद-

जगत् प्रकृति का वास्तविक विकार या परिणाम है। सम्पूर्ण जगत् के उपादान कारण के रूप में प्रकृति को माना गया है। उपादान कारण तथा उनके कार्य में भेदाभेद सम्बन्ध है। तन्तु रूप उपादान के अभाव में वस्त्र की सत्ता ही संभव नहीं होती। तन्तु और कपड़े में अत्यन्त भेद नहीं है, किन्तु अत्यन्त अभेद भी नहीं है। यह स्थिति निमित्त कारण के सम्बन्ध में नहीं है। स्वर्ण से बने आभूषण सोना रूप में तथा आभूषण रूप में भिन्नाभिन्न दोनों हैं। उसी तरह प्रकृति और उसके विकारों में भी भेद और अभेद दोनों हैं। व्यक्त और अव्यक्त, कार्य और कारण, सूक्ष्म और स्थूल, ये दो अवस्थाएँ ही कार्य-कारण कहलाती हैं। भेद पर बल देकर मध्व ने सत्कार्यवाद तथा असत्कार्यवाद में समन्वय स्थापित किया है।

2.5.3 परमात्मा एवं जीव

परमात्मा-भगवान् विष्णु परमात्मा हैं जो सब प्रकार से पूर्ण हैं। भगवान् समस्तकल्याणगुणों से परिपूर्ण है। वह मत्स्य, कूर्म आदि अवतारों को धारण करते हैं, परमात्मा उत्पत्ति, स्थिति, संहार, नियमन, ज्ञान, आवरण, बन्ध और मोक्ष- इन सबका विधाता है। परमात्मा सर्वज्ञ है वह एकराट् कहलाता है। वह सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र और एक है। वह जीव, जड़, प्रकृति से अत्यन्त विलक्षण है। लक्ष्मी परमात्मा की शक्ति और सहचरी है। वह परमात्मा के बाधित रहने के कारण उनसे भिन्न है तथा उनके आधीन है। लक्ष्मी, नित्य, चिद्रूप और अनन्त है, वह समस्त गुणों से परिपूर्ण है। श्री, दुर्गा, ह्री, महालक्ष्मी, दक्षिणा, सीता जयन्ती, सत्या, रूक्मिणी आदि लक्ष्मी की मूर्तियाँ हैं। वह ब्रह्मा आदि जीवों की जननी है। लक्ष्मी गुणों में भगवान् से न्यून है।

जीव-जीव परमात्मा से भिन्न और अनेक हैं। प्रत्येक जीव का अपना व्यक्तित्व अलग है, अतः एक जीव दूसरे से भिन्न है। जीव अज्ञान, मोह, दुःख, भय आदि दोषों से मुक्त होने के कारण संसार में परिभ्रमण करता है। जीव के तीन भेद हैं-

1. **मुक्तियोग्य**- देव, ऋषि, पितृ, चक्रवर्ती तथा पुरूषोत्तम रूप से पाँच प्रकार के होते हैं।

2. **नित्यसंसारी-** अपने कर्मानुसार स्वर्ग के सुख, मर्त्यलोक के सुख-दुःख भोगते रहते हैं। ये मध्यम कोटी के मानव होते हैं।

3. **तमोयोग्य**- दानव, राक्षस, पिशाच और अधम मानव होते हैं। ये कभी मुक्त नहीं हो सकते हैं।

मुक्तियोग्य तमोयोग्य जीव दो प्रकार का होता है- चतुर्गुणोपासक और एकगुणोपासक।

प्रकृति

माध्वदर्शन में प्रकृति की मान्यता है। प्रकृति साक्षात् या परम्परया विश्व का उपादान कारण है। परमात्मा तो केवल निमित्त कारण है। परमात्मा की अध्यक्षता में प्रकृति अपना कार्य करती है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका, परिणामिनी, जड़, अव्यक्त और व्यापक है। प्रकृति ईश्वर की इच्छा या शक्ति है। यह जगत् के सारे बंधनों का कारण है। सभी प्राणियों के लिंग शरीर प्रकृति से निर्मित होते हैं। लक्ष्मी

इसकी अधिष्ठात्री देवी है

2.5.4 मोक्ष का स्वरूप-

मध्वाचार्य के अनुसार भगवान परमात्मा की कृपा एवं साक्षात्कार से ही मोक्ष सम्भव है। परमात्मा के अनुग्रह से जीव मुक्ति को प्राप्त करता है। वैराग्य, शम, शरणागति, परमात्मभक्ति और पंचविध भेदज्ञान मोक्षप्राप्ति के साधन हैं। भगवान् के प्रति ज्ञानपूर्वक अनन्य स्नेह ही भक्ति है। भगवान् के अपरोक्ष ज्ञान से उनमें अनन्य भक्ति उत्पन्न होती है और तब भगवान् के परम अनुग्रह से मोक्ष प्राप्त होता है। मुक्त पुरुष का शरीर ब्रह्म के शरीर से भिन्न तथा जीवब्रह्मैक्य नहीं है। पंचभेदों का परिज्ञान मुक्ति के साधन हैं । माध्वमत में मोक्ष चार प्रकार का होता है- कर्मक्षय, उत्क्रान्तिलय, अचिरादिमार्ग और भोग। इनमें भोग मुक्तिचार प्रकार की होती है-

1. **सालोक्य**- भगवान् के साथ बैकुण्ठ लोक में निवास करना ।

2. **सामीप्य**- भगवान् के समीप रहना।

3. **सारूप्य**- भगवान् के समान रूप धारण करना।

4. **सायुज्य**- भगवान् के शरीर में प्रवेश करके उनके शरीर से आनन्द का भोग करना।

मध्व मुक्त जीवों को भी ब्रह्म के समान न मानकर ब्रह्म से भिन्न मानते हैं तथा परस्पर भी भिन्न मानते हैं तथा उनमें ज्ञान और आनन्द आदि गुणों के तारतम्य की कल्पना करते हैं। मध्व के अनुसार दानव, राक्षस, पिशाच तथा अधम मनुष्य मोक्ष से परे हैं। ये नित्य अभिशप्त हैं तथा मोक्ष प्राप्ति के अधिकारी नहीं ।

बोधप्रश्न

प्र.(3.) निम्न वाक्यों में सही के आगे सही तथा असत्य के आगे (x) का अंकित करें ।

(क) मध्व के अनुसार पदार्थ बीस होते हैं। ( )

(ख) मध्व ने सत्कार्यवाद को नहीं माना है। ( )

(ग) जीव परमात्मा से अभिन्न और एक हैं। ( )

(घ) मध्व के मत में जीवात्मा चार प्रकार के हैं। ( )

(ङ) पंचविध भेद ज्ञान मोक्ष प्राप्ति के साधन हैं। ( )

अभ्यास

प्रश्न (3.) मध्व के अनुसार द्वैताद्वैत को स्पष्ट करें-

.....

.....

.....

.....

प्रश्न (4.) मध्व के अनुसार भोगमुक्ति के प्रकारों को लिखें-

.....

.....

.....

.....

बोधप्रश्न

प्र.(4.) उपयुक्त उत्तर के साथ रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

(क) मध्व के अनुसार पदार्थ कितने हैं .....।

(ख) अनन्तकल्याणगुणसम्पन्न ..... होता है।

(ग) पंचविध भेदों के ज्ञान से .....होता है।

(घ) .....विश्व का उपादान कारण है।

(ङ) ये नित्य अभिशप्त हैं.....।

दानव, राक्षस, पिशाच तथा अधम मनुष्य मोक्ष से परे हैं। ये नित्य अभिशप्त

अभ्यास

प्रश्न (5.) मध्व के अनुसार पंचविध भेदों को लिखें-

.....

.....

.....

.....

2.6 सारांश

अन्य वैष्णव वेदांत सम्प्रदायों के समान माध्व दर्शन का ''द्वैतवाद'' भी रामानुज के दर्शन के समान प्रसिद्ध है। इनका सिद्धान्त द्वैतवाद है। मध्व ने ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषदों पर भाष्य लिखे ब्रह्मसूत्र पर अणुव्याख्यान नामक ग्रन्थ, भागवतपुराण पर भागवत-तात्पर्य-निर्णयटीका। उपाधिखण्डन, मायावादखण्डन, मिथ्यावानुमानखण्डन, तत वोद्योत, तत ववविवेक, तत्वसंख्यान आदि भी इनकी रचनायें हैं ।इनकी ज्ञान मीमांसा न्याय-वैशेषिक की अपेक्षा सांख्य पर अधिक आधारित है। चूँकि कोई वस्तु निर्विशेष समान्य मात्र नहीं, अपितु असंख्य विशेषोंवाली होती है।, अतः निर्विशेष ज्ञान असम्भव है। ज्ञान का स्वतःप्रामाण्य स्वयं सिद्ध है। मध्व वेदान्त में साक्षी के विना ज्ञान प्रमाणिक नहीं होता, क्योंकि ज्ञान साक्षी का बोध या पौरुषेय बोध है। आत्मा के स्वरूपभूत चैतन्येन्द्रिय को साक्षी कहते हैं। वृत्ति ज्ञान का फलरूप प्रमा साक्षी निष्ठ होती है। इस प्रकार वृत्तिज्ञान न और साक्षीज्ञान दो प्रकार के ज्ञान माध्व वेदान्त में मान्य हैं। तदनुसार प्रमाण भी दो प्रकार के हैं- अनु प्रमाण और केवल प्रमाण। यथार्थ ज्ञान के साधन को अनुप्रमाण कहते हैं अनुप्रमाण तीन प्रकार के हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द या आगम। यथार्थ ज्ञान को ही केवल प्रमाण कहते हैं यह चार प्रकार का होता है- 1. ईश्वरज्ञान, 2. लक्ष्मी-ज्ञान, 3. योगिज्ञान और 4. अयोगिज्ञान। मुख्यतः चार प्रकार के प्रत्यक्ष का विवरण प्राप्त होता है- 1. ईश्वरप्रत्यक्ष, 2. लक्ष्मी-प्रत्यक्ष, 3.योगिप्रत्यक्ष और 4. अयोगिप्रत्यक्ष । मध्व के अनुसार सारे प्रत्यक्ष सविकल्पक ही होते हैं। अनुमान तीन प्रकार का होता है- 1. कार्यानुमान- जहाँ कार्य से कारण का अनुमान होता है वह कार्यानुमान है, जैसे धूम से अग्नि का अनुमान। 2. कारणानुमान- जहाँ कारण से कार्य का अनुमान होता है वह कारणानुमान है, जैसे विशेष प्रकार के बादल को देखकर वर्षा का अनुमान। 3. अकार्याकारणानुमान- जो अपने साध्य का न तो कारण है और न कार्य, फिर भी अनुमापक होता है वह अकार्याकारणानुमान होता है, जैसे रस रस रूप का अनुमापक है।दृष्ट और सामान्यतोदृष्ट के भेद से भी अनुमान के दो प्रकार होते हैं। शब्द प्रमाण या

आगम प्रमाण- आगम या शब्द प्रमाण दो प्रकार का होता है-अपौरुषेय और पौरुषेय या नित्य और अनित्य। वेद आदि सत्य आगम अपौरुषेय हैं तथा महाभारत, रामायण, पांचरात्र आदि पौरुषेय आगम हैं। द्वैतवाद- मध्व का वस्तुवादी द्वैतवाद ईश्वर, जीव और जगत् की पारमार्थिक सत्ता स्वीकार करता है। प्रकृति, जीव और ईश्वर भिन्न तत्व हैं, ये अपनी-अपनी सत्ता रखते हैं, क्योंकि इनकी प्रतीति होती है। । ये तीनों सत् तत्व हैं, क्योंकि इनकी सर्वदा प्रतीति होती है । मध्व द्वैत को सत्य मानते हैं- जो स्वरूपतः भिन्न होता है, वह अभिन्न नहीं हो सकता। ब्रह्म, जीव और प्रकृति स्वरूपतः भिन्न हैं, अतः इनमें अभेद सम्बन्ध नहीं हो सकता। मध्व भेद को वस्तुओं का स्वरूप मानते हैं ,यह जगत् सत्य है और प्रत्येक पदार्थ अन्य सब पदार्थों से सर्वथा भिन्न है। मध्वाचार्य ने पंचविध नित्य भेद स्वीकार किये हैं जिनके ज्ञान हो जाने पर जीव मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। ये पाँच भेद हैं-1. ईश्वर और जीव का भेद 2. जीव और जीव का भेद 3.ईश्वर और जड़ का भेद 4.जड़ और जड़ का भेद एवं 5.जीव और जड़ का भेद।

मध्व का भेद पर इतना दुर्निवार आग्रह है कि उन्होने मुक्त जीवों में भी ज्ञान और आनन्द के तारतम्य रूपी भेद को स्वीकार किया है। मध्वदर्शन में पदार्थों की संख्या दस मानी गयी है- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, विशिष्ट, अंशी, शक्ति, सादृश्य तथा अभाव। उनके मत में द्रव्य बीस प्रकार का होता है- परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, अव्याकृत, आकाश, प्रकृति, गुणत्रय, महत्तत्व, अंहकार, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, तन्मात्राएँ, महाभूत, ब्रह्माण्ड, अविद्या, वर्ण, अन्धकार, वासना, काल तथा प्रतिबिम्ब। मध्वाचार्य ने स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र नामक दो तत्त्वों को स्वीकार किया है। भगवान विष्णु स्वतन्त्र तत्त्व हैं और अस्वतन्त्र तत्त्व परमात्मा का दास जीव है। जगत् प्रकृति का वास्तविक विकार या परिणाम है। सम्पूर्ण जगत् के उपादान कारण के रूप में प्रकृति को माना गया है। उपादान कारण तथा उनके कार्य में भेदाभेद सम्बन्ध है। उसी तरह प्रकृति और उसके विकारों में भी भेद और अभेद दोनों हैं।

व्यक्त और अव्यक्त, कार्य और कारण, सूक्ष्म और स्थूल, ये दो अवस्थाएँ ही कार्य-कारण कहलाती हैं। भेद पर बल देकर मध्व ने सत्कार्यवाद तथा असत्कार्यवाद में समन्वय स्थापित किया है। परमात्मा भगवान् विष्णु परमात्मा हैं जो समस्तकल्याणगुणों से परिपूर्ण है। श्री, दुर्गा, ह्री, महालक्ष्मी, दक्षिणा, सीता जयन्ती, सत्या, रूक्मिणी आदि लक्ष्मी की मूर्तियाँ हैं। वह ब्रह्मा आदि जीवों की जननी है। लक्ष्मी गुणों में भगवान् से न्यून है। जीव प्रत्येक जीव का अपना व्यक्तित्व अलग है, अतः एक जीव दूसरे से भिन्न है। जीव अज्ञान, मोह, दुःख, भय आदि दोषों से मुक्त होने के कारण संसार में परिभ्रमण करता है। जीव के तीन भेद हैं-मुक्तियोग्य, नित्यसंसारी और तमोयोग्य- प्रकृति-माध्वदर्शन में प्रकृति साक्षात् या परम्परया विश्व का उपादान कारण है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका, परिणामिनी, जड़, अव्यक्त और व्यापक है। प्रकृति ईश्वर की इच्छा या शक्ति है। यह जगत् के सारे बंधनों का कारण है। वैराग्य, शम, शरणागति, परमात्मभक्ति और पंचविध भेदज्ञान मोक्षप्राप्ति के साधन हैं। माध्वमत में मोक्ष चार प्रकार का होता है- कर्मक्षय, उत्क्रान्तिलय, अचिरादिमार्ग और भोग। इनमें भोग मुक्तिचार प्रकार की

होती है-सालोक्य- सामीप्य-सारूप्य-सायुज्य-मध्व मुक्त जीवों को भी ब्रह्म के समान न मानकर ब्रह्म से भिन्न मानते हैं तथा परस्पर भी भिन्न मानते हैं तथा उनमें ज्ञान और आनन्द आदि गुणों के तारतम्य की कल्पना करते हैं।

2.7 शब्दावली

अकार्याकारणानुमान- जो अपने साध्य का न तो कारण है और न कार्य, फिर भी अनुमापक होता है वह अकार्याकारणानुमान होता है, जैसे रस, रस रूप का अनुमापक है।

अचित्- ज्ञानशून्य तथा विकारास्पद जड़ तत्व ।

अनुप्रमाण- यथार्थ ज्ञान के साधन को अनुप्रमाण कहते हैं। ये तीन प्रकार के हैं तथा तीन प्रकार के यथार्थ ज्ञान को देते हैं- प्रत्यक्षज्ञान, अनुमितिज्ञान तथा शब्दज्ञान।

कार्यानुमान- जहाँ कार्य से कारण का अनुमान होता है वह कार्यानुमान है, जैसे धूम से अग्नि का अनुमान।

कारणानुमान- जहाँ कारण से कार्य का अनुमान होता है वह कारणानुमान है, जैसे विशेष प्रकार के बादल को देखकर वर्षा का अनुमान।

केवल प्रमाण- यथार्थ ज्ञान को ही केवल प्रमाण कहते हैं यह चार प्रकार का होता है- 1. ईश्वरज्ञान, 2. लक्ष्मी-ज्ञान, 3. योगिज्ञान और 4. अयोगिज्ञान।

वाक्य- आकांक्षा, योग्यता और सन्निहित पदों के समूह को वाक्य कहते हैं।

द्वैत- मध्व द्वैत को सत्य मानते हैं- जो स्वरूपतः भिन्न होता है, वह अभिन्न नहीं हो सकता। ब्रह्म, जीव और प्रकृति स्वरूपतः भिन्न हैं, अतः इनमें अभेद सम्बन्ध नहीं हो सकता।

सत्कार्यवाद- कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व अपने कारण में सत् रूप में विद्यमान रहता है। कारण के सत् होने पर कार्य भी सत् होता है।

तमोयोग्य- दानव, राक्षस, पिशाच और अधम मानव होते हैं। ये कभी मुक्त नहीं हो सकते हैं ।

दस पदार्थ- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, विशिष्ट, अंशी, शक्ति, सादृश्य तथा अभाव ।

नित्यसंसारी- अपने कर्मानुसार स्वर्ग के सुख, मर्त्यलोक के सुख-दुःख भोगते रहते हैं । ये मध्यम कोटी के मानव होते हैं।

पंचविधनित्यभेद- ईश्वर और जीव का भेद, जीव और जीव का भेद, ईश्वर और जड़ का भेद, जड़ और जड़ का भेद एवं जीव और जड़ का भेद।

प्रकृति- प्रकृति त्रिगुणात्मिका, परिणामिनी, जड़, अव्यक्त और व्यापक है। प्रकृति ईश्वर की इच्छा या शक्ति है। यह जगत् के सारे बंधनों का कारण है।

मोक्षप्राप्ति के साधन- वैराग्य, शम, शरणागति, परमात्मभक्ति और पंचविध भेदज्ञान।

बीस द्रव्य- परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, अव्याकृत, आकाश, प्रकृति, गुणत्रय, महत्तत्व, अंहकार, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, तन्मात्राएँ, महाभूत, ब्रह्माण्ड, अविद्या, वर्ण, अन्धकार, वासना, काल तथा प्रतिबिम्ब।

भक्ति- भगवान् के प्रति ज्ञानपूर्वक अनन्य स्नेह ही भक्ति है।

मुक्तियोग्य- देव,ऋषि, पितृ, चक्रवर्ती तथा पुरूषोत्तम रूप से पाँच प्रकार के होते हैं।
मोक्ष के प्रकार- कर्मक्षय, उत्क्रान्तिलय, अचिरादिमार्ग और भोग।
साक्षी- आत्मा के स्वरूपभूत चैतन्येन्द्रिय को कहते है।
सामीप्य- भगवान् के समीप रहना।
सायुज्य- भगवान् के शरीर में प्रवेश करके उनके शरीर से आनन्द का भोग करना।
सारूप्य- भगवान् के समान रूप धारण करना।
सालोक्य- भगवान् के साथ बैकुण्ठ लोक में निवास करना।
शरणागति- ईश्वर की शरण में जाना ही शरणागति तथा प्रपत्ति है।

2.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1(क) सही (ख) सही (ग) सही (घ) (x) (ङ) सही

2.(क) द्वैतवाद

(ख) साक्षी

(ग) अनुप्रमाण

(घ) ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता तथा उपनिषद्

(ङ) चार प्रकार का

3. (क) (x) (ख) सही (ग) (x) (घ) (x))(ङ) सही

4.(क) दस

(ख) ईश्वर

(ग) मोक्ष

(घ) प्रकृति

(ङ) दानव, राक्षस, पिशाच तथा अधम मनुष्य।

अभ्यास

(1.) देखें उपखण्ड- 2.4.2

(2.) देखें उपखण्ड- 2.4.1

(3.) देखें खण्ड- 02.5.1

(4.) देखें उपखण्ड- 02.5.4

5.) देखें उपखण्ड- 02.5.1

2.9 संदर्भ ग्रन्थसूची

1.दासगुप्ता एस0 एन0 (1989) भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग 4-5 राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर द्वितीय संस्करण.

5. दत्त एवं चटर्जी (1994) भारतीय दर्शन, पुस्तक भण्डार, पटना।

6. शर्मा चन्द्रधर (1998) भारतीय दर्शन आलोचना एवं अनुशीलन मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली.

2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1.दासगुप्ता एस0 एन0 (1989) भारतीय दर्शन कोश, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर द्वितीय संस्करण.

2. शर्मा राममूर्ति (1998) अद्वैत वेदान्त, इतिहास तथा सिद्धान्त, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली।

3. ऋषि उमाशंकरशर्मा(1984) माधवाचार्यकृतसर्वदर्शनसंग्रह,चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी, तृतीय संस्करण।

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. द्वैतवाद दर्शन के आधार पर तत्वों का विश्लेषण करें।
2. मध्वदर्शन के ज्ञान मीमांसा पर एक निबन्ध लिखें।
3. मध्व के अनुसार मोक्ष के स्वरूप पर एक लेख लिखें।

इकाई3: द्वैताद्वैत वेदान्त दर्शन का सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 इकाई की पृष्ठभूमि -
3.3.1 द्वैताद्वैत का उद्भव
3.3.2 द्वैताद्वैत का साहित्य
3.4 ज्ञान मीमांसा
3.4.1. ज्ञान
3.4.2 ज्ञान के साधन (प्रमाण)
3.5 तत्व मीमांसा
3.5.1 द्वैतवाद
3.5.2 तत्वत्रय
3.5.3 जीवात्मा परमात्मा का भेदाभेद
3.5.4 बन्धन और मोक्ष
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर
3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

भारतीय दर्शन में भाग प्रथम के द्वैताद्वैत वेदान्त दर्शन से सम्बन्धित यह इकाई है, इससे पूर्व की इकाईयों के अध्ययन से आप बता सकतें हैं कि भारतीय दर्शन के कितने प्रकार हैं ? आस्तिक तथा नास्तिक दर्शन कौन- कौन हैं ?

भारतीय आस्तिक दर्शनों में वेदान्त दर्शन का विशिष्ट स्थान है। वेदान्त दर्शन की भी कई शाखायें हैं। अद्वैत वेदान्त दर्शन के पश्चात् प्रमुख वैष्णव वेदान्त दर्शनों के प्रकारों तथा सिद्धांतों से आप सब परिचित हो पायेंगें।

इस इकाई के अध्ययन के बाद वैष्णव सम्प्रदाय के प्रमुख दार्शनिकों में द्वैताद्वैतवाद के चिन्तन तथा सिद्धान्तों से आप परिचित हो जायेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि वेदान्त दर्शन के कौन - कौन प्रमुख सम्प्रदाय हैं।
- उनके प्रमुख दार्शनिक सिंद्धान्तों को जान सकेंगे तथा उनके ज्ञान मीमांसा तथा तत्व मीमांसा के प्रमुख तत्वों से भी परिचित हो सकेंगे।

3.3 इकाई की पृष्ठभूमि

3.3.1 द्वैताद्वैत का उद्भव-

निम्बार्क दर्शन के प्रतिष्ठापक आचार्य निम्बार्क का जन्म बारहवीं शताब्दी में दक्षिण भारत में तैलंग ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनका वास्तविक नाम नियमानन्द था। कहा जाता है कि नीम के पेड़ पर चढ़ कर सूर्यास्त हो जाने पर भी सूर्य का दर्शन कराने के कारण इनका नाम निम्बार्क पड़ा था। ये अलौकिक प्रतिभासम्पन्न वैष्णवी विद्वान् थे।

इनका समय दासगुप्त के मत में चौदहवीं सदी के अन्त या पन्द्रहवीं सदी के प्रारम्भ का है। रोमा चौधरी इन्हें ग्यारहवीं सदी का मानती हैं जो अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। कुछ परम्परानुयायी इनका समय काफी पीछे ले जाते हैं, किन्तु रामानुज के बाद ही इन्हें मानना उचित होगा।

रामानुज के विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के अतिरिक्त निम्बार्क का द्वैताद्वैत या भेदाभेद प्रमुख वैष्णव वेदान्त सम्प्रदाय है। निम्बार्क सम्प्रदाय को वैष्णव मत का ''सनक-सम्प्रदाय'' कहा जाता है तथा निम्बार्क को सुदर्शनचक्र का अवतार माना जाता है। भारतीय दर्शन में द्वैताद्वैतवाद अत्यन्त

प्राचीन है। बादरायण से भी पूर्व के आचार्यों में औडुलोमि और आश्मरथ्य तथा शंकर-पूर्व के आचार्यों में भर्तृप्ररपंच एवं शंकरोत्तर आचार्यों में भास्कर और यादव प्रसिद्ध भेदवादी आचार्य हुये हैं। निम्बार्काचार्य ने इन आचार्यों के मत को पुनरुज्जीवित किया है।

1.3.2 विशिष्टाद्वैत का साहित्य

निम्बार्क भास्कर के अनुयायी हैं, पर भास्कर के औपाधिक भेदाभेदवाद से थोड़ा भिन्न स्वाभाविक भेदाभेदवाद का प्रतिपादन करके इन्होंने अलग सम्प्रदाय बनाया, जो एक विशिष्ट धर्म-सम्प्रदाय के रूप में, मुख्य रूप से ब्रज तथा उत्तर प्रदेश में एवं अन्यत्र, बंगाल आदि में, प्रचलित रहा है। निम्बार्क का ब्रह्मसूत्र पर भाष्य पूर्णप्रज्ञभाष्य या वेदान्तपारिजातसौरभ के नाम से विख्यात है। यह अति संक्षिप्त वृत्ति के रूप में है। शंकर के सिद्धान्त का प्रतिवाद करने में इन्होंने अधिक अभिरुचि नहीं दिखायी है। दशश्लोकी या सिद्धान्तरत्न तथा कृष्णस्तवराज नामक इनके दो स्वतन्त्र ग्रन्थ भी हैं। इनकी रचनाओं पर टीका-ग्रन्थ भी पाये जाते हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ **वेदान्तपारिजातसौरभ**, **सिद्धान्तरत्न**, **दशश्लोकी, श्रीकृष्णस्तवराज** हैं।

3.4 ज्ञान मीमांसा

3.41. ज्ञान-

ज्ञान यथार्थ, वस्तु-विषयक तथा आत्मा का धर्मभूत द्रव्य है। यथार्थ ज्ञान या प्रमा बुद्धि के नहीं जीव के आश्रित होती है। प्रमा या धर्मभूत ज्ञान में संकोच- विकास कर्मवश होता है, इसलिये कि आत्मा के स्वरूप-ज्ञान के समान यह स्वयंप्रकाश नहीं है। आत्मा सदा ही ज्ञातृत्व धर्मवाला होता है, अतः ज्ञान का कभी अभाव नहीं होता। इन्द्रिय आदि निमित्त न मिलने से सुषुप्ति, मूर्च्छा आदि दशा में वह प्रकट नहीं हो पाता। यदि उसका अभाव माना जाय तो कभी भी आविर्भाव सम्भव नहीं होगा। ज्ञान आत्मा का आगन्तुक गुण नहीं है, जैसा न्याय-वैशेषिक दर्शन में मान्य है। ज्ञान आत्मा में गुण और गुणी के सम्बन्ध से नित्य जुड़ा हुआ रहता है। गुण और गुणी में भेदाभेद सम्बन्ध होता है, गुण आत्मा से भिन्न द्रव्य होते हुए भी उससे अभिन्न या अपृथक् सिद्ध है। निम्बार्क रामानुज के समान वस्तुवादी या बाह्यार्थसत्यवादी तथा ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय एवं ज्ञान के साधन (प्रमाणत्रय) को स्वीकार करते हैं।

3.4.2 ज्ञान के साधन (प्रमाण)

रामानुज के समान निम्बार्क प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द, तीन प्रमाणों को मानते है।
प्रत्यक्ष-इन्द्रिय और विषय के सन्निकर्ष से जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष है जो बाह्य और आन्तर दो प्रकार का होता है। बाह्य पदार्थों का प्रत्यक्ष इन्द्रियज है तथा सुख-दुःख आदि आन्तरिक विषयों का इन्द्रिय-निरपेक्ष आन्तर।

अनुमान-व्याप्ति पर निर्भर ज्ञान अनुमान है। अनुमान प्रमाण दो प्रकार का होता है- स्वार्थानुमान तथा परार्थानुमान। परार्थानुमान में प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय तथा निगमन पंचावयव वाक्यों का प्रयोग होता है।

शब्द-इन दो ज्ञानों से अतिरिक्त एवं सर्वाधिक प्रामाणिक ज्ञान श्रुतिमूलक होता है। श्रुति श्रवण-मनन-निदिध्यासन का विधान करती है। वस्तु के साक्षात्कार का कारण निदिध्यासन है, उसके बहिरंग साधन श्रवण और मनन हैं। आचार्य के मुख से वाक्यार्थ का ग्रहण श्रवण है, श्रुत्यनुकूल तर्क से उस पर विशेष विचार मनन है तथा ध्यानपूर्वक उपदिष्ट वस्तु का साक्षात्कार निदिध्यासन है। इनका अपूर्व विधान श्रुति द्वारा हुआ है। अर्थात् वेद वचनां ी में कहीं भी किसी रूप में अर्थवाद नहीं है।

प्रत्यक्ष और अनुमान अपने अपने विषयों में प्रमाण हैं, किन्तु शास्त्र-ज्ञान सर्वथा निर्दोष एवं प्रामाणिक होने से अपेक्षाकृत अधिक विशुद्ध होता है, उसमें भ्रान्ति की सम्भावना बिलकुल नहीं होती, वह सभी परिस्थितियों में समान रूप से परिपूर्ण एवं भ्रान्तिरहित ज्ञान होता है।

निम्बार्क रामानुज के समान सत्ख्यातिवादी हैं। अनिर्वचनीय ख्याति, अख्याति, अन्यथाख्याति जैसे सिद्धान्तों का खण्डन करते हुये सत्ख्यातिवादी निम्बार्क का कथन है कि प्रमाण का बल पर भ्रान्त ज्ञान का बाध उसी प्रकार होता है जिस प्रकार पुण्य से पाप का या औषधि से रोग का। निम्बार्क के अनुसार परिणामवाद श्रुति द्वारा प्रतिपादित है।

बोधप्रश्न-

प्र.(1.) निम्न वाक्यों में सही के आगे सही तथा असत्य के आगे (x) का अंकित करें।

(क) निम्बार्क ने द्वैताद्वैत वाद की स्थापना की ( )

(ख) ये शंकराचार्य के विरोधी थे ( )

(ग) 'वेदान्त परिजातसौरभ के लेखक निम्बार्क थे ( )

(घ) आत्मा ज्ञातृत्व धर्म वाला होताह है ( )

(ङ) निम्बार्क चार प्रमाण मानते हैं ( )

अभ्यास-

प्रश्न (1.) निम्बार्क के अनुसार ज्ञान के साधन प्रमाणों के नाम लिखें-

.....

.....

.....

.....

.....

बोधप्रश्न-

प्र.(2.) निम्न प्रश्नों के उत्त र लिखें-

(क) निम्बार्क किस वाद के प्रतिपादक आचार्य हैं.....।

(ख) प्रत्यक्ष के कितने प्रकार हैं, कौन-कौन.....।

(ग) तत्वत्रय से तात्पर्य है .....।

(घ) परिणामवाद किससे प्रतिपादित है..... ।

(ङ) ज्ञान आत्मा में किस सम्बन्ध से जुड़ा है .....।

अभ्यास

प्रश्न (2.) निम्बार्क के अनुसार सत्ख्याति से क्या तात्पर्य है लिखें-

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.5 तत्व मीमांसा

निम्बार्क चित्, अचित् और ईश्वर इन तीन तत्वों को मानते हैं और उनके दर्शन में इनका स्वरूप भी प्रायः रामानुज-सम्मत स्वरूप के अनुरूप है। चित् या जीव एक साथ ज्ञानस्वरूप भी हैं और ज्ञानाश्रय भी हैं। शुद्ध चैतन्य जीव का स्वरूप भी है और ज्ञाता होने के कारण जीव ज्ञान का आश्रय भी है। ज्ञान स्वरूपभूत और धर्मभूत दोनों है।

3.5.1 द्वैताद्वैतवाद-

रामानुज के समान निम्बार्क भी चित्, अचित् और ईश्वर- इन तीन तत्त्वों को स्वीकार करते हैं। इनके मत में चित् (जीव) अचित् (जगत्) से भिन्न होते हुये भी ज्ञाता और ज्ञान का आश्रय है, जिस प्रकार सूर्य प्रकाशमय है और प्रकाश का आश्रय भी है, उसी प्रकार चित् भी एक ही काल में ज्ञानस्वरूप भी है और ज्ञान का आश्रय भी है। ब्रह्म जीव और जड़युक्त जगत् से एक साथ भिन्न और अभिन्न है। जिस प्रकार मकड़ी अपने में से जाला बनाने पर भी उससे स्वतंत्र रहती है इसी प्रार ब्रह्म भी असंख्य जीव और जड़ में विभक्त होता हुआ भी अपनी पूर्णता एवं शुद्धता बनाए रखता है। इस प्रकार चित् का अवस्थाभेद से ब्रह्म से भिन्न तथा चैतन्यरूप से अभिन्न होने के कारण इनका मत 'द्वैताद्वैतवाद' नाम से प्रसिद्ध है। जीव के सभी व्यापार और उनका अस्तित्व भी ब्रह्म पर इस अर्थ में अवलम्बित है कि ब्रह्म सभी का उपादान एवं निमित्त कारण है। कार्य रूप में ईश्वर और जीव में भेद है, किन्तु कारण रूप में दोनों में अभेद है। जिस प्रकार सुवर्णरूप से सोना अभेद एक ही है परन्तु अपने कार्य कुण्डल,

अंगुठी आदि के द्वारा सभेद अर्थात् अपने मूल रूप से भिन्न है।

3.5.2 तत्वत्रय-

चित्-

जीव निम्बार्क मत में जीव ज्ञानस्वरूप, स्वयंप्रकाश, ज्ञानाश्रय और अणुरूप है। वह प्रत्येक अवस्था में कर्ता है। मुक्तावस्था में भी कर्तृत्त्व से अलग नहीं रहता। वह विभु, नित्य एवं कर्मफल का भोक्ता है। जीव अंश है और ईश्वर अंशी है, अतः दोनों में अंशांशीभाव सम्बन्ध है। वह सदा ईश्वर के अधीन रहता है। जीव दो प्रकार के है- 1.बद्ध- दुःखों से ग्रस्त और 2. मुक्त- बंधनों से परे। बद्धजीव के दो प्रकार हैं- मुमुक्षु तथा बुभुक्षु। मुक्तजीव भी दो प्रकार का होता है- नित्यमुक्त और मुक्त।

अचित्

अर्थात् चेतना विहीन पदार्थ। अचित् तत्त्व तीन प्रकार का होता है-

1. **प्राकृत-** अर्थात् प्रकृति से उत्पन्न। महत् से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त सभी पदार्थ प्राकृत हैं।

2. **अप्राकृत**- जिसका प्रकृति से सम्बन्ध न हो, उसे अप्राकृत कहते हैं।

3. **काल**- प्राकृत और अप्राकृत से भिन्न तत्त्व को काल कहते हैं, यह नित्य एवं विभु है। यह परमात्मा के अधीन है।

ईश्वर

निम्बार्क मत में ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, अचिन्त्य, सर्वनियन्ता, स्वतन्त्र अमित ऐश्वर्य से युक्त है। यह अविद्या आदि पाँच क्लेशों से मुक्त है। ईश्वर जगत् का उपादान कारण भी है और निमित्त कारण भी है। अपनी शक्ति के विक्षेप के द्वारा वह स्वयं जगत् के रूप में परिणत हो जाता है, वह स्वरूप से अविकारी भी रहता है, जैसे मकड़ी अपने अप्रचलित स्वरूप को बनाये रख कर भी अपनी शक्ति का विक्षेप करके जाले के रूप में परिणत हो जाती है। यह सृष्टि का ईश है। यह जगत् उसी का परिणाम है। ईश्वर विश्वकल्याण के लिये अवतार धारण करता है। इस प्रकार जगत् ब्रह्म से भिन्न भी है और अभिन्न भी, स्वरूपतः ब्रह्म से इसका भेद है और कार्य रूप से अभेद भी है। जिस प्रकार दूध से दही का परिणाम होता है, उसी प्रकार ब्रह्म से जगत् का उसकी असाधारण शक्ति से।

कार्य कारण सिद्धान्त

निम्बार्क के अनुसार कार्य अपने कारण से भिन्न और अभिन्न दोनों रूपों में रहता है। कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व आपने कारण में विद्यमान रहता है- जगत् रूप कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व अपने कारण में सत् रूप में विद्यमान रहता है, इसे सत्कार्यवाद कहते हैं। अव्यक्तावस्था में जगत् ब्रह्म से अभिन्न

था किन्तु व्यक्तावस्था में वह नामरूपात्मक कार्य-रूप से सीमित एवं ब्रह्म रूप से भिन्न है। सभी परिणाम या विकार सत् के प्रकट नामरूप ही हैं। अतएव एक कारण के ज्ञान हो जाने से सभी कार्यों का ज्ञान हो जाता है। जैसे- स्वर्ण के ज्ञान होने से स्वर्ण के सभी आभूषणों का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार निम्बार्क सत्कार्यवाद और परिणामवाद का सहारा लेकर जगत्-रूप कार्य का ब्रह्म-कारण से भेदाभेद सम्बन्ध स्थापित करता है।

3.5.3 जीवात्मा और परमात्मा का भेदाभेद-

जीवात्मा और परमात्मा के बीच भेदाभेद सम्बन्ध स्थापित है। परमात्मा आनन्दमय स्वरूप वाला है तथा जीव केआनन्द का कारण है।परमात्मा नित्य आविर्भूत ज्ञान स्वरूप है जबकि जीव अनुकरण है। परमात्मा निर्लेप है, जीवात्मा भोक्ता है। जीवात्मा अनेक है तथा परमात्मा एक और विभु है। जीवात्मा परमात्मा का अंश है, अचेतन प्रकृति के समान उसमें विकार उत्पन्न नहीं होता है। अंशांशीभाव से जीवात्मा और परमात्मा भिन्न हैं, परन्तु अन्ततः दोनों में अभेद है। जैसे सूर्य अनेक जलाशयों में प्रतिबिम्बित होते हुए भी जल के वृद्धि ह्रास आदि दोषों से स्पष्ट नहीं होता, उसी प्रकार जीवात्मा के दोषों से अन्तर्यामि ब्रह्म स्पष्ट नहीं होता। जीवात्मा उसी प्रकार सत्य तत्व है जिस प्रकार परमात्मा अन्तर्यामि तथा जीव का उद्धार करने वाला है। जीव ही बन्ध मोक्ष को प्राप्त करता है परमात्मा नहीं। निम्बार्क की उक्ति है कि ब्रह्म उभयलिंग अर्थात् प्रकाशवान् भी है और अन्धकार से दूर है, अतः निर्दोष है। श्रुति, स्मृति और पुराण ईश्वर को सर्वगुणसम्पन्न बताते हैं। ईश्वर अविद्या आदि क्लेशों से रहित, जन्म आदि छः विकारों से रहित है। श्रुति के समस्त भेद परक और अभेद परक वचन मुख्य हैं।

3.5.4 बन्धन और मोक्ष

सभी वेदान्तियों के समान निम्बार्क भी वैदिक ज्ञान काण्ड के समर्थक हैं। पुनरपि कर्म आदि को महत्व देकर ज्ञान कर्म समुच्चयवाद की स्थापना में विश्वास करना भक्ति सम्प्रदाय के वैष्णव सम्प्रदाय की विशेषता रही है। अविद्या या कर्म की निवृत्ति तथा आत्मा और ब्रह्म का स्वरूप ज्ञान मोक्ष है। निष्काम कर्म, जो ज्ञान, श्रद्धा, ध्यान, और ईश्वर समर्पण बुद्धि से किया जाता है मोक्ष प्राप्ति में सहायक होते हैं। धर्माचरण द्वारा पापकर्मों से मुक्ति मिलती है। जब सत्यज्ञान का प्रकाश आविर्भूत होता है तब धर्माचारण की आवश्यकता नहीं रहती है। ज्ञानयोग निष्काम कर्मयोगी को होता है, परब्रह्म का साक्षात्कार भगवत्कृपा और ज्ञानयोग से होता है। प्रपत्ति योग भगवत्शरणागति है। गुरू आज्ञा भी भगवत् भक्ति में सहयोग करती है। निम्बार्क के अनुसार मोक्ष प्राप्ति का साधन प्रपत्ति (शरणागति) है। शरणागत होने से भगवान् अनुग्रह करते हैं, अनुग्रह से भक्ति उद्भव होती है, भक्ति से ईश्वर-प्रेम उत्पन्न होता है, प्रेमभक्ति से परमात्मा का साक्षात्कार होता है, तब सारे क्लेशों की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है। यही मोक्ष की अवस्था है। इस प्रकार ज्ञान, कर्म, भक्ति, प्रपत्ति , तथा ये पाँचों समन्वित रूप में सर्वोत्तम मोक्ष के साधन हैं।

उनके अनुसार जीवनमुक्ति नहीं होती, विदेहमुक्ति ही होती है। मोक्ष प्राप्त करने पर जीव यद्यपि ब्रह्म में मिल जाता है, पर उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व लुप्त नहीं होता है, बना रहता है। इस लिये कहा जाता है कि शक्ति और शक्तिमान में अभेद है। भक्त भगवान् के पास पहुँचेगा भगवान् नहीं हो सकता, भक्त भगवान् बनकर सृष्टि नहीं कर सकता।

निम्बार्काचार्य ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग में ही समन्वय स्थापित नहीं करते, अपितु भेदपरक तथा अभेदपरक श्रुति वचनों में तथा चेतन और अचेतन के द्वैत को ब्रह्माचर्य बताकर द्वैतवादी और अद्वैतवादी दर्शनों में भी एक साथ समन्वय ला देते हैं। धर्म, आचार, दर्शन आदि को एक साथ समन्वित करने में भी उनका विशेष योगदान है। उनके दर्शन में सभी वर्णों और आश्रमों को उचित स्थान भी मिला है। उनका भेदाभेदवाद नाम ही समन्वयात्मक पद्धति का द्योतक है। विरोधी बातों में संगति और सामंजस्य स्थापित करना उनका मुख्य उद्देश्य प्रतीत होता है। इनका मत काफी प्रभावशाली रहा है- अचिन्त्य भेदाभेद, शाक्त मत तथा विज्ञानभिक्षु का मत इनसे काफी प्रभावित रहे हैं।

बोधप्रश्न

प्र.(3.) निम्न वाक्यों में सही के आगे सही तथा असत्य के आगे (x) का अंकित करें।

(क) निम्बार्क के अनुसार तीन तत्व होते हैं। ( )

(ख) निम्बार्क ने सत्ख्यातिवाद को नहीं माना है। ( )

(ग) क्या इश्वर ब्रह्म का पर्याय है। ( )

(घ) निम्बार्क के चित् से तात्पर्य जीवात्मा से है। ( )

(ङ) बन्धन और मोक्ष ईश्वर कृपा से होता है। ( )

अभ्यास-

प्रश्न (3.) निम्बार्क के अनुसार द्वैताद्वैत को स्पष्ट करें-

.....

.....

.....

.....

प्रश्न (4.) तत्वत्रय से क्या तात्पर्य है।

.....

.....

.....

.....

बोधप्रश्न

प्र.(4.) रिक्त स्थानों की पूर्ति उपयुक्त उत्तर के द्वारा करें।

(क) निम्बार्क दक्षिण भारतीय ..... आचार्य हैं।

(ख) जीवात्मा और परमात्मा में ..... संबंध है।

(ग) मोक्ष किसको प्राप्त होता है.....।

(घ) चेतना विहीन.....है।

(ङ) निम्बार्क ..... के समर्थक हैं।

प्रश्न (5.) बन्धन एवं मोक्ष से क्या तात्पर्य है।

.....

.....

.....

.....

3.6 सारांश

निम्बार्क दर्शन के प्रतिष्ठापक आचार्य निम्बार्क का वास्तविक नाम नियमानन्द था। ये दक्षिण भारत के तैलंग ब्राह्मण थे। निम्बार्क सम्प्रदाय को वैष्णव मत का सनक-सम्प्रदाय तथा द्वैताद्वैतवाद के रूप में जाना जाता है। निम्बार्क का ब्रह्मसूत्र पर पूर्णप्रज्ञभाष्य या वेदान्तपारिजातसौरभ है। इनकी प्रमुख रचनाएँ वेदान्तपारिजातसौरभ, सिद्धान्तरत्न, दशश्लोकी, श्रीकृष्णस्तवराज हैं।यथार्थ ज्ञान या प्रमा बुद्धिवृद्धि के नहीं जीव के आश्रित होती है। ज्ञान आत्मा में गुण और गुणी के सम्बन्ध से नित्य जुड़ा हुआ रहता है। गुण और गुणी में भेदाभेद सम्बन्ध होता है, निम्बार्क प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द, तीन प्रमाणों को मानते हैं। प्रत्यक्ष-इन्द्रिय और विषय के सन्निकर्ष से जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष है जो बाह्य और आन्तर दो प्रकार का होता है। बाह्य पदार्थें प्रत्यक्ष इन्द्रियज है तथा सुख-दुःख आदि आन्तरिक विषयों का इन्द्रिय-निरपेक्ष आन्तर। अनुमान-व्याप्ति पर निर्भर ज्ञान अनुमान है। शब्द-इन दो ज्ञानों से अतिरिक्त एवं सर्वाधिक प्रामाणिक ज्ञान श्रुतिमूलक होता है। निम्बार्क रामानुज के समान सत्ख्यातिवादी हैं। अनिर्वचनीय ख्याति, अख्याति, अन्यथाख्याति जैसे सिद्धान्तों का खण्डन करते हुये सत्ख्यातिवादी निम्बार्क का कथन है कि प्रमाण का बल पर भ्रान्त ज्ञान का बाध उसी प्रकार होता है जिस प्रकार पुण्य से पाप का या औषधि से रोग का। द्वैताद्वैतवाद- रामानुज के समान निम्बार्क भी चित्, अचित् और ईश्वर- इन तीन तत्त्वों को स्वीकार करते हैं। इनके मत में चित् (जीव) अचित् (जगत्) से भिन्न होते हुये भी ज्ञाता और ज्ञान का आश्रय है, जिस प्रकार सूर्य प्रकाशमय है और प्रकाश का आश्रय भी है, उसी प्रकार चित् भी एक ही काल में ज्ञानस्वरूप भी है और ज्ञान का आश्रय भी है। ब्रह्म जीव और जड़ युक्त जगत् से एक साथ भिन्न और अभिन्न है। जिस प्रकार मकड़ी अपने में से जाला बनाने पर भी उससे स्वतंत्र रहती है इसी प्रार ब्रह्म भी असंख्य जीव और जड़ में विभक्त होता हुआ भी अपनी पूर्णता एवं शुद्धता बनाए रखता है। इस प्रकार चित् का अवस्थाभेद से ब्रह्म से भिन्न तथा चैतन्यरूप से अभिन्न होने के कारण इनका मत 'द्वैताद्वैतवाद' नाम से प्रसिद्ध है।

चित् जीव निम्बार्क मत में जीव ज्ञानस्वरूप, स्वयंप्रकाश, ज्ञानाश्रय और अणुरूप है। वह विभु, नित्य एवं कर्मफल का भोक्ता है। जीव दो प्रकार के हैं बद्ध और मुक्त। अचित्-अर्थात् चेतना विहीन पदार्थ। अचित् तत्त्व तीन प्रकार का होता है- प्राकृत, अप्राकृत और काल। ईश्वर -निम्बार्क मत में ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, अचिन्त्य, सर्वनियन्ता, स्वतन्त्र अमित ऐश्वर्य से युक्त है। यह अविद्या आदि पाँच क्लेशों से मुक्त है। ईश्वर जगत् का उपादान कारण भी है और निमित्त कारण भी है। ईश्वर विश्वकल्याण के लिये अवतार धारण करता है। इस प्रकार जगत् ब्रह्म से भिन्न भी है और अभिन्न भी, स्वरूपतः ब्रह्म से इसका अभेद है और कार्य रूप से अभेद भी है। जिस प्रकार दूध से दही का परिणाम होता है, उसी प्रकार ब्रह्म से जगत् का उसकी असाधारण शक्ति से। जीवात्मा और परमात्मा के बीच भेदाभेद सम्बन्ध स्थापित है। परमात्मा नित्य आविर्भूत ज्ञान स्वरूप है जबकि जीव अनुकरण है। परमात्मा निर्लेप है, जीवात्मा भोक्ता है। जीवात्मा अनेक है तथा परमात्मा एक और विभु है। जीवात्मा परमात्मा का अंश है, जीव ही बन्ध मोक्ष को प्राप्त करता है परमात्मा नहीं। बन्धन और मोक्ष अविद्या या कर्म की निवृत्ति तथा आत्मा और ब्रह्म का स्वरूप ज्ञान मोक्ष है। निष्काम कर्म, जो ज्ञान, श्रद्धा, ध्यान, और ईश्वर समर्पण बुद्धि से किया जाता है मोक्ष प्राप्ति में सहायक होते हैं। निम्बार्क के अनुसार मोक्ष प्राप्ति का साधन प्रपत्ति (शरणागति) है। ज्ञान, कर्म, भक्ति, प्रपत्ति तथा गुरूपसिन्धि ये पाँचों समन्वित रूप में सर्वोत्तम मोक्ष के साधन हैं। उनके अनुसार जीवनमुक्ति नहीं होती, विदेहमुक्ति ही होती है।

निम्बार्काचार्य ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग में ही समन्वय स्थापित नहीं करते, अपितु भेदपरक तथा अभेदपरक श्रुति वचनों में तथा चेतन और अचेतन के द्वैत को ब्रह्मचर्य बताकर द्वैतवादी और अद्वैतवादी दर्शनों में भी एक साथ समन्वय ला देते हैं। उनका भेदाभेदवाद नाम ही समन्वयात्मक पद्धति का द्योतक है। विरोधी बातों में संगति और सामंजस्य स्थापित करना उनका मुख्य उद्देश्य प्रतीत होता है।

3.7 शब्दावली

अचित्-अर्थात् चेतना विहीन पदार्थ ज्ञानशून्य तथा विकारास्पद जड़ तŸव।
अनुमान-व्याप्ति पर निर्भर ज्ञान अनुमान है।
अप्राकृत- जिसका प्रकृति से सम्बन्ध न हो, उसे अप्राकृत कहते हैं।
ईश्वर- सर्वषक्तिमान, सर्वज्ञ, अचिन्त्य, सर्वनियन्ता, स्वतन्त्र अमित ऐष्वर्य से युक्त है।
काल- प्राकृत और अप्राकृत से भिन्न तत्त्व को काल कहते हैं, यह नित्य एवं विभु है।
चित्- चेतन जीव, ज्ञानशून्य स्वयंप्रकाश, ज्ञानाश्रय और अणुरूप।
प्रत्यक्ष-इन्द्रिय और विषय के सन्निकर्ष से जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष है जो बाह्य और आन्तर दो प्रकार का होता है।

प्राकृत- अर्थात् प्रकृति से उत्पन्न। महत् से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त सभी पदार्थ प्राकृत हैं।

सत्कार्यवाद- कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व अपने कारण में सत् रूप में विद्यमान रहता है। कारण के सत् होने पर कार्य भी सत् होता है।

मोक्षप्राप्ति के साधन- ज्ञान, कर्म, भक्ति, प्रपत्ति तथा गुरूपसन्निधि।

शरणागति- ईश्वर की शरण में जाना ही शरणागति तथा प्रपत्ति है।

3.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1.क. सही ख.गलत ग. सही घ. सही ङ . गलत

2.

(क) द्वैताद्वैतवाद

(ख) दो प्रकार का बाह्य और आन्तर।

(ग) चित्, अचित् और ईश्वर।

(घ) श्रुति से

(ङ) गुण-गुणी संबंध से

3. क. सही ख. गलत ग. सही घ. सही ङ . गलत

4. (क) तैलंग ब्राह्मण

(ख) भेदाभेद

(ग) जीवात्मा को

(घ) अचेतन

(ङ) द्वैताद्वैत

अभ्यास-

(1.) देखें उपखण्ड- 3.4.2

(2.) देखें उपखण्ड- 3.4.2

(3.) देखें खण्ड- 3.5.1

(4.) देखें उपखण्ड- 3.5.2

(5.) देखें उपखण्ड- 3.5.4

03.9 संदर्भ ग्रन्थसूची

1.दासगुप्ता एस0 एन0 (1989) भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग- 3 राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर द्वितीय संस्करण।

2. दत्त एवं चटर्जी (1994) भारतीय दर्शन, पुस्तक भण्डार, पटना।

3. शर्मा चन्द्रधर (1998) भारतीय दर्शन आलोचना एवं अनुशीलन मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली।

3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1.दासगुप्ता एस0 एन0 (1989) भारतीय दर्शन कोश, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर द्वितीय संस्करण.

2. शर्मा राममुर्ति (1998) अद्वैत वेदान्त, इतिहास तथा सिद्धान्त, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली।

3. ऋषि उमाशंकरशर्मा(1984) माधवाचार्यकृतसर्वदर्शनसंग्रह,चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी, तृतीय संस्करण।

03.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. द्वैताद्वैत दर्शन के आधार पर तŸवत्रय का विश्लेषण करें।
2. द्वैताद्वैत दर्शन के ज्ञान मीमांसा पर एक निबन्ध लिखें।
3. बन्धन तथा मोक्ष से क्या तात्पर्य है। विस्तार से लिखें।

प्रथम सेमेस्टर /SEMESTER-I

खण्ड 2- सांख्यकारिका

इकाई1.सांख्यदर्शनकासंक्षिप्त इतिहास एवं तत्वमीमांसा

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3. साख्य दर्शन का संक्षिप्त इतिहास एवं तत्वमीमांसा
1.3.1 साख्य दर्शन का संक्षिप्त इतिहास
1.3.2 साख्य दर्शन की तत्वमीमांसा
1.3.2.1 सांख्य स्वीकृत तत्वों की संख्या
1.3.2.2 सांख्य सम्मत तत्वों का स्वरूप सिद्धि
1.3.2.3 सृष्टि प्रक्रिया
1.3.2.4 सांख्य का ईश्वर विषयक विचार
1.4 सारांश
1.5 पारिभाषिक शब्दावली
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में सांख्य दर्शन का संक्षिप्त इतिहास एवं तत्वमीमांसा को रखा गया है। इसमें दो उपखण्ड है। प्रथम उपखण्ड में सांख्य दर्शन का संक्षिप्त इतिहास वर्णित है। सांख्य दर्शन के प्रवर्तक कपिल हैं उन्होने पवित्र साख्य का उपदेश अपने शिष्य आसुरि को दिया, वही ज्ञान परम्परा पंचशिख वार्षगण्य जैगीषव्य आदि के माध्यम से ईश्वर कृष्ण को मिली जिसको उन्होने सांख्य कारिका में बताया है। इसी खण्ड में इसका साहित्य भी वर्णित है।

इसके द्वितीय उपखण्ड में इसकी तत्वमीमांसा वर्णित है । इसके अन्तर्गत तत्वों की संख्या, तत्वों का स्वरूप, तत्वों की सिद्धि, सृष्टिप्रक्रिया और ईश्वर विषयक सांख्य की मान्यता को दिखाया गया है।

1 .2 उद्देश्य

प्रस्तुत प्रथम इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप यह जानने में समर्थ हो सकेगें -

1. साख्यदर्शन का संक्षिप्त इतिहास जिसमें साख्य की आचार्य परम्परा, साहित्य,
2. तत्वों की संख्या व स्वरूप, सृष्टि प्रक्रिया
3. ईश्वर विषयक प्रश्न आदि ।

1.3 सांख्य दर्शन संक्षिप्त इतिहास एवं तत्वमीमांसा:

इस खण्ड के दो उपखण्ड हैं -

1. सांख्य दर्शन का संक्षिप्त इतिहास
2. सांख्य की तत्वमीमांसा ।

1 .3.1 सांख्य दर्शन का संक्षिप्त इतिहास

सांख्य दर्शन सर्वप्राचीन आस्तिक दर्शन है। इसके प्रवर्तक महर्षि कपिल हैं । सांख्य का अर्थ है तत्वों की गणना व तत्व का ज्ञान। सांख्य का व्युत्पत्ति परक अर्थ है **संख्यायन्ते गण्यन्ते तत्वानि येन तत् सांख्यम्** अर्थात जिसमे तत्वों की संख्या गिनी जाती है वह सांख्य है। सांख्य का दूसरा व्युत्पत्तिपरक अर्थ है। संख्यायते प्रकृतिपुरूषान्यताख्यातिरूपोऽवबोधो सम्यक् ज्ञायते येन तत् संख्यम् अर्थात जिसमे प्रकृति एवं पुरूष का अन्यताख्याति रूप विवेक ज्ञान होता है वह सांख्य है। महाभारत के अनुसार तत्वों की गणना और तत्वज्ञान दोनों ही सांख्य है।

संख्या प्रकुर्वते चैव, प्रकृति´च प्रचक्षते ।

तत्वानि च चतुर्विंशत, तेन सांख्यं प्रकीर्तितम् ।।

सांख्य दर्शन में प्रकृति पुरूष सृष्टि प्रक्रिया, मोक्ष, अज्ञान, आदि का विचार मिलता है। यह सत्य है कि सांख्य का सुव्यवस्थित रूप बाद में बना किन्तु इसके बहुत से सिद्धान्तों की चर्चा वेद उपनिषद, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता तथा पुराणों में मिलती है। ऋग्वेद का पुरूष सूक्त सृष्टि की आध्यात्मिक व्याख्या करता है तो वहीं वाक् सूक्त शक्ति से सृष्टि की व्याख्या करता है। नासदीय सूक्त के तम् असीत तमसा गूढमग्रेरप्रकेतं (ऋग्वेद 10.129.3) में सांख्य के अव्यक्त का संकेत मिलता है, यही से साख्य के विचारों के प्ररस्फुटित होने का संकेत डॉ0 आद्या प्रसाद मिश्र ने माना है।

उपनिषदों में तो सांख्य दर्शन में स्वीकृत बहुत से तत्वों का संकेत मिलता है। श्वेताश्वतर उपनिषद में सांख्य के अव्यक्त आदि तत्वों का वर्णन है जैसे - **देवात्म शक्तिं स्वगुर्णैनिगूढाम्, पंचाशत् भेदां पंचपर्वामधीमः, व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः, तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिः, अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णां, मायां प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्**। श्वेताश्वतर में ही सर्वप्रथम कपिल ऋषि का नाम आया है- **ऋषिं प्रसूतं कपिलस्तमग्रे1। 521 कठोपनिषद्2** में भी सांख्य के तत्वों का संकेत है।

सत्कार्यवाद का बीज वृहदारण्यक में मिलता है। इसके अतिरिक्त महाभारत में सांख्य से सम्बन्धित आचार्य परम्परा एवं सिद्धान्तों का वर्णन मिलता है। श्रीमद्भगवत् गीता में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने अनेक स्थलों पर सांख्य योग की चर्चा की है। इसके अतिरिक्त सांख्य के सिद्धान्त भागवत्, सौर, सूर्य, लिंग, विष्णु तथा देवी भागवत् पुराणों में भी मिलते हैं।

अब आप सांख्य के प्रारम्भिक बीज कहां -कहां प्रस्फुटित हुए और इस विषय से परिचित हो गये होंगे। आगे सांख्य की आचार्य परम्परा और साहित्य पर प्रकाश डाला जायेगा।

यह सर्व स्वीकृत है कि महर्षि कपिल ही सांख्य के प्रवर्तक है। इन्हे ब्रह्मा का पुत्र, अग्नि का अवतार, और नारायण का अवतार, बताया जाता है। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने को सिद्धों में कपिल मुनि कहा है- सिद्धानां कपिलो मुनिः इन्हें सिद्धेश, निर्माणचित्त का आश्रय लेकर पवित्र सांख्य का उपदेश करने वाला आदिविद्वान् कहा जाता है। डॉ सुरेशचन्द श्रीवास्तव के अनुसार पिशंग वस्त्र धारण करना कदाचित् कपिल के नामकरण का भी एक कारण हो, क्योंकि कपिल और पिशंग शब्द पर्यायवाची है। इन्होने निर्माणचित्त का आश्रय लेकर आसुरि को पवित्र सांख्य ज्ञानात्मक तंत्र का उपदेश किया। आज भी विश्व दार्शनिक समुदाय कपिल के स्थापित सिद्धान्तों के सामने नतमस्तक है। क्योंकि वे दर्शन के कई अंगो यथा तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा व नीति मीमांसा को दर्शन का अनिवार्य अंग मानें। आज भी यही तीनों अंग दर्शन के आधारभूत अवयव माने जाते हैं। तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा व नीतिमीमांसा को सर्वप्रथम प्रस्तुत करके इन्होने दर्शन जगत का बहुत ही उपकार किया है। आचार्य कपिल के नाम से कई ग्रन्थों को कुछ लोग जोड़ते हैं जैसे सांख्यप्रवचनसूत्र और तत्वसमास। सांख्यप्रवचनसूत्र किसी परवर्ती आचार्य की रचना है। तत्वसमास को कुछ विद्वान कपिल की रचना मानते हैं और कुछ इसे दूसरे आचार्य की रचना मानते हैं

आचार्य कपिल के बाद उनके शिष्य आसुरि का नाम सांख्याचार्य के रूप में मिलता है। माठर वृत्ति के अनुसार अत्यन्त ही कारूण्य भाव से बार-बार आग्रह करके गृहस्थ धर्म में आसक्त आसुरि को कपिल ने अपना शिष्य बनाया और उन्हे पवित्र तंत्र (सांख्यशास्त्र) का उपदेश किया।

आसुरि ने पंचशिख को अपना शिष्य बनाया। इन्हे पांचरात्रविशारद कहा गया है। इन्होने आसुरि से प्राप्त सांख्य को षष्टितन्त्र में प्रकाशित किया और बहुत से शिष्यों को उसे पढ़ाया। पंचशिख के द्वारा लिखा गया षष्टितंत्र नामक ग्रन्थ आज नहीं मिलता है किन्तु पंचशिख के विचार परवर्ती ग्रन्थों में मिलते है। उनमें कुछ इस प्रकार है –

1. **स्यात् स्वल्पः सङ्करः सपरिहारः सप्रत्यवर्म्ष ..... (तत्व कौमुदी) 2. एकमेव दर्शनं ख्यातिमेव दर्शनम्योगसूत्र।**

पंचशिख के अनन्तर जैगीषव्य का नाम मिलता है। जैगीषव्य परम योगी थे इन्होने उमा और महेश को भी योग का प्रदर्शन कर आश्चर्य चकित किया था। इसके अतिरिक्त वार्षगण्य, विन्ध्यवास असितदेवल आदि को भी सांख्याचार्य के रूप में माना गया। वार्षगण्य के बाद प्रसिद्ध सांख्याचार्य के रूप में ईश्वरकृष्ण का ही उल्लेख मिलता है इन्हें कपिल के द्वारा उपदिष्ट मूल सांख्यीय विचार धारा का अनुयायी माना जाता है। इन्होने सांख्यकारिका नामक प्रमुख ग्रन्थ लिखा जिसके ऊपर वर्तमान सांख्य दर्शन का स्वरूप अवलम्बित है। स्वयं ईश्वरकृष्ण ने कहा है मैनें पवित्र सांख्य का संकलन आख्यायिका आदि से रहित सांख्यकारिका में किया है। इसमें कुल 72/73 कारिकायें हैं।

सांख्यकारिका को सांख्यसप्तति, हिरण्यसप्तति, कनकसप्तति, सुवर्णसप्तति भी कहा जाता है।इसी ग्रन्थ पर आधृत सांख्य के स्वरूप से हम परिचित हैं। शंकराचार्य ने सांख्य का खण्डन करते समय सांख्यकारिका से उद्धरण दिये हैं। सांख्यकारिका पर अनेक टीकाएँ लिखी गयी हैं। माठरवृत्ति, गौडपादभाष्य, जयमंगला, तत्वकौमुदी युक्तिदीपिका आदि प्राचीन टीकाएँ है। इस ग्रन्थ पर कुछ नवीन टीकाएँ भी हैं जैसे बालराम उदासीन की विद्वन्ततोषिणी, वंशीधर मिश्र का साख्यतत्वदिवाकर, श्रीकृष्णबल्लभाचार्य की किरणावली, शिवनारायणशास्त्री की सारबोधिनी, हरीराम शुक्ल की सुषमा, डॉ0 आद्याप्रसाद मिश्र की सांख्य तत्व कौमुदीप्रभा (हिन्दी में) आदि। इनके अतिरिक्त सांख्यसूत्रवृत्ति, महादेव का सांख्यसूत्रविस्तर, नागेश की लघुसांख्यसूत्रवृत्ति, विज्ञानभिक्षु का साख्यप्रवचनभाष्य तथा सांख्यसारः इत्यादि ग्रन्थ भी सांख्य से सम्बन्धित ग्रन्थ है।

1.3.2 सांख्य दर्शन की तत्वमीमांसा

आप सांख्य दर्शन के अर्थ, आचार्य परम्परा व साहित्य आदि से भलीभाँति परिचित हो गये होगें। अब सांख्य दर्शन की तत्वमीमांसा पर विचार किया जायेगा। सांख्य की तत्वमीमांसा का वर्णन करने के पहले तत्वमीमांसा का अर्थ जानना उचित होगा।

तत्वमीमांसा का अर्थ - दर्शन का मौलिक स्वरूप तत्वविषयक है। दार्शनिक मूल तत्व की समस्या पर विचार करते हैं। मौलिक तत्व की संख्या कितनी है। एक है या अनेक है। मौलिक तत्व का स्वरूप चेतन है अचेतन। मूल तत्व के साथ एक और भी प्रश्न जुड़ा हुआ है। यदि तत्व मौलिक है। तो सम्पूर्ण सृष्टि उसी से हुई है। दूसरे शब्दों में सृष्टि मूल तत्व की कृति है। अतः सृष्टि विचार भी तत्वमीमांसा से सम्बन्धित है। मान लिया जाय कि सृष्टि कार्य है। तो इसका कर्ता अवश्य होगा। इस सृष्टिकर्ता को प्रायः ईश्वर कहते है। अतः ईश्वर विचार भी तत्वमीमांसा से सम्बन्धित है। इस प्रकार तत्वों की संख्या, स्वरूप, सृष्टि प्रक्रिया और ईश्वर विचार ही तत्वमीमांसा है।

1.3.2.1 सांख्य स्वीकृत तत्वों की संख्या –

सांख्य दर्शन में स्वीकृत तत्वों की संख्या का संकेत करते हुए गौडपाद कहते है-

पंचविंशतितत्वज्ञो यत्र तत्र आश्रमे वसन् ।

जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशय:।।

अर्थात जिस किसी भी आश्रम में निवास करने वाला जटाधारी, सिर मुड़ायें रहने वाला और शिखा धारण करने वाला 25 तत्वों के ज्ञान से मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इसमें संदेह नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सांख्य दर्शन 25 तत्वों को स्वीकार करता है। ये तत्व हैं- प्रकृति, महान, अहंकार 11 इन्द्रियां, 5 तन्मात्र, 5 महाभूत। इन्हीं पच्चीस तत्वों को व्यक्त अव्यक्त एवं ज्ञ में ईश्वकृष्ण ने अन्तर्भूत किया है, और इन्हीं के तत्वज्ञान से उत्पन्न कैवल्य को त्रिविध दुःख शमन का आत्यंतिक व एकांतिक उपाय बताया है1। अव्यक्त तत्व प्रकृति है। और ज्ञ तत्व पुरूष है। इनपर क्रमशः प्रकाश डाला जा रहा हैं। इन्ही 25 तत्वों को अविकृति, प्रकृति विकृति, विकृति, न प्रकृति न विकृति के चार विभाग में दिखाया गया है2।

प्रकृति अविकृति तत्व है यह एक है। प्रकृति विकृति और विकृति ये कुल 23 तत्व हैं। और ये प्रकृति के परिणाम विशेष हैं। ज्ञ तत्व पुरूष हैं। यह अनेक है। इनमें स्वरूपगत एकता एवं संख्यागत भिन्नता है। चूँकि प्रकृति और पुरूष के संयोग से 23 व्यक्त तत्व उत्पन्न होते हैं। अतः इन 23 तत्वों के स्वरूप का प्रतिपादन सृष्टि प्रक्रिया को बतलाते हुए किया जायेगा। चूँकि व्यक्त प्रकृति के परिणाम हैं। अतः प्रकृति और पुरूष ही दो मूल तत्व हैं। इन्ही दो मूल तत्वों को स्वीकार करने के कारण सांख्य दर्शन को द्वैतवादी दर्शन कहते है। दो मूल तत्वों की संख्या स्वीकार करना ही द्वैतवाद है। सांख्य के अनुसार तत्व और उसके परिणाम सभी यथार्थ हैं। अतः यह यथार्थवादी दर्शन है।

1.3.2.2 सांख्य सम्मत मूल तत्वों का स्वरूप व सिद्धि-

चूँकि प्रकृति और पुरूष ये दो ही मूल तत्व हैं। अतएव इन के स्वरूप व सिद्धि पर विचार करना युक्ति संगत होगा। सांख्य सम्मत प्रकृति तत्व स्वरूप व सिद्धि - प्रकृति का अर्थ है प्रकरोति इति

प्रकृतिः प्रकृष्ट सर्जनात्मक शक्ति ही प्रकृति है। अव्यक्त, प्रधान और माया इसके अपर पर्याय है। समस्त कार्य इसमें अव्यक्त रूप से विद्यमान रहते है अतः इसे अव्यक्त कहते हैं। **प्रकर्षेण धीयते अवस्थाप्यते अत्राखिलम् इति प्रधानम्1** अर्थात् सम्पूर्ण कार्य समूह जिसमें प्रकृष्ट रूप से अवस्थित हो जाता हैं। वह प्रधान है। **देवी भागवत2** के अनुसार प्रकृति में प्र शब्द और कृति शब्द है। प्रशब्द का अर्थ है- प्रकृष्ट और कृति का अर्थ है सृष्टि जो सृष्टि करने में मूल तत्व है। वही प्रकृति है। प्र,कृ, और ति सत्व, रजस एवं तमो गुण के बोधक हैं। अतः त्रिगुणात्मिका शक्ति प्रकृति है। वही प्रकृति है। प्र शब्द प्रथम का वाचक है कृति-सृष्टि का वाचक है अतः जो सृष्टि का आदि कारण है वही प्रकृति है।

प्रकृति अन्य कारण से अनुत्पन्न है अतः अकारण है। नश्वर नहीं होने से नित्य है। कार्यो में व्याप्त रहने से व्यापक है। एक है। आश्रय है क्योंकि कार्य इसी में आश्रय लेते है। अन्य कहीं लीन न होने से अलिंग है। निरवयव है। स्वतन्त्र है। त्रिगुणात्मिका है। अविवेकी है। भोग्य होने से विषय है। सर्वसाधारण होने से सामान्य है। सुख-दुःख एवं मोह को नही जानती है अतः अचेतन है। जड़ है। नित्यपरिणामी है। प्रकृति में प्रलयावस्था में गुणों में सरूपरिणाम और सृष्टि की बेला में विरूपपरिणाम होते हैं। यह अत्यन्त सूक्ष्म है। इसकी उपलब्धि इसके कार्यों से होती है। इसकी सत्ता सामान्यतोदृष्ट अनुमान से सिद्ध होती है। प्रकृति ही पुरूष का कैवल्य सम्पन्न करती है। प्रकृति उपकारिणी है। गुणवती है। विभिन्न आश्रयों वाली प्रकृति ही बँधती, संसरण करती एवं छूटती है। तीनों गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है। गुण का अर्थ है दूसरे के लिए होना, रज्जु होना, गौड होना इन तीनों ही अर्थों में सत्व, रजस् तमस् गुण हैं। ये प्रकृति के संरचनात्मक तत्व है। प्रकृति और गुणों में तद्रूपता है। चन्द्रधर शर्मा के अनुसार तीनों गुण प्रकृति के निर्माणक व संघटक तत्व हैं।

सत्वगुण –

सत्व गुण का स्वरूप सुखात्मक है। इसका प्रयोजन विषयों को प्रकाशित करना है। यह लघु है। इसका रंग श्वेत है। इसके उत्कट होने पर सरलता सत्य पवित्रता क्षमा धैर्य अनुकम्पा लज्जा शान्ति संतोष और सच्ची श्रद्धा उत्पन्न होती है। अंग हल्के होते हैं। इन्द्रियों में निर्मलता होती है। वे विषयों को प्रकाशित करती हैं। धर्म में सदैव प्रीति होती है। **रजोगुण** – रजोगुण का स्वरूप दुखात्मक है। क्रियाशील रहते हुए दूसरे गुणों को उत्तेजित करना इसका प्रयोजन है। इसका रंग लाल है। जब यह प्रबल होता है तो उत्कंठा अनिद्रा राजसी श्रद्धा द्वेष द्रोह मत्सर स्तम्भ मान मद गर्व उत्पन्न होता है। रजोगुण की प्रबलता से चित्त अस्थिर होता है।

तमोगुण - तमोगुण का स्वरूप मोहात्मक है। नियमन करना इसका प्रयोजन है। वह भारी और अवरोधक है। इसका रंग कृष्ण है। इससे विषाद उत्पन्न होता है। इसके प्रबल होने पर आलस्य अज्ञान

निद्रा दीनता भय विवाद कायरता कुटिलता रोष वैषम्य अतिनास्तिकता, दूसरों के दोषमात्र देखने की प्रवृत्ति, दूसरों को पीड़ित करने की प्रवृत्ति होती है।

गुणों का व्यापार- गुणों का व्यापार निम्न वाक्यांश में वर्णित है।

अन्योऽन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च

तीनो गुण परस्पर एक दूसरे को तिरस्कृत करने वाले हो कर ही अपने प्रयोजन को करते हैं जैसे सत्वगुण तमोगुण व रजोगुण को अभिभूत करके ही विषयों को प्रकाशित करता है ऐसे ही रजोगुण और तमोगुण भी अन्य दोनो गुणों को अभिभूत करके अपने प्रयोजन को पूरा करते है।

गुण एक दूसरे क आश्रय बनने वाले होते है। जब विषयें का प्रकाशन होता है तो वह तमोगुण और रजो गुण पर अवलम्बित होता है ऐसे ही अन्य गुणो की क्रिया अन्य दूसरे पर अवलम्बित होती है। तीनों गुण एक दूसरे के परिणाम सहकारी हैं। गुण परस्पर अपेक्षा रखते हुए प्रलयावस्था मे प्रकृति मे सरूपरिणाम (जनन) उत्पन्न करते है। ये परस्पर मिथुन भाव से रहते है ये परस्पर सहयोगी है जैसे स्त्री पुरूष मिलकर अपने प्रयोजनो को पूरा करते हैं ठीक वैसे ही गुण भी परस्पर सहायक होकर ही अपना प्रयोजन पूरा करते हैं। जैसा कि कहा गया हे-

अन्योन्यमिथुनाः सर्वे सर्वे सर्वत्रगामिनः।
रजसो मिथुनं सत्वं सत्वस्य मिथुनं रजः।।
तमसश्चापि मिथुने ते सत्वरजसी उभे।
उभयोः सत्व रजसोर्मिथुनं तम उच्यते।।
नैषामादिः सम्प्रयोगो वियोगो वोपलभ्यते।।देवीभागवत्

गुण एक दूसरे की वृत्ति को उत्पन्न करते हैं अन्योन्यवृत्तिः जनयन्ति इति माठरः) जैसे कोई जैसे कोई नय विनम्रता विश्वास चतुरा स्त्री भातृ बन्धु व पति को सुखी करती है वही सौतों मे दुःख एवं मोह को उत्पन्न करती है। इस प्रकार सत्व गुण के द्वारा रजो गुण व तमो गुण की वृत्ति उत्पन्न की जाती है, ऐसे ही अन्य दोनो गुण भी अन्य दोनों के व्यापार को उत्पन्न करते है। भगवान श्री कृष्ण ने भी गीता मे इसका संकेत किया है- गुणा गुणेषु वर्तन्ते।

सांख्यकारिका में प्रकृति के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए पांच हेतुओं को दिया गया है। जो निम्न कारिका में हैं।

भेदानां परिमाणात् समन्वयाच्छक्तितः प्रवृत्तेश्च।
कारणकार्यविभागादविभागाद् वैश्वरूप्यस्य।।का0.15।।

भेदानां परिमाणात्- महदआदि कार्यों के सीमित होने से अव्यक्त का अस्तित्व सिद्ध होता है।

इस संसार के पदार्थ सीमित परतंत्र अव्यापक और अनेक हैं। ये असीमित स्वतंत्र व्यापक और एक की ओर संकेत करते हैं। जैसे बुद्धि अहंकार 11 इन्द्रियां 5 तन्मात्र 5 महाभूत सीमित परतंत्र अव्यापक और अनेक हैं इनका जो कारण है वह असीमित स्वतंत्र व्यापक और एक होना चाहिए

वह कारण है अव्यक्त।

समन्वयात् - संसार के सभी पदार्थ सुखात्मक दुखात्मक और मोहात्मक हैं इन सभी कार्यों के मूल कारण में भी इस त्रिगुणात्मक स्वभाव का होना आवश्यक है। इनका मूल कारण अव्यक्त है जो त्रिगुणात्मक है। इस प्रकार तीनो गुणों के स्वरूप का समन्वय प्रकृति में होने से उसका अस्तित्व सिद्ध है।

शक्तितः प्रवृत्तेः - शक्ति से प्रवृत्त होने से अव्यक्त का अस्तित्व सिद्ध होता है। व्यक्त आदि कार्य शक्ति के द्वारा ही उत्पन्न होते हैं। शक्ति आश्रयहीना नहीं होती है। उस शक्ति का आश्रय अव्यक्त है। लोक में जिस व्यक्ति में जैसा कार्य करने की शक्ति होती है वैसे ही कार्य को करता है ठीक ऐसे ही सृष्टि को उत्पन्न करने की शक्ति केवल प्रकृति में ही है। अतः उसका अस्तित्व सिद्ध है।

कारणकार्यविभागात् - करोति इति कारणं क्रियते इति कार्यं तयोर्विभागः तस्मात् जो करता है वह कारण है और जो किया जाय वह कार्य कहा जाता है, चूँकि कारण अलग होता है और कार्य अलग होता है इससे भी प्रकृति का अस्तित्व सिद्ध होता है। जैसे मिट्टी का पिण्ड कारण है और घट कार्य है क्योंकि वही मधु जल दुग्ध आदि ग्रहण करने मे समर्थ है न कि मिट्टी का पिण्ड। इसी तरह से व्यक्त और अव्यक्त में भी भेद है ,व्यक्त कार्य अलग हैं और अव्यक्त प्रधान व्यक्त से भिन्न कारण है अतः अव्यक्त का अस्तित्व सिद्ध है।

वैश्वरूप्यस्य अविभागात् - विश्वरूपस्य भावो वैश्वरूप्यम् बहुरूपम् इति अर्थः तस्य विश्वरूपता का भाव ही वैश्वरूप्य है। वैश्वरूप्य का अर्थ है बहुरूपता उसके अविभक्त रूप में अन्तर्भूत होने के कारण प्रधान का अस्तित्व सिद्ध है। प्रलयकाल में त्रैलोक्य 5 महाभूतों में अभिन्न बन जाता है। 5 महाभूत 5 तन्मात्राओं मे अभिन्न बन जाते हैं। पंच तन्मात्र और 11 इन्द्रियां अहंकार में , अहंकार बुद्धि में और वह अव्यक्त में अविभक्त बन जाती हैं। इस प्रकार तीनो लोक प्रलयकाल में प्रकृति में अविभक्त रूप से विद्यमान रहते हैं। सभी कार्य समूह के प्रकृष्ट रूप से अवस्थित होने के कारण अव्यक्त को प्रधान कहते हैं। माठरवृत्ति कहती है- **प्रकर्षेण धीयते अवस्थाप्यते अत्राखिलमिति प्रधानम्**। इस अविभाग के कारण प्रकृति का अस्तित्व सिद्ध होता है।

सांख्य सम्मत पुरूष का स्वरूप अस्तित्व व बहुत्व सिद्धि - आप प्रकृति के स्वरूप गुण और प्रकृति की सिद्धि से परिचित हो चुके हैं। अब सांख्य सम्मत पुरूष तत्व का विवेचन किया जायेगा।

पुरूष ज्ञ आत्मा पर्याय है। पुरूष न तो प्रकृति है न विकृति है। यह किसी अन्य कारण से उत्पन्न नहीं होता है। अतः विकृति अर्थात कार्य नहीं है। और इससे अन्य कोई उत्पन्न ही नहीं होता है अतः यह किसी दूसरे का कारण भी नहीं है। अतएव यह न तो प्रकृति है न विकृति। पुरूष कार्य एवं कारण से अतीत है। पुरूष निर्गुण विवेकी भोक्ता असाधारण चेतन अपरिणामी है। पुरूष अहेतुमत् नित्य व्यापक निष्क्रिय अनेक आश्रय अलिंग निरवयव और स्वतंत्र तत्व है। पुरूष वस्तुतः साक्षी द्रष्टा अकर्ता और उदासीन है, जो पुरूष का स्वरूप धर्म है। संसारी अवस्था में प्रकृति से संयुक्त होने से यह कर्ता और भोक्ता सा प्रतीत होता है। यह सत् चित् है। वन्धन अवस्था में इसे सुख और दुःख का अभिघात सहना पड़ता है। जब तक कैवल्य नहीं हो जाता है। तब तक उसे सुख-दुःख भोगना पड़ता है। पुरूष अनुपकारी है। प्रकृति के द्वारा इसका कैवल्य सम्पन्न होता है।

पुरूष सूक्ष्म तत्व है। इसकी सिद्धि सामान्यतोदृष्ट अनुमान से होती है। पुरूष की सत्ता सिद्ध करने के लिए ईश्वरकृष्ण ने निम्न कारिका में पांच हेतुओं को दिया है ।

सङ्घातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविषययादधिष्ठानात्।
पुरूषोऽस्ति भोक्तृभावात्,कैवल्यार्थं प्रवृतेश्च ।। का0.17।।

पुरूषः अस्ति अर्थात पुरूष है, इसके अस्तित्व के साधक हेतु हैं-

सङ्घातपरार्थत्वात्

जो यह महदादि सघात पदार्थ है वह पुरूष के लिए है ऐसा अनुमान किया जाता है। क्योकि संघात पदार्थ अचेतन है अतःवे पर्यंक् की तरह दूसरे के लिए है और भी यह शरीर पंचमहाभूतो का संघात है।यह भोग्य शरीर जिसके लिए है वह पुरूष है।

त्रिगुणादिविपर्ययाद्

त्रिगुण,अविवेकि विषय सामान्य अचेतन परिणाम धर्म सावयव,परतंत्र से विपरीत धर्मो वाला होने से पुरूष का अस्तित्व सिद्ध है। व्यक्त तथा अव्यक्त दोनो ही मे ये सरूप धर्म है-त्रिगुण अविवेकि विषय,सामान्य परिणाम समान धर्म है। त्रिगुण निर्गुण का अविवेकी, विवेकी का,और विषय अविषय का ,सामान्य असामान्य का तथा चेतन अचेतन का परिणाम अपरिणाम का निर्देश करता है। ये व्यक्त एवं अव्यक्त के विपरीत धर्म जिसमे है वह तत्व पुरूष है।

अधिष्ठानात्-संचालक होने के कारण भी पुरूष का अस्तित्व है। व्यक्त और अव्यक्त सभी त्रिगुणात्मक होने से जड़ हैं। वे स्वयं अपना संचालन नही कर सकते है। उसके संचालक के रूप में पुरूष की सत्ता सिद्ध होती है। जैसे- संसार मे लंघन धावन क्रिया मे समर्थ अश्वो से युक्त रथ सारथी के द्वारा प्रेरित होता है वैसे ही यह अचेतन शरीर भी पुरूष के द्वारा प्रेरित होता है। गीता भी कहती है।

..... **हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।यही रहस्य पंचशिख ने ष्टितन्त्र मे निर्दिष्ट किया है ।**

पुरूषाधिष्ठितं प्रधानं प्रर्वतते ।

4.भोक्तृभावात्

भोक्ता का भाव हो के कारण भी पुरूष का अस्तित्व सिद्धि होता है। व्यक्त और अव्यक्त विषय और सामान्य है। भोग्य होने के कारण विषय है । मूल्यदासी वत् होने के कारण सामान्य है। इन भोग्य पदार्थो को भोक्ता की अपेक्षा होती है। वह भोक्ता पुरूष है जैसे षड्रस समन्ति व्यंजन भोग्य है उसके भोक्ता के रूप मे यज्ञदत्त कि सिद्धि होती है। ऐसे ही महदादि लिड्.ग स्वयं अपने भोक्ता नही है ये भोग्य है ।इनके भोक्ता के रूप मे आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है।

कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च

कैवल्य के लिए प्रवृत्त होने से भी पुरूष की अलग सत्ता सिद्ध होती है। कैवल्य का अर्थ है दुःख का आत्यन्तिकशमन। यतः शास्त्र कैवल्य का प्रतिपादन करते है और लोग इसे पाना चाहते हैं। अतः यह सिद्ध होता है कि पुरूष है जो मुक्ति चाहता है।

अद्वैत वेदान्त एकात्मवाद का सिद्धान्त मानता है। किन्तु सांख्य दर्शन बहुत से पुरूषों की सत्ता स्वीकार करता है। इसके अनुसार पुरूषों में स्वरूपगत एकता किन्तु संख्यागत बहुत्व है।पुरूष बहुत्व को सिद्ध करने के लिए सांख्यकारिका में पांच हेतु दिये गए हैं -

जननमरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च

पुरूष बहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव ।। का0 18

पुरूषबहुत्वं सिद्धम अर्थात् पुरूष बहुत से हैं यह सिद्ध है। इसके सिद्धि के हेतु हैं -

जननमरणकरणानां प्रतिनियमाद् –

जन्म मृत्यु तथा इन्द्रियों की प्रत्येक जीव के साथ अलग-अलग व्यवस्था होने के कारण पुरूष बहुत हैं। यदि आत्मा एक होती तो एक ही जीव के जन्म से सभी जीवों का जन्म हो जाता। लेकिन हम देखते हैं कि एक ही जीव के जन्म के साथ सभी जीवों का जन्म नहीं होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि आत्मा एक नहीं अनेक है। इसी तरह से प्रत्येक जीव की मृत्यु भी अलग-अलग होती है। ऐसा नहीं है कि यदि एक की मृत्यु हो जाय तो सभी मर जायँ। इससे भी सिद्ध होता है कि आत्मा एक नहीं अनेक है। इसी तरह से प्रत्येक जीव के साथ ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के बीच अलग-अलग व्यवस्था देखने को मिलती है। यदि आत्मा एक ही होती तो एक जीव के अन्धे होने पर सभी जीव अन्धे हो जाते। एक ही जीव के पंगु होने पर सभी जीव पंगु हो जाते। किन्तु ऐसा लोक में दिखाई नहीं पड़ता है। अतएव यह मानना युक्ति संगत है कि जीव एक नहीं अनेक हैं। इस अंश में पुरूष बहुत्व के साधक तीन हेतु जन्म की व्यवस्था, मृत्यु की अलग-अलग व्यवस्था और इन्द्रियों की अलग-अलग व्यवस्था को बताया गया है।

अयुग्पद्प्रवृत्तेश्च- और सभी जीवों के एक ही साथ सदृश कार्यों में प्रवृत्त न होने से भी पुरूष का बहुत्व सिद्ध होता है। यदि आत्म तत्व एक होता तो सभी जीवों की क्रियाओं में सादृश्य दिखाई पड़ता, किन्तु हम देखते हैं कि सभी जीव एक ही साथ एक ही कार्य में प्रवृत्त नहीं होते हैं कुछ जीव धर्म में प्रवृत्त होते हैं तो कुछ अधर्म में। कुछ जीव वैराग्य में प्रवृत्त होते हैं तो कुछ जीव आसक्ति में लगे होते हैं। कुछ जीव ऐश्वर्य में प्रवृत्त होते हैं तो कुछ जीव अनैश्वर्य की ओर प्रवृत्त होते हैं। इससे यह सिद्ध होता है पुरूष एक नहीं है बल्कि अनेक है।

त्रैगुण्यविपर्ययात् च तीनों गुणों के परिणाम सुख दुःख मोह में विपर्यय दिखाई पड़ने से पुरूष बहुत हैं। यदि आत्मा एक हो तो सभी जीवों को एक ही साथ सुखी एक ही साथ दुखी अथवा एक ही साथ मोहयुक्त होना चाहिए, किन्तु हम देखते हैं समान जन्म होने पर भी सात्विक पुरूष सुखी, राजसी दुखी तथा तामसी व्यक्ति मोहयुक्त होता है। इस कारण यही मानना युक्तिसंगत है कि आत्मा एक नहीं अनेक है।

1.3.2.3 सांख्य सम्मत सृष्टि प्रक्रिया

सांख्य की सृष्टि प्रक्रिया पर विचार करना अपेक्षित है। सांख्य की सृष्टि प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रकृति पुरूष सम्बन्ध व सृष्टि क्रम पर विचार किया जायेगा।

प्रकृति पुरूष सम्बन्ध – सांख्य दर्शन द्वैतवादी दर्शन है प्रकृति एवं पुरूष के सम्बन्ध से प्रकृति में गुणक्षोभ होता है। और सरूप परिणाम वाली प्रकृति निरूप परिणाम वाली होकर व्यक्त का प्रसव करती है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका अविवेकी विषय सामान्य अचेतन और परिणामी है। पुरूष तत्व निर्गुण विवेकी भोक्ता असाधारण चेतन और अपरिणामी है। प्रकृति अचेतन है। और क्रियाशील है। पुरूष चेतन है। और निष्क्रिय है। दोनों में संयोग के कारण अचेतन प्रकृति के विकार महत आदि में चैतन्य भास होता है। और प्रकृति में कर्तृत्व आदि की प्रतीति। प्रकृति जो अचेतन है तथा पुरूष जो चेतन है। दोनों का संयोग क्यों होता है। इसपर सांख्य कारिका में कहा गया है-

पुरूषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य

पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत् कृतः सर्ग ।। का0-21

पुरूष द्वारा प्रधान को देखने के लिए और प्रधान द्वारा पुरूष का कैवल्य कराने के लिए लंगड़े व अन्धे की तरह दोनो का संयोग होता है। उन दोनो के संयोग का फल सृष्टि है। पुरूष का प्रकृति के साथ जो संयोग है वह प्रकृति को देखने के लिए होता है। प्रकृति महत् से महाभूत पर्यन्त जो सृष्टि है उसे पुरूष देखता है। और प्रकृति का पुरूष के साथ जो संयोग है। वह पुरूष का कैवल्य सम्पन्न कराने के लिए है। इन दोनों का सम्बन्ध पंगु और अँधे की तरह से होता है। पुरूष पंगु है और प्रकृति अँधी है। जैसे गमन करने में असमर्थ पंगु एवं देखने में असमर्थ अँधा व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्तकर वियुक्त हो

जाते हैं। वैसे ही क्रिया रहित दर्शन शक्ति वाले पुरूष और क्रियावती किन्तु दर्शन शक्ति रहित प्रकृति भी अपने अपने दर्शन और कैवल्य रूप प्रयोजन को सम्पन्न करके वियुक्त हो जाते है। प्रकृति और पुरूष का सम्बन्ध सप्रयोजन है। सोद्देश्य है। संयोग का अर्थ वाचस्पति के अनुसार प्रकृति और पुरूष की सन्निधि है। डॉ संगम लाल पाण्डेय के अनुसार जब तक पुरूष और प्रकृति का विवेक नहीं हो जाता तब तक कैवल्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। विवेक प्राप्ति के लिए पुरूष को प्रकृति की आवश्यकता है। पुरूष और प्रकृति की आवश्यकताओं में भोगों में एकता है। पुरूष जिस विवेक को चाहता है। उसी को प्रकृति भी चाहती है। इसी कारण दोनों का संयोग होता है1। प्रकृति और पुरूष दोनों एक दूसरे का उद्देश्य पूरा करते है। चेतनाशून्य दूध बछड़े के पोषण के लिए गाय के शरीर से प्रस्रवित होता है, वैसे ही ज्ञानशून्य (अचेतन) प्रकृति का परिणाम पुरूष के कैवल्य के लिए है2 प्रकृति और पुरूष का संयोग अनादि है। यह देश और काल में घटित होने वाला नहीं है। प्रकृति और पुरूष के सम्बन्ध की व्याख्या करने के लिए यह उदाहरण भी दिया जाता है- जैसे चुम्बक के सन्निधि मात्र से ही लोहे के टुकड़ों में गतिशीलता होती है। ठीक ऐसे ही पुरूष की सन्निधि मात्र से ही प्रकृति विरूप परिणाम वाली होती है।

1. **भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण पृष्ठ 231 2. सांख्यकारिका 57**

पुरूष का सम्बन्ध विशेष रूप से प्रकृति के परिणाम बुद्धि से होता है। लेकिन इस सम्बन्ध का स्वरूप स्पष्ट करना कठिन है। बुद्धि करणों में सूक्ष्म है। इसी में पुरूष की छाया पड़ती है। जिसके कारण बुद्धि चेतनावति हो जाती है। और वह पुरूष स्वरूपा हो जाती है। ऐसी बुद्धि पुरूष के लिए भोग को उत्पनन करती है। बुद्धि के द्वारा ही पुरूष सुख-दुःख मोहात्मक संसार से भोक्ता या साक्षी के रूप में जुड़ता है। जो बुद्धि प्रकृति का भोग सम्पन्न करती है वही बुद्धि अन्त में प्रकृति और पुरूष का विभेद ज्ञान भी उत्पन्न करती है1। बुद्ध और पुरूष के सम्बन्ध का निरूपण भी जटिल है पुरूष और लिंग शरीर का संयोग देश और काल में घटित होने वाला नहीं है किन्तु दोनों में संयोग के अनन्तर अचेतन लिंग शरीर चेतन सा हो जाता है और निष्क्रिय पुरूष कर्ता और भोक्ता सा हो जाता है। सांख्य दर्शन ने प्रकृति और पुरूष के संयोग की संतोष जनक व्याख्या नहीं की है। ऐसा विद्वानों का मत है। प्रकृति और पुरूष का संयोग सोद्देश्य है। और इन दोनों के संयोग का फल है सृष्टि। जब तक प्रकृति और पुरूष का संयोग रहता है। तब तक सृष्टि की स्थिति रहती है। दोनों का वियोग होने पर प्रलय की स्थिति होती है।

सृष्टिक्रम - प्रकृति एवं पुरूष के संयोग का फल है सृष्टि । गुणक्षोभ होने पर प्रकृति में विरूप परिणाम होता है। तब प्रकृति से महत्, उससे अंहकार, अहंकार से 11 इन्द्रियां और पांच तन्मात्र , और पांच तन्मात्राओं से पांच महाभूत उत्पन्न होते हैं। चूकि ये 23 तत्व निश्चित क्रम से ही उत्पन्न है। अतः उनपर उसी क्रम से वर्णन किया जायेगा।

महत् तत्व - यह प्रकृति से उत्पन्न होने वाला प्रथम तत्व है। मति ख्याति प्रत्यय उपलब्धि और प्रज्ञा पर्याय है। यह विश्व का बीज है। समष्टि रूप में इसे महत् कहते है। व्यष्टि रूप में बुद्धि । का इसका स्वरूप अध्यवसाय है। सामने दिखलाई पड़ने वाला व्यक्ति राम ही हैं। ऐसा निश्चय अध्यवसाय है। अध्यवसाय करने वाला तत्व बुद्धि है। बुद्धि के सात्विक और तामस दो रूप है। सात्विक बुद्धि के चार अंग है- धर्म ज्ञान विराग और ऐश्वर्य । तामस बुद्धि के भी चार अंग हैं- अधर्म अज्ञान राग और अनैश्वर्य इस प्रकार बुद्धि आठ अंगों वाली है। धर्म से उर्ध्व लोक की प्राप्ति होती है। अधर्म से अधोगति होती है। ज्ञान से अपवर्ग होता है। और अज्ञान से बन्धन होता है वैराग्य से प्रकृति लय की अवस्था होती है। रजोमय राग से संसरण होता है। एश्वर्य से इच्दा की सफलता तथा अनैश्वर्य से इच्छाओं का हनन होता है। बुद्धि पुरूष के लिए सभी विषयों के भोग का संपादन करती है। और वही प्रकृति और पुरूा का ज्ञान ही भेद सम्पन्न करती है। विपर्यय अशक्ति तुष्टि सिद्धि ये प्रत्यय सर्ग हैं। विपर्यय के पांच भेद हैं। 28 भेद अशक्ति के हैं। त्रुष्टि के 9 भेद हैं सिद्धि के 8 भेद है। इस प्रकार प्रत्यय सर्ग के कुल 50 भेद है।

अहंकार तत्व:- महत् से उत्पन्न होने वाला तत्व अहंकार है। अहंकार को अभिमान कहते हैं। रूप आदि विषयों में अभिमान अहंकार है। जैसे मैं रूपवान हूँ ये विषय मेरे लिण् है मैं इसे करने में असमर्थ हूँ यह सब अभिमान है। और ये सब अहंकार के असाधारण धर्म है। अहंकार के तीन भेद है। 1. सात्विक अहंकार- इसे वैकृत अहंकार कहते हैं। 2 तामस अहंकार- जिसे भूतादि अहंकार कहते हैं।

1. सांख्यकारिका 37

3. **राजस अहंकार** इसे तैजस भी कहते हैं। अहंकार से दो तरह की सृष्टि होती है। सात्विक अहंकार से 11 इन्द्रियों का समूह उत्पन्न होता है। तथा तामस अहंकार से 5 तन्मात्राएँ उत्पन्न होती है। सात्विक और तामस अहंकार का सहयोगी राजस अहंकार है।

11 इन्द्रिय तत्व - सात्विक अहंकार से इन्द्रियाँ उत्पन्न होती है। इन्द्रिय का अर्थ माठर के अनुसार विषयों में द्रवित होने वाले तत्वों से है। इन्द्रियां तीन तरह की हैं - 1. ज्ञानेन्द्रिया, 2.कर्मेन्द्रियाँ और 3. उभयेन्द्रिय मन। ज्ञानेन्द्रिया पांच है- श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण । श्रोत्र शब्दका, त्वचा स्पर्श का, नेत्र रूप का, जिह्वा रस का और घ्राण गन्ध का आलोचन करती है। कर्म इन्द्रियाँ 5 है वाक्, पाणि, पाद्, पायु उपस्थ । इनका व्यपार क्रमशः बोलना, ग्रहण करना, गमन करना, विसर्जन करना और रमण करना है। पांचों ज्ञानेन्द्रियां एवं पांच कर्मेन्द्रियां मिलकर दस वाह्येन्द्रियां कही जाती है। इन्हे बाह्करण भी कहते हैं। उभयेन्द्रिय मन है जो अन्तरिन्द्रिय है। यह उभ्यात्मक है। इसका व्यापार संकल्प और विकल्प है। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है- इन्द्रियाणां मनश्चास्मि । महत् अहंकार और मन को अन्तः करण कहते है। ज्ञानेन्द्रियों और अन्तः करण की ज्ञान में बड़ी भूमिका है । अन्तःकरण ही मुख्य हैं और ज्ञानेन्द्रियाँ अमुख्य ।

पंच तन्मात्र:- तामस अहंकार से 5 तन्मात्र उत्पन्न होते हैं। तन्मात्र का अर्थ सूक्ष्म है। यह प्रत्यक्ष नहीं होते है। अनुमान के विषय हैं। ये हैं - शब्द तन्मात्र, स्पर्श तन्मात्र, रूप तन्मात्र, रस तन्मात्र और गन्ध तन्मात्र । तन्मात्र अविशेष कहे जाते हैं।

पंच महाभूत:- पंच तन्मात्रों से पांच महाभूत उत्पन्न होते हैं। शब्द तन्मात्र से अकाश महाभूत उत्पन्न होता है। उसमें शब्द गुण होता है। शब्दतन्मात्रसहित स्पर्श तन्मात्र से वायु उत्पन्न होता है। उसमें शब्द और स्पर्श गुण होते हैं। शब्दस्पर्शतन्मात्रसहित रूप तन्मात्र से अग्नि उत्पन्न होता है। उसमें शब्द, स्पर्श और रूपगुण होते हैं। शब्दस्पर्शरूपसहित रस तन्मात्र से जल उत्पन्न होता है। उसमें शब्द स्पर्श रूप और रस गुण होता है। शब्दस्पर्शरूपरसतन्मात्रसहित गन्ध तन्मात्र से पृथ्वी उत्पन्न होती है। इसमंे शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध गुण होता है। ये महाभूत शान्त घोर मूढ होते हैं। ये विशेष कहे जाते हैं। ये प्रत्यक्ष के विषय हैं। महत से अहंकार मन श्रवण त्वक नेत्र जिह्वा और नासिका वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी ये सब व्यक्त पदार्थ हैं। ये सभी व्यक्त पदार्थ प्रकृति के समान भी हैं और असमान भी हैं। प्रकृति जैसे त्रिगुणात्मिका, अविवेकी, विषय, सामान्य अचेतन और नित्यपरिणामी है वैसे ही ये व्यक्त भी सुख दुःख मोहात्मक अविवेकी विषय सामान्य अचेतन और परिणामी तत्व हैं। जहाँ प्रकृति अहेतुमत नित्य प्रवेश और निःसरण रहित आश्रय स्वतन्त्र निरवयव और अलिंग एक है वहीं ये व्यक्त आदि हेतुमत अनित्य सक्रिय परतन्त्र आश्रित सावयव लिंग और अनेक हैं। इन व्यक्त पदार्थों में बुद्धि अहंकार मन और पाँच तन्मात्रायें प्रकृति और विकृति दोनों हैं जबकि एकादश इन्द्रियाँ और पंचमहाभूत केवल कार्य हैं। प्रकृति अविकृति तत्व है। पुरूष न तो प्रकृति है न तो विकृति है। सांख्य दर्शन के अनुसार इन्हीं पच्चीस तत्वों का खेल पूरी सृष्टि है।सृष्टि इन्ही तत्वों का परिणाम है। सांख्य की सृष्टिप्रक्रिया विकासवादी चक्रिय और सप्रयोजन है यह विकासवादी प्रक्रिया 25 तत्वों का खेल है जो खेल प्रकृति से प्रारम्भ होकर महाभूतों तक समाप्त हो जाता है और पुरूष इसमें द्रष्टा है।

1.3.2.4 सांख्य का ईश्वर विषयक विचार -

सांख्य दर्शन के ईश्वर कृष्णीय स्वरूप में ईश्वर के विषय में कुछ भी संकेत नहीं मिलता है। ईश्वर के विषय में ईश्वरकृष्ण मौन हैं। कपिलउपदिष्ट सांख्य ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करता था। किन्तु बौद्धों के प्रभाव से सांख्य दर्शन निरीश्वर वादी हो गया ऐसा कुछ आचार्यों का मत है। परवर्ती सांख्याचार्य विज्ञान भिक्षु ने ईश्वर के अस्तित्व को माना है। सांख्य ने प्रकृति और पुरूष के संयोग में ईश्वर के भूमिका को नहीं माना है। सांख्य के समान तन्त्र योगदर्शन में ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है और वह पुरूष विशेष ही है।

अभ्यास प्रश्न

1. सांख्य दर्शन के प्रवर्तक हैं -

(a) ईश्वरकृष्ण (b) आसुरि

(c) पंचशिख (d) कपिल

2. कपिल ने तंत्र का उपदेश किया -

(a) ईश्वरकृष्ण (b) आसुरि

(c) पंचशिख (d) कपिल

3. कपिल का नाम सर्वप्रथम कहां मिलता है -

(a) कठोपनिषद् (b) ऋग्वेद

(c) श्वेताश्वतर उपनिषद् (d) महाभारत

4. सांख्य का अर्थ है -

(a) तत्वों की गणना (b) विवेकज्ञान

(b) उपर्युक्त दोनों (d) इनमें से कोई नहीं

5. षष्टितंत्र रचना है-

(a) ईश्वरकृष्ण की (b) आसुरि की

(c) पंचशिख की (d) कपिल की

6. सांख्यकारिका किसकी रचना है -

(a) ईश्वरकृष्ण (b) आसुरि

(c) माठर (d) गौड़पाद

7. माठर वृत्ति टीका का है -

(a) तत्व समास पर (b) न्यायसूत्र की

(c) षष्टितंत्र की (d) सांख्यकारिका की

8. तत्वमीमांसा का अर्थ है -

(a) ज्ञान का विचार (a) नीति का विचार

(c) तत्वों की संख्या स्वरूप आदि विचार (d) इनमें से कोई नहीं

9. सांख्य कुल कितने तत्वों को स्वीकार करता है -

(a) 23 (b) 24

(c) 25 (d) 20

10. सांख्य कुल कितने मूल तत्व स्वीकार करता है -

(a) 1 (b) 2

(c) 3 (d) इनमें से कोई नहीं

11. गुणों की साम्यावस्था है -

(a) प्रकृति (a) व्यक्त

(c) दोनों (d) इनमें से कोई नहीं

12. अहेतुमत् तत्व हैं -

(a) केवल प्रकृति (b) केवल पुरूष

(c) दोनों (d) इनमें से कोई नहीं

13. चेतन तत्व है -

(a) पुरूष (b) प्रकृति

(c) दोनों (d) इनमें से कोई नहीं

14. प्रकृति में गुणक्षोभ होता है -

(a) काल से (a) ईश्वर से

(c) पुरूष संयोग से (d) इनमें से कोई नहीं

15. सांख्य पंगु अन्ध न्याय से प्रकृति पुरूष संयोग की व्याख्या करता है यह कथन है -

(a) सत्य (b) असत्य

(c) दोनों (d) इनमें से कोई नहीं

16. प्रकृति से साक्षात् उत्पन्न तत्व है -

(a) ज्ञानेन्द्रियाँ (b) अहंकार

(c) महत (d) इनमें से कोई नहीं

17. अहंकार से उत्पन्न होता है-

(a) 11 इन्द्रियाँ (b) 5 तन्मात्राएँ

(c) दोनों (d) महाभूत

18. निश्चय करने वाला तत्व है -

(a) बुद्धि (b) मन

(c) अहंकार (d) कोई नहीं

19. पुरूष के विषय में असत्य है -

(a) पुरूषों में संख्यागत बहुत्व है। (b) पुरूषों में स्वरूपगत एकता है।

(c) पुरूष त्रिगुणात्मक है। (d) इनमें से कोई नहीं।

20. आत्मा का बहुत्व मानता है -

(a) सांख्य (b) अद्वैत वेदान्त

(c) दोनों (c) इनमें से कोई नहीं

21. निम्न में महाभूत है-

(a) आकाश (b) रूप

(c) गंध (d) स्पर्श

22. निम्न में तन्मात्र है -

(a) आकाश (b) पृथ्वी

(c) वायु (d) रूप

23. तन्मात्र का अर्थ है -

(a) सूक्ष्म (b) स्थूल

(c) दोनों (d) इनमें से कोई नहीं

24. वाचस्पति के अनुसार संयोग का अर्थ सन्निधि है यह कथन है -

(a) सत्य (b) असत्य

(c) दोनों (d) इनमें से कोई नहीं

1.4 सारांश -

दार्शनिक चिन्तन का प्रारम्भ वेदों में ही मिलता है। किन्तु उसे सुव्यवस्थित रूप देकर सर्वप्रथम कपिल ने ही सांख्य शास्त्र का उपदेश दिया। जा आसुरि पंचशिख जैगीषव्य और वार्षगण्य आदि के द्वारा विस्तार को प्राप्त किया। आज सांख्य के जिस स्वरूप से हम परिचित हैं। वह चिन्तन ईश्वरकृष्ण की सांख्य कारिका पर आधारित है। सांख्य में अपनी तत्वमीमांसा में प्रकृति और पुरूष इन दो मूल तत्वों को स्वीकार किया है। प्रकृति सहित उसके परिणाम महत आदि मिलकर 24 हैं। इस प्रकार कुल तत्वों की संख्या 25 है। प्रकृति और पुरूष में समान और असमान धर्म हैं। प्रकृति की सिद्धि पांच हेतुओं से और पुरूष की अस्तित्व की सिद्धि व बहुत्व की सिद्धि पांच-पंाच हेतुओं से की गई है। प्रकृति और पुरूष के सप्रयोजन संयोग से सृष्टि होती है। प्रकृति से महत उससे 11 इन्द्रिया $ 5 तन्मात्र, 5 तनमात्रों से पांच महाभूत उत्पन्न होते है। उत्तरवर्तीसृष्टि इन्हीविकारोंकाखेल है। सांख्य दर्शन पहले ईश्वरवादी था किन्तु ईश्वकृष्णीय सांख्य ईश्वर के विषय में मौन है।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

तत्वमीमांसा- तत्वों की संख्या स्वरूप सृष्टि प्रक्रिया और ईश्वर विचार ही तत्वमीमांसा है।

प्रकृति- सृजनकारिणी त्रिगुणात्मिका मूल शक्ति।

पुरूष- निर्गुण चेतन साक्षी द्रष्टा कैवल्य उदासीन तत्व।

मोक्ष- बन्धन से छुटकारा दुःखों का एकान्तिक व आत्यन्तिक शमन कैवल्य की प्राप्ति।

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. d	2. c	3.c	4.c	5.c	6.a
7.d क	8.c	9.c	10.b	11.a	12.c
13.a	14.c	15.a	16.c	17.c	18.a
19.c	20.a	21.a	22.d	23.a	24.a

1.7. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-1

1. भारतीय दर्शन, आलोचन और अनुशीलन, लेखक- डा. चन्द्रधर शर्मा, प्रकाशक- मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, पुनर्मुद्रण- दिल्ली 1991

2 भारतीयदर्शन की रुपरेखा, लेखक- डा. बद्रीनाथ सिंह, प्रकाशक- आशा प्रकाशन वाराणसी, संस्करण 2003

3. भारतीय दर्शन, लेखक- चटर्जी एवं दत्त, प्रकाशक- पुस्तक भण्डार पब्लिशिंग हाऊसपटना, तृतीय संस्करण 1994

4. भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण, लेखक- संगमलाल पाण्डेय, प्रकाशक- सेन्ट्रल पटिलशिंग हाऊस, इलाहाबाद, चतुर्थ संशोधित संस्करण 2002

5. भारतीय दर्शन (द्वितीय खण्ड), लेखक- डा. राधाकृष्णन्, प्रकाशक- राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण 1986

6. देवीभागवतपुराण मूल संस्कृत गीता प्रेस गोरखपुर

7. योगदर्शनम व्याख्याकार डा0 सुरेशचन्द श्रीवास्तव चौखम्भा संस्कृत भवन वाराणसी

1.8. सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के लिए आप अग्रलिखित पुस्तकों का उपयोग कर सकते है-

1. **साख्यतत्वकौमुदीप्रभा**- ईश्वरकृष्ण कृत सांख्यकारिका तथा वाचस्पति मिश्र कृत तत्वकौमुदी की हिन्दी व्याख्या- व्याख्याकार- डा. आद्या प्रसाद मिश्र, प्रकाशक- अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद, मुद्रक- शुभ चिन्तक प्रेस इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष 1994

2. **भारतीय दर्शन**, आलोचन और अनुशीलन, लेखक- डा. चन्द्रधर शर्मा, प्रकाशक- मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, पुनर्मुद्रण- दिल्ली 1991

3. **भारतीय दर्शन की रुपरेखा**, लेखक- डा. बद्रीनाथ सिंह, प्रकाशक- आशा प्रकाशन वाराणसी, संस्करण 2003

4. **भारतीय दर्शन**, लेखक- चटर्जी एवं दत्त, प्रकाशक- पुस्तक भण्डार पब्लिशिंग हाऊस पटना, तृतीय संस्करण 1994

5. **भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण**, लेखक- संगमलाल पाण्डेय, प्रकाशक- सेन्ट्रल पटिलशिंग हाऊस, इलाहाबाद, चतुर्थ संशोधित संस्करण 2002

6. **भारतीय दर्शन (द्वितीय खण्ड), लेखक**- डा. राधाकृष्णन्, प्रकाशक- राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण 1986

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1- प्रकृति का स्वरूप अस्तित्व सिद्धि पर प्रकाश डालिए ?

प्रश्न 2- पुरूष का स्वरूप व अस्तित्व सिद्धि पर प्रकाश डालिये ?

प्रश्न3- प्रकृति पुरूष सम्बन्ध और सृष्टि प्रक्रिया समझाइए ?

इकाई-2 दुःखत्रय का स्वरूप, सत्कार्यवाद पुरूषबहुत्व प्रकृति पुरूष सम्बन्ध मोक्ष का स्वरूप

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3. सांख्य योग के प्रतिपाद्य-दुःखत्रय का स्वरूप, सत्कार्यवाद पुरूष बहुत्व , प्रकृति पुरूष सम्बन्ध, मोक्ष का स्वरूप

2.3.1 दुःखत्रय का स्वरूप

2.3.2 सत्कार्यवाद

2.3.3. पुरूष बहुत्व

2.3.4 प्रकृति पुरूष सम्बन्ध

2.3.5 मोक्ष का स्वरूप

2.4 सारांश

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में सांख्य दर्शन के प्रतिपाद्य दुःखत्रय का स्वरूप, सत्कार्यवाद, पुरूष बहुत्व प्रकृति पुरूष सम्बन्ध और मोझ का स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। दुःख रजोगुण का परिणाम विशेष है। सुख भी वस्तुतः दुःख ही है। दुःख के आध्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक तीन भेद हैं। इनका स्वरूप अलग-अलग है, सांख्य का कारण विषयक सिद्धान्त सत्कार्यवाद है। सांख्य सत् से सत् की उत्पत्ति मानता है। सत्कार्यवाद को सिद्ध करने के लिए तर्क भी देता है। चेतन तत्व पुरूष है। वह एक नहीं अनेक है। इसे सिद्ध करने के लिए भी युक्तियाँ देता है। प्रकृति और पुरूष परस्पर भिन्न तत्व हैं। इन्हीं दो तत्वों के संयोग से सृष्टि होती है। प्रकृति और पुरूष दोनों भिन्न धर्मात्मक हैं तो इन दोनों का सम्बन्ध अर्थात् संयोग कैसे होता है, क्यों होता है इस संयोग का क्या आशय है ? इसे भी इस इकाई में बताया गया है। प्रकृति और पुरूष के संयोग से ही सृष्टि भी होती है। लेकिन इस इकाई में प्रकृति पुरूष संयोग से होने वाली सृष्टि का वर्णन नहीं किया गया है। यतः प्रथम इकाई में यह बताया गया है कि तत्वों का स्वरूप तत्वों की संख्या सृष्टि प्रक्रिया और ईश्वर ये सब तत्वमीमांसा के विषय हैं। अतः इस इकाई में प्रकृति और पुरूष के सम्बन्ध का ही विचार किया गया है। सांख्य दर्शन का प्रयोजन मोक्ष है। मोक्ष दुःख की आत्यंतिक और एकांतिक निवृत्ति है। अतः इसका स्वरूप मोक्ष में प्रकृति की भूमिका जीवन मुक्ति और विदेह मुक्ति दोनों पर प्रकाश डाला गया है।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप निम्न तथ्यों से अवगत हो सकेंगे-

- सांख्य की दुःख विषयक अवधारणा व दुःख का भेद,
- सांख्य का कारणता विषयक सिद्धान्त का स्वरूप व सिद्धि के हेतु,
- पुरूष का बहुत्व साधक हेतु,
- प्रकृति और पुरूष का सप्रयोजन सम्बन्ध,
- सांख्य सम्मत मोक्ष का स्वरूप आदि।

2.3 दुःखत्रय का स्वरूप, सत्कार्यवाद पुरूष बहुत्व, प्रकृति पुरूष सम्बन्ध, मोक्ष का स्वरूप

आस्तिक वैदिक दर्शनों में सांख्य सबसे प्राचीन है। इसमें दुःख का स्वरूप, तत्वों की संख्या, स्वरूप, ज्ञान मीमांसा कारणता विषयक सिद्धान्त सृष्टि प्रक्रिया, बन्धन व मोक्ष का प्रतिपादन है इस इकाई के विभिन्न प्रतिपाद्यों को खण्ड विभाग पूर्वक आगे वर्णित किया जायेगा।

2.3.1 दुखत्रय का स्वरूप

साख्य दर्शन के अनुसार सम्पूर्ण सांसारिक जीवन दुःखमय है। हम विभिन्न प्रकार के दुःख भोगते रहते हैं। लेकिन दुःख क्या है ? दुःख का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है- दुःखयति इति दुःखम्। पतंजलि ने कहा है प्रतिकूल वेदनीयता ही दुःख है। जो अपने लिए अप्रीतिकर हो वही दुःख है। न्याय के अनुसार तो 'बाधना लक्षणम् दुःखं' अर्थात परिताप ही दुःख है। दुःख सुख का अभाव नही है बल्कि यह वास्तविक रूप से अनुभूयमान है इसके प्रति विर्कषण की भावना प्रत्येक व्यक्ति के मन मे रहती है। दुःख रजोगुण का परिणाम विशेष है। दुःख तो अप्रीतिकर है ही वस्तुतः अनुभूयमान सुख भी परिणाम संस्कार और ताप दुःखता के कारण दुःख ही है। सर्वं दुःखं विवेकिनः। दुःख के भेद का उल्लेख ईश्वर कृष्ण ने सांख्य कारिका के प्रथम कारिकांश में ही सांख्य शास्त्र की अर्थवत्ता का प्रतिपादन करते हुए संकेत किया है।

दुखःत्रयाभिधाताज्जिज्ञासा तदपधातके हेतौ अर्थात् दुःख त्रिविध हैं और उनका अभिघात जीव मात्र को होता है। अतएव उन तीनों दुःखों के आत्यन्तिक व एकान्तिक समाधान के साधन की जिज्ञासा होती है। ये तीन दुःख हैं- 1. आध्यात्मिक, 2. आधिभौतिक, 3. आधिदैविक।

1. आध्यात्मिक दुख- वह दुःख है जो शरीर और मन में होता है और आन्तरिक उपाय साध्य होता है। इस दुःख के दो भेद हैं- 1. शारीरिक व 2. मानसिक। वात, पित्त और कफ के वैषम्य से उत्पन्न ज्वर अतिसार आदि शारीरिक दुःख है। प्रिय वस्तु के वियोग एवं अप्रिय के संयोग से उत्पन्न होने वाले दुःख को मानसिक कहते हैं। व्याधि शारीरिक दुःख है और आधि मानसिक दुःख है।

2. आधिभौतिक दुःख- वह दुःख जो मनुष्य पशु, पक्षी, सरीसृप, दंश, मच्छर, जूँ,खटमल, मछली, मकर, ग्राह और स्थावर से उत्पन्न होता है। यह दःुख जरायुज, अण्डज, स्वदेज और उद्भिज्ज इन चतुर्विध सृष्टि से उत्पन्न होता है।

3. **आधिदैविक दुःख**- वह दुःख है जो दैव (देवताओं अथवा द्युलोक) के कारण होता है। ये है शीत, वर्षा, बज्रपातादि । तत्वकौमुदी के अनुसार- यक्ष राक्षस विनायक ग्रह आदि के द्वारा उत्पन्न दुःख आधिदैविक दुःख है ।

सांख्य दर्शन केवल दुःखों को ही नहीं बताता है चूँकि दुःख हेय हैं अतः उनके प्रहाण के लिए लौकिक व वैदिक दोनों ही उपायों की दुःखों के ऐकान्तिक व आत्यन्तिक शमन में असमर्थता सिद्ध करके कैवल्य का प्रतिपादन करता है।

2.3.2 सत्कार्यवाद

कारणता सिद्धान्त सर्वत्र लागू होता है। इसमें कारण कार्य का स्वरूप व सम्बन्ध पर विचार किया जाता है। कारणता सिद्धान्त मानता है कार्य उत्तरवर्ती होता है और कार्य का स्वरूप अलग

होता है। दोनों से अलग-अलग तरह के प्रयोजन सिद्ध होते हैं। उत्पत्ति के पहले कारण और कार्य में क्या सम्बन्ध है इससे सम्बन्धित तीन प्रश्न उठते हैं। क्या कार्य उत्पत्ति के पहले कारण में सत् है ? क्या असत् है ? क्या सत् और असत् दोनों है ? इन प्रश्नों के समाधानार्थ भारतीय दर्शन मे कई सिद्धान्त मिलते हैं। जो मानते है कि कार्य उत्पत्ति के पहले कारण मे सत् है वे सत्कार्यवादी कहे जाते हैं। जो यह मानते हैं कि कार्य उत्पत्ति के पहले कार्य में असत् है उन्हें असत्कार्यवादी कहते हैं और जो यह मानते हैं कि कार्य कारण में सत् और असत् दोनों होता है उन्हें सदसत्कार्यवादी कहा जाता है। सत्कार्यवाद को सांख्ययोग और वेदान्त स्वीकार करते हैं। जो र्दशन कार्य को उत्पत्ति के पहले कारण में असत् मानते हैं। वे असत्कार्यवादी हैं। न्याय व वैशेषिक दर्शन असत् कार्यवाद मानते हैं। न्यायवैशेषिक दर्शन असत्कार्यवाद के आरम्भवादी स्वरूप को मानता है। इनके अनुसार कारण से अलग कार्य सम्पन्न होता है और कार्य से अलग प्रयोजन पूरे होते हैं तथा उत्पत्ति और व्यय कार्य में दिखाई पड़ता है। कार्य एक नवीन सृष्टि है। बौद्ध दर्शन क्षणभंगवाद को मानता है। जैन दर्शन सदसत्कार्यवादी है। जैन दर्शन स्याद्वाद से सदसत् कार्यवाद को सिद्ध करता है।

सांख्य सम्मत सत्कार्यवाद का स्वरूप-

सांख्य दर्शन के अनुसार जैसे कार्य उत्पत्ति के बाद सत् होता है ठीक वैसे ही यह उत्पत्ति के पहले भी कार्य कारण में सत् होता है। यह मानता है कि सत् से ही सत् उत्पन्न होता है। कारण कि कार्य के रूप में परिणति है। न कि नवीन सृष्टि। जैसे- दूध कारण है और दही कार्य है। दही दूध का परिणाम है। व्यक्त आदि कार्य हैं और प्रकृति कारण है। कार्य कारण से तात्विक रूप से भिन्न नहीं है बल्कि वह कारण की ही परिणति है। इसी से कारण के ही गुण वाले कार्य होते हैं। यदि कार्य कारण में पहले से ही मौजूद है ? तो कारणावस्था और कार्य में क्या अन्तर है ? कारण में विद्यमान कार्य अनभिव्यक्त होता है और परिणति के बाद व्यक्त हो जाता है। इस प्रकार वह सिद्धान्त जो उत्पत्ति के पहले कारण में कार्य को सत् मानता है वह सत् कार्यवाद कहलाता है। सत्कार्यवाद का प्रयोजन प्रकृति के अस्तित्व की सिद्धि है। इसके दो रूप हैं- 1.परिणामवाद, 2. विवर्तवाद । सांख्य प्रकृति परिणामवाद को मानता है। और विशिष्टाद्वैत दर्शन ब्रह्म परिणामवाद को मानता है ।

सांख्यकारिका सत्कार्यवाद की सिद्धि के लिए 5 हेतुओं को उपन्यस्त करती है-

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात् ।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम् ।। का09

कार्यं सत् - उत्पत्ति के पहले कार्य कारण मे विद्यमान रहता है ।

असदकरणात्-अर्थात् जो वस्तु अनस्तित्व वाला होता है उसे किसी भी कारण से उत्पन्न नही किया जा सकता है। जैसे आकाश पुष्प असत् है उसे किसी कारण से नही उत्पन्न किया जा सकता है और करोड़ो शिल्पी मिलकर नीले रंग को पीला नही वना सकते है।अतः जैसे उत्पत्ति के बाद कार्य सत् होता है ठीक वैसे ही उत्पत्ति के पूर्व भी कार्य कारण में सत् होता है।

उपादानग्रहणात्- यतः कार्य की उत्पत्ति के लिए सम्बन्धित उपादान का ग्रहण किया जाता है। यह लोक सिद्ध है कि जो व्यक्ति जिस कार्य को चाहता है वह उससे संम्बन्धित उपादान कारण का ग्रहण करता है,जैसे दही को प्राप्त करने के लिए दूध को ही ग्रहण करता है। इससे सिद्ध है कि कार्य उत्पत्ति के पहले कारण मे सत् है।

सर्वसम्भवाभावात्-यतः सभी कार्यों की सभी कारणो से उत्पत्ति नही होती है अतः यह भी सिद्ध करता है कि कार्य कारण में उत्पत्ति के पहले से ही मौजूद रहता है। जैसे-सुवर्ण की रजत् ,तृण,धूल,और बालू से उत्पत्ति नही होती है।

शक्तस्य शक्यकरणात्- यतः जो कारण जिस कार्य की उत्पत्ति मे शक्त अर्थात समर्थ होता है उससे उसी शक्य कार्य की उत्पत्ति होती है।अतः सिद्ध होता है कि कार्य कारण मे सत् है, जैसे शक्य तेल,घट,पट, को उत्पन्न करने में क्रमशः तिल ,मृत्तिका और तन्तु ही समर्थ हैं।

कारणभावाच्च-यतः कार्य कारणात्मक होता है जो लक्षण कारण का होता है वही लक्षण कार्य का भी होता है। यह सिद्ध करता है कि कार्य कारण मे पहले से विद्यमान है जैसे जौ से जौ ही उत्पन्न होता है,धान से धान ही उत्पन्न होता है,गेहूँ से गेहूँ उत्पन्न होता है।

2.3.3 पुरूष बहुत्व

प्रथम इकाई में पुरूष के स्वरूप उसके अस्तित्व की सिद्धि और बहुत्व का प्रतिपादन किया गया है वहीं से इस पुरूष के बहुत्व को सिद्ध करने के हेतुओं को यहाँ दिखाया जा रहा है। पुरूष अकारण नित्य व्यापक, निष्क्रिय, आश्रय, अलिंग, निरवयव, स्वतन्त्र, निर्गुण, विवेकी, अविषय, असामान्य, चेतन, अपरिणामी तत्व है। वह न तो प्रकृति है न विकृति है। विभिन्न दर्शनों में पुरूष के संख्या विषयक विचार अलग-अलग मिलते हैं। अद्वैत वेदान्त दर्शन आत्मा को अद्वय मानता है। किन्तु सांख्य दर्शन पुरूषकी सत्ता एक नहीं अनेक मानता है। सभी पुरूष तात्विक रूप ससमानहैं।किन्तुउनमें संख्यागत भेद है। पुरूष बहुत हैं यह सिद्धान्त पुरूष बहुत्व सिद्धान्त है। पुरूष बहुत्व को सिद्ध करने के लिए ईश्वर कृष्ण ने सांख्य कारिका में हेतुओं को दिया है-

जननमरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च

पुरूष बहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव ।। का0 18

पुरूष बहुत हैं इसके निम्न पाँच हेतु हैं-

जननमरणकरणानां प्रतिनियमाद्

जन्म मृत्यु तथा इन्द्रियों की प्रत्येक जीव के साथ अलग-अलग व्यवस्था होने के कारण पुरूष बहुत हैं। यदि आत्मा एक होती तो एक ही जीव के जन्म से सभी जीवों का जन्म हो जाता। लेकिन हम

देखते हैं कि एक ही जीव के जन्म के साथ सभी जीवों का जन्म नहीं होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि आत्मा एक नहीं अनेक है। इसी तरह से प्रत्येक जीव की मृत्यु भी अलग-अलग होती है। ऐसा नहीं है कि यदि एक की मृत्यु हो जाय तो सभी मर जायँ। इससे भी सिद्ध होता है कि आत्मा एक नहीं अनेक है। इसी तरह से प्रत्येक जीव के साथ ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ के बीच अलग-अलग व्यवस्था देखने को मिलती है। यदि आत्मा एक ही होती तो एक जीव के अन्धे होने पर सभी जीव अन्धे हो जाते। एक ही जीव के पंगु होने पर सभी जीव पंगु हो जाते। किन्तु ऐसा लोक में दिखाई नहीं पड़ता है। अतएव यह मानना युक्ति संगत है कि जीव एक नहीं अनेक हैं। इस अंश में पुरूष बहुत्व के साधक तीन हेतु जन्म की व्यवस्था, मृत्यु की अलग-अलग व्यवस्था और इन्द्रियों की अलग-अलग व्यवस्था को बताया गया है।

अयुग्पद्प्रवृत्तेश्च

और सभी जीवों के एक ही साथ सदृश कार्यों में प्रवृत्त न होने से भी पुरूष का बहुत्व सिद्ध होता है। यदि आत्म तत्व एक होता तो सभी जीवों की क्रियाओं में सादृश्य दिखाई पड़ता, किन्तु हम देखते हैं कि सभी जीव एक ही साथ एक ही कार्य में प्रवृत्त नहीं होते हैं कुछ जीव धर्म मेंप्रवृत्त होते हैं तो कुछ अधर्म में। कुछ जीव वैराग्य में प्रवृत्त होते हैं तो कुछ जीव आसक्ति में लगे होते हैं। कुछ जीव ऐश्वर्य में प्रवृत्त होते हैं तो कुछ जीव अनैश्वर्य की ओर प्रवृत्त होते हैं। इससे यह सिद्ध होता है पुरूष एक नहीं है बल्कि अनेक है।

त्रैगुण्यविपर्ययात् च

तीनों गुणों के परिणाम सुख दुःख मोह में विपर्यय दिखाई पड़ने से पुरूष बहुत हैं। यदि आत्मा एक हो तो सभी जीवों को एक ही साथ सुखी एक ही साथ दुखी अथवा एक ही साथ मोहयुक्त होना चाहिए, किन्तु हम देखते हैं समान जन्म होने पर भी सात्विक पुरूष सुखी, राजसी दुखी तथा तामसी व्यक्ति मोहयुक्त होता। इस कारण यही मानना युक्तिसंगत है कि आत्मा एक नहीं अनेक है।इस प्रकार यह सिद्ध है पुरूष बहुत हैं।

2.3.4. प्रकृति पुरूष सम्बन्ध

सांख्य दर्शन द्वैतवादी दर्शन है प्रकृति एवं पुरूष के सम्बन्ध से प्रकृति में गुणक्षोभ होता है। और सरूप परिणाम वाली प्रकृति विरूप परिणाम वाली होकर व्यक्त का प्रसव करती है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका अविवेकी विषय सामान्य अचेतन और परिणामी है। पुरूष तत्व निर्गुण विवेकी भोक्ता असाधारण चेतन और अपरिणामी है। प्रकृति अचेतन और क्रियाशील है। पुरूष चेतन और निष्क्रिय है। दोनों में संयोग के कारण अचेतन प्रकृति के विकार महत् आदि में चैतन्य भास होता है और पुरूष में कर्तृत्व आदि की प्रतीति। प्रकृति जो अचेतन है तथा पुरूष जो चेतन है। दोनों का संयोग क्यों होता है। इसपर सांख्य कारिका में कहा गया है-

पुरूषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य

पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत् कृतः सर्ग। । का0-21

पुरूष द्वारा प्रधान को देखने के लिए और प्रधान द्वारा पुरूष का कैवल्य सम्पन्न कराने के लिए लंगड़े व अन्धे की तरह दोनो का संयोग होता है। उन दोनो के संयोग का फल सृष्टि है। पुरूष का प्रकृति के साथ जो संयोग है वह प्रकृति को देखने के लिए होता है। प्रकृति महत् से महाभूत पर्यन्त जो सृष्टि है उसे पुरूष देखता है। और प्रकृति का पुरूष के साथ जो संयोग है। वह पुरूष का कैवल्य सम्पन्न कराने के लिए है। इन दोनों का सम्बन्ध पंगु और अँधे की तरह से होता है। पुरूष पंगु है और प्रकृति अँधी है। जैसे गमन करने में असमर्थ पंगु एवं देखने में असमर्थ अँधा व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्तकर वियुक्त हो जाते हैं। वैसे ही क्रिया रहित दर्शन शक्ति वाले पुरूष और क्रियावती किन्तु दर्शन शक्ति रहित प्रकृति भी अपने अपने दर्शन और कैवल्य रूप प्रयोजन को सम्पन्न करके वियुक्त हो जाते है। प्रकृति और पुरूष का सम्बन्ध सप्रयोजन है। सोद्देश्य है। संयोग का अर्थ वाचस्पति के अनुसार प्रकृति और पुरूष की सन्निधि है। डॉ संगम लाल पाण्डेय के अनुसार जब तक पुरूष और प्रकृति का विवेक नहीं हो जाता तब तक कैवल्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। विवेक प्राप्ति के लिए पुरूष को प्रकृति की आवश्यकता है। पुरूष और प्रकृति की आवश्यकताओं में भोगों में एकता है। पुरूष जिस विवेक को चाहता है। उसी को प्रकृति भी चाहती है। इसी कारण दोनों का संयोग होता है1। प्रकृति और पुरूष दोनों एक दूसरे का उद्देश्य पूरा करते है। चेतनाशून्य

1. भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण पृ0 231

दूध बछड़े के पोषण के लिए गाय के शरीर से प्रस्रवित होता है, वैसे ही ज्ञानशून्य (अचेतन) प्रकृति का परिणाम पुरूष के कैवल्य के लिए है1। प्रकृति और पुरूष का संयोग अनादि है। यह देश और काल में घटित होने वाला नहीं है। प्रकृति और पुरूष के सम्बन्ध की व्याख्या करने के लिए यह उदाहरण भी दिया जाता है- जैसे चुम्बक के सन्निधि मात्र से ही लोहे के टुकड़ों में गतिशीलता होती है। ठीक ऐसे ही पुरूष की सन्निधि मात्र से ही प्रकृति विरूप परिणाम वाली होती है।

पुरूष का सम्बन्ध विशेष रूप से प्रकृति के परिणाम बुद्धि से होता है। लेकिन इस सम्बन्ध का स्वरूप स्पष्ट करना कठिन है। बुद्धि करणों में सूक्ष्म है। इसी में पुरूष की छाया पड़ती है। जिसके कारण बुद्धि चेतनावति हो जाती है। और वह पुरूष स्वरूपा हो जाती है। ऐसी बुद्धि पुरूष के लिए भोग को उत्पनन करती है। बुद्धि के द्वारा ही पुरूष सुख-दुःख मोहात्मक संसार से भोक्ता या साक्षी के रूप में जुड़ता है। जो बुद्धि प्रकृति का भोग सम्पन्न करती है वही बुद्धि अन्त में प्रकृति और पुरूष का विभेद ज्ञान भी उत्पन्न करती है2। बुद्ध और पुरूष के सम्बन्ध का निरूपण भी जटिल है पुरूष और लिंग शरीर का संयोग देश और काल में घटित होने वाला नहीं है किन्तु दोनों संयोग के अनन्तर अचेतन लिंग शरीर चेतन सा हो जाता है और निष्क्रिय पुरूष कर्ता और भोक्ता सा हो जाता है।

सांख्य दर्शन ने प्रकृति और पुरूष के संयोग की संतोष जनक व्याख्या नहीं कर सका है। प्रकृति और पुरूष का संयोग सोद्देश्य है। और इन दोनों के संयोग का फल है सृष्टि। जब तक प्रकृति और पुरूष का संयोग रहता है। तब तक सृष्टि की स्थिति रहती है। दोनों का वियोग होने पर प्रलय की स्थिति होती है।

2.3.5. मोक्ष का स्वरुप

मोक्ष कैवल्य, अपवर्ग, समानार्थी मुच धातु से बना है जिसका अर्थ है बन्धन से छुटकारा। बन्धन जन्म हैं। मोक्ष शब्द और मरण का अनवरत चक्र है जिसमें पड़कर जीव संसार में सदा दुःख भोगता रहता है। दुःखों का आत्यन्तिक शमन ही मोक्ष है। पुरुष साक्षी, उदासीन, निर्गुण तथा नित्य कैवल्य प्राप्त है किन्तु अज्ञान के कारण बुद्धि प्रतिबिम्बित अपने प्रतिबिम्ब के साथ तादाम्य में स्थापित कर लेता है जिससे वह अन्तः करण वच्छिन्न चैतन्य के रुप में प्रतीत होने लगता है और अपने को कर्ता, भोक्ता व संसारी समझने लगता है और इसी अवस्था में वह आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक दुःखों को भोगने लगता है। यह सब अज्ञान के कारण होता है। अज्ञान से पुरुष का बन्धन होता है। पुरूष ही ज्ञ तत्व है। उसका शरीर में पड़े रहन ही बन्धन है। बन्धन से ही जीव को सुख-दुःख आदि भोगांे की प्राप्ति होती है। बन्धन तीन प्रकार का होता है- प्राकृतिक, वैकृतिक, दाक्षिणिक। प्रकृति को आत्मा समझकर उसी की उपासना से उसी में लीन हो जाना प्राकृतिक वन्धन है। प्रकृति के विकारों को आत्मा समझकर उनकी उपासना कर उन्ही में लीन हो जाना वैकृतिक वन्धन है। इष्ट तथा पूर्त कर्मों से दाक्षिणिक वन्धन होता है। इन बन्धनों में पड़े रहने वाले जीव मुक्त नही होते है। बल्कि पुनः जन्म आदि को प्राप्त कर सुखी-दुःखी होते हैं। मोक्ष दुःखों का आत्यन्तिक व एकान्तिक शमन है। वह लौकिक और वैदिक उपायों से नही होता है। दुःख का आत्यन्तिक शमन तो व्यक्त, अव्यक्त ज्ञ के विवेकख्याति के द्वारा होता है। विवेकख्याति को केवल ज्ञान के नाम से भी जाना जाता है। इस विवेकख्याति से अपवर्ग होता है जो दुःखातीतावस्था के साथ-साथ सुखातीतावस्था भी है। केवल ज्ञान से उत्पन्न होने से इसे कैवल्य भी कहते हैं। यह कैवल्य तत्वों के अभ्यास से होता है जिसका स्वरुप सांख्यकारिका में प्रतिपादित है।

.....नास्मि न मे नाऽहमित्यपरिशेषम्।

अविपर्यायाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्।। कारिका 64

अर्थात मैं कर्ता नही हूँ (नास्मि)। यह शरीर मेरा नही है (न मे)। मै प्रकृति नही हूँ (नास्मि)। यह केवल ज्ञान भ्रमादि रहित विशुद्ध ज्ञान है। विशुद्ध ज्ञान का तात्पर्य है किसी अन्य विपरीत ज्ञान से मिश्रित नही होता। यही रहस्य विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः (योगसूत्रमं संकेतिक है)। सांख्यप्रवचनभाष्य के अनुसार नास्मि से पुरुष में कर्तृत्व का निषेध है, न मे से संग का निषेध है तथा नाऽहम् से तादात्म का निषेध है। इस तत्व ज्ञान से विमल एवं दृष्टा के समान निष्क्रिय पुरुष विवेकज्ञान के सामर्थ्य से धर्म

अधर्म, अज्ञान, ऐश्वर्य, अनैश्वर्य, राग, विराग, इन सात रुपों से रहित अपने सम्बन्ध में परिणाम न उत्पन्न करने वाली प्रकृति को देखता है1 - यह विशुद्ध चैतन्य पुरुष का स्वरुप है यह स्वरुप ज्ञान ही मोक्ष है। इससे सम्पूर्ण दुःख का पूर्णतया शमन हो जाता है। पुरुष निगुर्ण, साक्षी, चेतन रुप में अवस्थित हो जाता है।

मोक्ष में प्रकृति की भूमिका- पुरुष नित्यमुक्त है, किन्तु वह अज्ञान से अपने को वन्धनग्रस्त समझता है, उसका वन्धन शुक के बन्धन जैसा है। वस्तुतः प्रकृति पुरुष का संयोग प्रकृति द्वारा पुरूष का कैवत्य सम्पन्न करने के लिए एवं पुरुष के द्वारा प्रकृति का दर्शन अर्थात् भोग करने के लिए होता है। प्रत्येक पुरुष का कैवल्य सम्पन्न करने के लिए ही प्रकृति प्रवृत्त होती है2। प्रकृति का व्यापार पुरुष को विमुक्त करने के लिए ही होता है। जैसे नर्तकी रंग को अपना नृत्य दिखाकर उपरत हो जाती है वैसे ही प्रकृति भी अपने को पुरुष को दिखाकर उपरत हो जाती है3। गुणवती तथा उपकारिणी प्रकृति प्रत्युपकार विहीन एवं निर्गुण पुरुष का बिना किसी स्वार्थ के ही अनेक उपयों द्वारा मोक्ष सम्पन्न करती है4। प्रकृति अत्यन्त लज्जालू है पुरुष के देखने के बाद वह उसकी दृष्टि में नही आती है5। वन्धन, संसरण और मोक्ष वस्तुतः प्रकृति का ही होता है6। प्रकृति स्वयं से ही अपने को अपने सात रुपों के द्वारा बांधती है और अपने एक रुप ज्ञान के द्वारा पुरुष के कैवल्य के लिए स्वयं को मुक्त करती है।

मोक्ष के भेद- सांख्य दर्शन दो तरह की मुक्ति मानता है जीवन मुक्ति एवं विदेह मुक्ति। जीवन रहते ही विवेकज्ञान होते ही पुरुष मुक्त हो जाता है और शरीरपात के अनन्तर होने वाली मुक्ति विदेह मुक्ति है। जीवनमुक्ति की अवस्था में प्रारब्धकर्मों के बचे हुए संस्कारों के सामर्थ्य से साधक वैसे ही शरीर धारण किये रहता है जैसे दण्ड से चलाई गई चाक पूर्व उत्पन्न वेग नामक संस्कार से घुमती रहती है1। इस अवस्था में संचित एवं संचीयमान कर्म दग्धबीज हो जाते है। प्रारब्ध का भोग मिलते रहने पर भी पुरुष उसमें वैसे ही निर्लिप्त रहता है जैसे पानी में पड़ा हुआ कमल का पत्ता। शरीरपात के अन्नतर भोग एवं अपवर्ग दोनों ही प्रयोजनों के पूर्व से ही सिद्ध हुए रहने के करण प्रकृति के निवृत्त हो जाने से पुरुष ऐकान्तिक और आत्यन्तिक कैवल्य प्राप्त करता है2। मुक्त हुए पुरूष को परमात्मा कहा जाता है। मुक्ति में क्षय मल और वैषम्य दोष नहीं होता है। यह पूर्ण समता की स्थिति है। इसमें सभी पुरूष एक दूसरे के समान होते हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. दुःख के भेद हैं-

(a)आध्यात्मिक (b) आधिभौतिक

(c) आधिदैविक (d) ये सभी

2. शरीर एवं मन में होने वाले दुःख को कहते हैं-

(a)आधिदैविक (b)आधिभौतिक

(c)आध्यात्मिक (d)इनमें से कोई नहीं

3. शारीरिक एवं मानसिक दुःख भेद हैं-

(a)आध्यात्मिक (b)आधिभौतिक

(c)आधिदैविक (d)ये सभी

4. दैवजन्य दुःख है-

(a)आध्यात्मिक (b)आधिभौतिक

(c)आधिदैविक (d) ये सभी

5. सांख्य दर्शन का कारणता विषयक सिद्धान्त है-

(a) असद्कार्यवाद (b) सत्कार्यवाद

(c) दोनों (d) स्वभाववाद

6. सत्कार्यवाद का अर्थ है-

(a) उपत्ति के पूर्व कारण में कार्य का सत् होना।

(b) उत्पत्ति के पूर्व कारण में कार्य का असत् होना।

(c) उत्पत्ति के पहले कारण में कार्य का सत और असत् दोनों होना है।

(d) इनमें से कोई नहीं।

7. सतकार्यवाद का प्रयोजन प्रकृति की सिद्धि है.... यह कथन है-

(a) सत्य (b) असत्य

(c) दोनों (d) इनमें से कोई नहीं।

8. पुरूष बहुत्व मानता है-

(a) न्याय दर्शन (b) सांख्य दर्शन

(c) बौद्ध दर्शन (d) इनम से कोई नहीं।

9. प्रकृति और पुरूष का सम्बन्ध है-

(a) सप्रयोजन (b) निष्प्रयोजन

(c) दोनों (d) इनमें से कोई नहीं।

10. प्रकृति और पुरूष के संयोग से होती है-

(a) प्रलय (b) सृष्टि

(c) दोनों ; (d) इनमें से कोई नहीं।

11. मोक्ष का अर्थ है-

(a) बन्धन से छुटकारा (b) संसरण करना

(c) दोनों (d) कुछ कह नहीं सकते।

12. बन्धन के भेद हैं-

(a) केवल प्राकृतिक (b) केवल वैकृतिक

(c) केवल दाक्षिणिक (d) ये सभी

13. नास्मि, नमे, नाऽहम की अनुभूति है-

(a) विवेकख्याति (b) अविवेकख्याति

(c) दोनों (d) इनमें से कोई नहीं।

14. बन्धन, संसरण एवं मोक्ष वस्तुतः होता है-

(a) पु रूष का (b) प्रकृति का

(c) दोनों (d) इनमें से कोई नहीं।

15. सांख्य दर्शन मुक्ति के भेद मानता है-

(a) दो (b) तीन

(c) एक (d) इनमें से कोई नहीं।

16. शरीर के रहते ही होने वाली मुक्ति है-

(a) जीवन्मुक्ति (b) विदेहमुक्ति

(c) क्रममुक्ति (d)ये सभी

17. शरीर पात के अनन्तर होता है-

(a) एकान्तिक कैवल्य (b) आत्यन्तिक कैवल्य

(c) दोनों (d) इनमें से कोई नहीं।

18. कैवल्य निष्त्रैगुण्य है.... यह कथन है-

(a) सत्य (b) असत्य

(c)दोनों (d) इनमें से कोई नहीं।

2.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में वर्णित विषयों से आप रिचित हो गये होगें इस पूरी इकाई को संक्षिप्त रुप से हम यों देख सकते हैं। प्रतिकूल, वेदनीय दुःख है।आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक उसके भेद हैं। अनुभूयमान सुख भी विवेकी के लिए दुःख ही है। कार्य उत्पत्ति के पहले कारण मे सत् होता है यह सिद्धान्त सत्कार्यवाद है। यह सांख्य का कारणता विषयक सिद्धान्त है।सत्कार्यवाद की सिद्धि पांच हेतुओं से होती है। पुरुष तत्व निर्गुण, विवेकी, भोक्ता, असामान्य, अलिंग, अपरिणामी, निरवयव तथा नित्य विद्यमान तत्व है। पुरुष में तात्विक एकता किन्तु संख्यागत विभिन्नता है। पुरुष अनेक हैं। पुरुष अनेक हैं जिसकी सिद्धि के पांच हेतु हैं। प्रकृति और पुरूष का संयोग सप्रयोजन है। पुरूष द्वारा प्रकृति का दर्शन करने के लिए और प्रकृति द्वारा पुरूष का कैवल्य सम्पन्न करने के लिए पंगवंधन न्याय से संयोग होता है। संयोग का अर्थ सन्निधि है। दोनों के संयोग से सृष्टि होती है। सांख्य प्रकृत औरपुरूषके सम्बन्ध की संतोषजनक व्याख्या नहीं कर सका है। वन्धन से छुटकारा ही मोक्ष है इसमें सभी दुःखों का ऐकान्तिक व आत्यन्तिक प्रहाण हो जाता है। पुरुष को नास्मि, न मे, नाऽहम् की अनुभूति होती है उस समय वह विमल व स्वच्छ द्रष्टा की तरहस्थितहोता है।सांख्य जीवन मुक्ति और विदेह मुक्ति दोनों को मानता है। इस प्रकार सांख्य एकमहत्वपूर्ण दर्शन है जो मानव मात्र के लिए उपयोगी है।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

1. **आध्यात्मिक दुःख**- वह दुःख जो शरीर और मन में होता है।
2. **आधिभौतिक दुःख**- वह दुःख जो जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज चार प्रकार के भैतिक सृष्टि से होता है।
3. **आधिदैविक दुःख**- वह दुःख जो द्युलोक अथवा देवताओं से उत्पन्न होता है।
4. **सत्कार्यवाद**- कार्य उत्पत्ति के पहले कारण में सत् है इस सिद्धान्त को सत्कार्यवाद कहते हैं।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.d	2.c	3.a	4.c	5.b
6 .a	7 .a	8.b	9.a	10.b
11.a	12.d	13.a	14.b	15.b
16.a	17.b	18.a		

2.7.सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय दर्शन, आलोचन और अनुशीलन, लेखक- डा. चन्द्रधर शर्मा, प्रकाशक- मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, पुनर्मुद्रण- दिल्ली 1991

भारतीय दर्शन की रुपरेखा, लेखक- डा. बद्रीनाथ सिंह, प्रकाशक- आशा प्रकाशन वाराणसी, संस्करण 2003

भारतीय दर्शन, लेखक- चटर्जी एवं दत्त, प्रकाशक- पुस्तक भण्डार पब्लिशिंग हाऊस पटना, तृतीय संस्करण 1994

भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण, लेखक- संगमलाल पाण्डेय, प्रकाशक- सेन्ट्रल पटिलशिंग हाऊस, इलाहाबाद, चतुर्थ संशोधित संस्करण 2002

भारतीय दर्शन (द्वितीय खण्ड), लेखक- डा. राधाकृष्णन्, प्रकाशक- राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण 1986देवी भागवत मूल संस्कृत गीता प्रेस गोरखपुर।

2.8.सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के लिए आप अग्रलिखित पुस्तकों का उपयोग कर सकते है-

1. **साख्यतत्वकौमुदीप्रभा**- ईश्वरकृष्ण कृत सांख्यकारिका तथा वाचस्पति मिश्र कृत तत्वकौमुदी की हिन्दी व्याख्या- व्याख्याकार- डा. आद्या प्रसाद मिश्र, प्रकाशक- अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद, मुद्रक- शुभ चिन्तक प्रेस इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष 1994

2. भारतीय दर्शन, आलोचन और अनुशीलन, लेखक- डा. चन्द्रधर शर्मा, प्रकाशक- मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, पुनर्मुद्रण- दिल्ली 1991

3. भारतीय दर्शन की रुपरेखा, लेखक- डा. बद्रीनाथ सिंह, प्रकाशक- आशा प्रकाशन वाराणसी, संस्करण 2003

4. भारतीय दर्शन, लेखक- चटर्जी एवं दत्त, प्रकाशक- पुस्तक भण्डार पब्लिशिंग हाऊस पटना, तृतीय संस्करण 1994

5. भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण, लेखक- संगमलाल पाण्डेय, प्रकाशक- सेन्ट्रल पटिलशिंग हाऊस, इलाहाबाद, चतुर्थ संशोधित संस्करण 2002

6. भारतीय दर्शन (द्वितीय खण्ड), लेखक- डा. राधाकृष्णन्, प्रकाशक- राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण 1986

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. सांख्य दर्शन के कारणता विषयक सिद्धान्त को समझाइये ?

प्रश्न-2. पुरूष बहुत से हैं सिद्ध कीजिए ?

प्रश्न-3. सांख्य के मोझ विषयक अवधारण पर प्रकाश डालिए ?

इकाई -3 सांख्यकारिका 1 - 10 मूलपाठ, अर्थ एवं व्याख्या

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 सांख्यकारिका 1-10 मूलपाठ, अर्थ एवं व्याख्या
3.4 सारांश
3.5 पारिभाषिक शब्दावली
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत तृतीय इकाई मे सांख्यकारिका की 1-10 तक की कारिकाओं का मूलपाठ अर्थ एवं व्याख्या की गई है। कारिका प्रथम व द्वितीय मे दुःख के आत्यन्तिक व एकान्तिक समन के साधन विषयक जिज्ञासा और उसके पूर्ण शमन के साधन के रूप मे तत्वज्ञान से उत्पन्न कैवल्य की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है। तृतीय कारिका मे प्रकृति,प्रकृतिविकृति ,विकृति एवं न प्रकृति न विकृति का प्रतिपादन किया गया है। इस कारिका मे तत्वो की संख्या व स्वरूप का निर्देश है।चतुर्थ से सप्तम कारिका पर्यन्त में सांख्य की ज्ञानमीमांसा का विवेचन किया गया है। अष्टम से दशम कारिका पर्यन्त प्रकृति एवं पुरूष की अनुपलब्धि मे सूक्ष्मता की कारणता,सत्कार्यवाद,व्यक्त एवं अव्यक्त के विरूप धर्म प्रतिपादित है।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप निम्न तथ्यों से परिचित हो जायेंगे-

1. सांख्यशास्त्र दुखत्रय के विनाश का आत्यन्तिक एवं ऐकान्तिक साधन तत्वो के विवेक से उत्पन्न कैवल्य को मानता है।
2. तत्वों की संख्या 25 है और उनको जानने के साधन प्रमाण है और ये प्रत्यक्ष,अनुमान और शब्द ही हैं।
3. प्रत्यक्ष प्रमाण की सीमाएं क्या हैं।
4. सांख्य का कारणता विषयक सिद्धान्त सत्कार्यवाद है
5. .व्यक्त एवं अव्यक्त मे कौन-कौन सी असमानता है।

3.3 सांख्यकारिका 1-10 मूलपाठ, अर्थ व व्याख्या

दुखःत्रयाभिधाताज्जिज्ञासा तदपधातके1 हेतौ ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्तोऽभावात्।। का0-1

अन्वय दुःखत्रयाभिघातात्तद्पघातकेहेतौजिज्ञासा (भवति) । दृष्टेसाऽपार्थाचेत्, न, एकान्तात्यन्तोऽभावात्।

अर्थ-त्रिविध दुखः का जीव मात्र से असह्य सम्बन्ध होने से उस (दुःखत्रय) को शान्त करने के उपाय के विषय मे जिज्ञासा होती है । यदि कोइ ऐसा मानता है कि (दुःखशमन) के लौकिक उपायो केहोने पर वह जिज्ञासा व्यर्थ है तो ऐसा कहना युक्तिसंगत नहीं है;क्योकि लौकिक उपाय से दुःख की आवश्यक रूप से एवं सदा के लिए शान्ति नही होती है। (अतः वह जिज्ञासा सार्थक है।)

शारदाव्याख्या- श्रीगणपति कछु गुनगन गाऊँ। मातु शारदा सतत मनाऊँ।।

गुरुहनुमन्त चरन रज आँजूँ। जिनकी कृपा शारदा साजूँ।।

परमकृपा पूर्वक अज्ञान सागर मे डूबते हुए जीवांे के कैवल्यार्थ निर्माणचित्त का आश्रय लेकर सिद्धेश ब्रह्मापुत्र कपिल ने जिस पवित्र सांख्य शास्त्र का उपदेश आसुरि को दिया और वही ज्ञान आसुरि ने अपने शिष्य पंचशिख को दिया पंचशिख ने जिसका षष्टितन्त्र के माध्यम से खूब विस्तार किया वही ज्ञान जैगीषव्य,वार्षगण्य विन्ध्यवासादि शिष्य प्रशिष्यों की परम्परा से पुष्पितपल्लवित हुआ।

पाठान्तर संकेत 1-तदभिधाते -गौडपाद,माठर; तदवधातके-जयमंगला

वही ज्ञान जो षष्टितन्त्र मे उपनिबद्ध था उसी का प्रकाशन आचार्य ईश्वरकृष्ण नें'सांख्यकारिका' में किया है।उसमें सांख्यशास्त्र विषयक जिज्ञासा की प्रयोजन की अर्थवत्ता प्रतिपादनार्थ ईश्वरकृष्ण ने कहा है दुखःत्रयेति-

दुखःत्रयाभिधातात्-

दुखानां त्रयम् तेषाम् अभिधातःतस्मात् अपघातके हेतौ जिज्ञासा भवति अर्थात तीन तरह के दुःख से बुद्धिप्रतिविम्बित पुरूष का असहनीय संम्बन्ध होता है अतः उन तीनो तरह के दुःखों के शमन के विषय मे जिज्ञासा होती है।दुखःक्या है ऐसी अपेक्षा होने पर कोई कहता है दुःखयतीतिदुःखम् पतंजलि ने कहा है प्रतिकूल वेदनीयता ही दुःख है, जो अपने लिए अप्रीतिकर हो।

वही दुःख है। न्याय के अनुसार तो 'बाधना लक्षणम् दुःखम्' अर्थात परिताप ही दुःख है। दुःख सुख का अभाव नही है; बल्कि यह वास्तविकरूप से अनुभूयमान है। इसके प्रति विर्कषण की भावना प्रत्येक व्यक्ति के मन मे रहती है। इसके परिणाम है-प्रतिकुलता,वस्तु,के प्रति विकर्षण और दैन्य आदि। दुःख रजोगुण का परिणाम भेद है दुःख तो अप्रीतिकर है ही वस्तुतः अनुभूयमान सुख भी परिणाम, संस्कार और तापदुःखता के कारण दुख ही है।सर्वं दुःखं विवेकिनःऐसा पतंजलि ने कहा है।दुःख का स्वरूप तो वार्णित हो चुका उसके भेद का विवेचन क्रम प्राप्त है। दुःख भेद निर्देश तो दुःखत्रय कहकर कारिका मे ही हुआ है अर्थात दुःख के तीन भेद है किन्तु ये तीन भेद कौन कौन है? इसविषयमेगौडपादभाष्यमेंकहागयाहै- ''तत्रदुःखत्रयम्आध्यात्मिकम्,आधिभौतिकम्,आधिदेविकम् चेति।तत्राध्यात्मिकंद्विविधम् - शारीरंमानसंचेति।शारीरंवातपित्तश्लेष्मविपर्ययकृतंज्वरातीसारादि। मानसंप्रियवियोगाप्रियसंयोगिादि।आधिभौतिकंचतुर्विधभूतग्रामनिमित्तंमनुष्यपशुपक्षीसरीसृपदंशमशक यूकामत्कुणमत्स्यमकरग्राहस्थावरेभ्योजरायुजाण्डजस्वेदजोज्जेभ्यःसकाशादुपजायते।आधिदैविकं-देवानामिदंदैवम्,दिवःप्रभवतीतिवादैवं,तदधिकृत्ययदुपजायतेशीतोष्णवातवर्षाशनिपातादिकम्। अर्थात दुख तीन है आध्यात्मिक,आधिभौतिक और आधिदैविक। आध्यात्मिक दुःख के दो भेद है- 1.शारीरिक 2. मानसिक। वात,पित्त और कफ के वैषम्य से उत्पन्न ज्वर अतिसार आदि शारीरिक

दुख है। प्रिय वस्तु के वियोग एवं अप्रिय के संयोग से उत्पन्न होने वाले दुःख को मानसिक कहते हैं। आधिभौतिक दुःख चारो प्रकार कि भूत समूह के कारण होता है। जो मनुष्य पशु,पक्षी,सरीसृप,दंश मच्छर,जूँ,खटमल,मछली,मकर,ग्राह और स्थावर से उत्पन्न होता है। यह दःख जरायुज,अण्डज,स्वदेज,और उद्भिज्ज इन चतुर्विध सृष्टि से उत्पन्न होता है। दैविक दुःख वह है जो दैव (देवताओं अथवा द्युलोक) के कारण होता है। ये है शीत,वर्षा,बज्रपातादि। **तत्वकौमुदी में आध्यात्मिकदुःख का अर्थ किया गया हैअन्तरोपायसाध्यत्वादाध्यत्मिकं** दुःखम्,आधिदैविकं तु **यक्षराक्षस विनायकग्रहाद्यावेशनिबन्धनम्** दुःखत्रय का अभिधात जीव मात्र को होता है जो भी शरीरी है उन सभी को इन दुःखो का अभिघात सहना पड़ता है।इस अभिधात से क्या आशय है ? इसका उत्तर तत्व कौमुदीकार यों देते है- **दुःखत्रयेण अन्तःकरणवर्तिना चेतनाशक्तेः प्रतिकूल वेदनीयतयाभिसम्बन्धोऽभिधात इति** अर्थात अन्तः करण मे वर्तमान और अनिष्ट रूप से अनुभूयमान त्रिविध दुःख के साथ चेतन पुरूष के असह्य सम्बन्ध को अभिधात कहते है।''दुःख अनिष्ट से अनुभूयमान है अतः हेयः है उसके निर्वतन के विषय मे जिज्ञासा करना ठीक है ।दुःख का विनाश सम्भव है। अतः उसके शान्त करने या विनाश करने के साधन के विषय मे जानने की इच्छा होती है।

दृष्टे सा अपार्था चेत्

अर्थात यदि पूर्वपक्षी यह कहता है दुःख के विनाश के प्रत्यक्ष सिद्ध लौकिक उपायो के रहते दुःख शान्ति करने के साधन विषयक जिज्ञासा बेकार है ।क्योकि तीनो दुःखो मे से आध्यात्मिक दुःख के शमन का लौकिक उपाय आयुर्वेद शास्त्र मे प्रतिपादित कटु कसाय तिक्त क्वाथआदि है और प्रिय का समागम और अप्रिय का परिहार है।आधिभौतिक दुःख के समन का लौकिक उपाय रसादिका प्रयोग है। आधिदैविक दुःख का मणिमन्त्रौषधि आदि द्वारा विनाश देखा गया है। अतः सांख्यशास्त्रविषयक जिज्ञासा व्यर्थ है । यदिपूर्वपक्षी ऐसी आशंका करता है तो- न-अर्थात दुःख शमन के साधनों में जिज्ञासा करना निरर्थक नहीं है वल्कि वह जिज्ञासा सार्थक है क्योकि,

एकान्तात्यन्तोभावात्

एकान्तश्च अत्यन्तश्च एकान्तात्यन्तौ तयोः अभावः तस्मात् –

अर्थात् लौकिक साधनो से दुःखत्रय की एकान्त रूप से और आत्यन्तिक रूप से निवृत्ति नही होती है। शान्ति नही होती है एकान्त का तात्पर्य है दुःखनिवृत्तेरवस्यम्भावः(तत्वकौमुदी) दुःख का आवश्यक रूप निवृत्त होना ही एकान्त निवर्तन है। यह जरूरी नही कि दुःख लौकिक साधनों से आवश्यक रूप से शान्त ही हो जाय।

कैन्सर शरीरिक दुःख है अवस्था विशेष मे पहुचने पर वह अवश्य रूप निवर्तनीय नही रह जाता है।

इसी प्रकार लौकिक साधनो से दुःखत्रय की अत्यन्त रूप से निवृत्ति नही होती है। अत्यन्त का अर्थ है-अत्यन्तो-निवृत्तस्य दुःखस्य पुनरनुत्पादः(तत्वकौमुदी) शान्त हुए दुःख का फिर उत्पन्न न होना ही आत्यन्तिक निवृत्ति है किन्तु दुख की आत्यन्तिक निवृत्ति नही होती है अतः दुःख को एकान्तिक एवं आत्यन्ति रूप से शान्त करने के साधन के विषय मे जिज्ञासा सार्थक है।1

विशेष 1- दुःखत्रय का उपन्यास करके जहाँ नैराश्य से शुरूवात है वही उसके विनाश के कारण की जिज्ञासा का प्रतिपादन कर मंगलाचरण करते हुए आशावाद का संचार भी किया गया है।

2. सांख्यशास्त्र सप्रयोजन है।

पूर्वापर सम्वन्ध,-लौकिक उपाय से दुःखत्रय की शान्ति न हो किन्तु वैदिक उपाय से उसके शान्त होने की आशंका होने पर कहा गया है

दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः।

तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्।। का0-2

अन्वय-आनुश्रविकःदृष्टवत्।हिसःअविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः।तद्विपरीतःश्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्

अर्थ-वैदिक उपाय भी लौकिक उपायों जैसा है क्योकि वह दोष,क्षय और वैषम्य से युक्त है उन दोनों लौकिक/वैदिक)उपायो से भिन्न उपाय प्रशस्त है वह उपाय है। व्यक्त अव्यक्त और ज्ञ के विवेक ज्ञान से उत्पन्न कैवल्य।

शारदाव्याख्या-अनुश्रविकः अनुश्रूयते इति अनुभवः तत्र भवः आनुश्रविकः गुरू के उच्चारण के अनन्तर सुने जाने से वेदो को अनुश्रव कहते है। उसमे विहित उपाय ही आनुश्रविक है। दुःख विधात के वैदिक उपाय रहते दुःख शमन विषयक जिज्ञासा व्यर्थ है। क्योकि आगम कहता है-

अपामसोममममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्।

किं वा नूनमस्मान् तृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृतमर्त्यस्य।। ऋग्वेद 8.42.3

ऐसा ही संकेत कठोपनिषद् मे भी मिलता है-

न तत्रं त्वं न जरया विभेति,उमे तीर्त्वा अशनायापिपासे शोकान्तिगः मोदते स्वर्ग लोके। वैदिक उपाय जो दुःखो के शमन का उद्घोष करते है वह वास्तविक स्थिति नही है वैदिक उपायों से भी दुःख का आत्यन्तिक व एकान्तिक समाधान नही होता है अतः **दृष्टवत्-दृष्टेन तुल्यः** अर्थात वैदिक उपाय भी दृष्टवत है।जैसे लौकिक उपाय दुःख की आत्यन्तिक एवं एकान्तिक निवृत्ति करने मे समर्थ नही है वैसे ही वैदिक कर्म कलाप भी,दुःख का पूरी तरह से शमन करने मे असमर्थ है।

वैदिक उपाय दुःख का पूरी तरह से शमन करने मे असमर्थ क्यों हैं ? ऐसी आशंका होने पर कहा है हिसःविशुद्धिक्षयातिशययुक्तःविशुद्धियुक्तःक्षययुक्तः,अतिशययुक्तश्चते विशुद्धिक्षयातिशययुक्तः। क्योकि वह वैदिक कार्य कलाप अशुद्धि,क्षय और वैषम्यदोषो से युक्त होता है। श्रुति का आदेश है स्वर्गकामो वै यजेत् किन्तु यज्ञां में हिंसा भी विहित है उसमे पशुओ कि हिन्सा होती है जहाँ साधुकर्मो से पुण्य बनता है वहीं हिंसा कर्म से पाप भी बनता है। अतः पाप के भी मिश्रित होने से वह वैदिकर्म मलयुक्त होता है। और सुख के साथ साथ दुःखदायी भी होता है। वैदिक उपाय जन्य स्वर्गादि प्राप्ति भी क्षय दोष से युक्त होती है जीव स्वर्ग मे तभी तक रहता है जब तक पुण्य बना रहता है पुण्य के क्षय होने पर पुनः मृत्यु लोक मे आना पड़ता है गीता कहती है-

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। 9.21

वैदिक उपाय जन्य फल मे वैषम्य भी होता है भिन्न-भिन्न यज्ञों का अलग-अलग फल है कुछ स्वर्ग मे वास देने वाले है तो कुछ वहाँ का अधिपति बनाने वाले हैं। जैसे लोक मे कम सुखी व्यक्ति अधिक सुखी व्यक्ति को देखकर के दुखी होता है वैसे ही स्वर्ग मे भी स्वर्ग के वासी अपने से उच्च स्थिति मे विद्यमान जीव को देखकर दुःखी हो सकते हैं। जैसे सुरूप को देख कर कुरूप दुःखी होता है वैसे ही इन्द्रपद आसीन जीव को देखकर अन्य दुःखी हो सकते हैं। चूँकि लौकिक और वैदिक दोनो ही उपाय दुःख की पूर्ण शान्ति करने मे असमर्थ है तो क्या कोइ ऐसा उपाय है ? जो उन दुख का पूर्ण शमन करने मे समर्थ हो ऐसी आशंका होने पर कहते है -

तद्विपरितः ताभ्यां विपरीतः श्रेयान्-

उन दोनों लौकिक एवं वैदिक उपायों से भिन्न उपाय प्रशस्यतर है ; क्योकि वह उपाय दुःख का आत्यन्तिक एकान्तिक रूप से शमन करता है और उसमे अशुद्धि,क्षय,और अतिशय भी नही हैं। वह उपाय है व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्. व्यक्तं च अव्यक्तं च ज्ञश्च इति व्यक्ताव्यक्तज्ञाः तेषां विज्ञानम् तस्मात्।व्यक्त अव्यक्त और ज्ञ के विभेदज्ञान से उत्पन्न कैवल्य। व्यक्ततत्व है महत्, अहंकार,11 इन्द्रियाँ 5 तन्मात्र, 5 महाभूत। अव्यक्त प्रकृति है एक है।**ज्ञ** पुरूष तत्व है इस प्रकार कुल 25 तत्व है। इन्ही तत्वो के ज्ञान से कैवल्य मिलता है। गौड़पादभाष्य मे भी निर्देश है-

पंचविंशतितत्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन्।

जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः।।

इन पच्चीस तत्वो के अभ्यास से ही केवल्य उत्पन्न होता है इसका 64वीं कारिका मे प्रतिपादन हुआ है।

एवं तत्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाऽहमित्यपरिशेषम्।

अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्।। 2

पूर्वापर संबन्ध-तत्वो के ज्ञान से उत्पन्न कैवल्य दुःख शमन का साधन है उन 25 तत्वो का पदार्थ चतुष्टय के रूप मे प्रतिपादन करते है।

मूलप्रकृतिरविकृर्तिमहदाद्याःप्रकृतिविकृतयःसप्त

षोऽशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिःपुरूषः।। का0-3

अन्वय-मूलप्रकृतिःअविकृतिः।महदाद्याःसप्त प्रकृति विकृतयः।षोडशकः विकारः।तु पुरूषः न प्रकृतिः न विकृतिः अस्ति।

अर्थ-मूल प्रकृति किसी का कार्य नही है। महत् आदि-(महत,अहंकार,पंचतन्मात्र) सात कारण और कार्य दोनो हैं। 16 तत्वो का समूह (11इन्द्रियाँ$पंचमहाभूत)केवल कार्य हैं। किन्तु पुरूष न तो कारण है और न तो कार्य है।

शारदाव्याख्या-मूलप्रकृतिःअविकृतिः मूलं च सा प्रकृतिःइति प्रकृतिः। प्रकरोति इति प्रकृतिः सर्जना करने वाली मूल शक्ति प्रकृति है वह गुणों की साम्यावस्था है।वह किसी का कार्य नही है वह अकारण कारण है। प्रकृति का स्वरूप देवीभागवत् मे इस प्रकार वर्णित है-

प्रकृष्टवाचकःप्रश्च कृतिश्च स्थिटवाचकः।

सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृति सा प्रकीर्तिता।।

गुणे सत्वे प्रकृष्टे च प्रशब्दो वर्तते श्रुतः।

मध्यमे रजसि कृश्च तिशब्दस्तमसि स्मृति।।

त्रिगुणात्मस्वरूपा या सा शक्तिसमन्विता।

प्रधाना सृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते।।

प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।

सृष्टेरादौ च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता।। देवीभागवत् 9.1.5-8

यह प्रकृति किसी का कार्य नही होने से अविकृति है वह महत् आदि का तो कारण है किन्तु प्रकृति का कोई अन्य कारण नही है। अतः वह अजा है।

महदाद्याःसप्त प्रकृतविकृतयः-

महदाद्याः महत् आदिःयेषां ते महादाद्याः सप्त प्रकृतिविकृतयः प्ररकृतयश्च विकृतयश्च

प्रकृतिकृतय:-महत है प्रारम्भ में जिसके वे महत्आदि तत्व हैं। वे सात हैं-महत् अहंकार पाँच तनमात्राएं। वे सात तत्व प्रकृति और विकृति अर्थात् कारण और कार्य दोनो है जैसे महत् अहंकार का कारण है अतःप्रकृति है किन्तु स्वयं मूल प्रकृति का कार्य है अतः विकृति भी है। अहंकार, 11 इन्द्रियों एवं 5 तन्मात्राओं का कारण है और महत् का कार्य है।पांच तन्मात्र पांच महाभूतो के कारण हैं एवं अहंकार के कार्य है।

षोडशक: विकार:-

षोडषकःषोडषतत्वानां समुदायः षोडशकःविकारः16 तत्वो का समुदाय ही षोडशक है ये 16 तत्व है 11इन्द्रियाँ$5महाभूत।ये तत्व केवल कार्य हैं।

तु पुरूष: न प्रकृति: न विकृति:-किन्तु पुरूष न तो कारण है न तो कार्य है।पुरूष का स्वरूप आगे प्रतिपादित है। पुरूष कारण और कार्य की श्रृंखला से परे है।पुरूष सत् चित है।

विशेष-जिन 25 तत्वों का अभ्यास कैवलय सम्पन्न कराता है उनका चतुर्धा विभाग 1.अविकृति 2.प्रकृति

विकृति 3.विकार, 4.न प्रकृति न विकृति के रूप मे किया गया है। 3

पूर्वापर सम्बन्ध-प्रकृति आदि 25 तत्व है उनके अस्तित्व में क्या प्रमाण है ऐसी आकांक्षा होने पर कहा गया है -

दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्।

त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धि:प्रमाणाद्धि।।का0.4.

अन्वय-दृष्टम्अनुमानम् आप्तवचनं च त्रिविधम् प्रमाणम् इष्टम्।सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्। हि प्रमाणात् प्रमेयसिद्धिः (भवति)।

अर्थ-प्रत्यक्ष,अनुमान और शब्द ये तीन प्रमाण ही मान्य है। इन्ही तीनो प्रमाणों मे अन्य सभी प्रमाणों का अन्तर्भाव हो जाता है। प्रमाण से ही प्रमेयों का ज्ञान होता है।

शारदाव्याख्या

दृष्टम् अनुमानम् आप्तवचनं च त्रिविध प्रमाणम् इष्टम्-

प्रत्यक्ष,अनुमान,और शब्द ये तीन ही प्रमाण हैं। प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों का लक्षण व भेद निर्देश तो 5वी कारिका में प्रतिपादित है।प्रमाण का निर्वचन तत्वकौमुदी मे हुआ है- **प्रमीयतेऽनेनेति निर्वचनात् प्रमां प्रतिकरणत्वं गम्यते । तच्चासन्दिग्धाविपरीतानधिगतविषयाचित्तवृत्तिः।**

बोधश्च पौरूषेयःफलं प्रमा तत्साधनं प्रमाणमिति,अर्थात जिसके द्वारा प्रमा हो वही प्रमाण है।प्रमाण वह चित्तवृत्ति है जिसका विषय निश्चित रूप से ज्ञात हो रहा हो,बाधित होने वाला न हो,तथा पहले से ज्ञात न हो।ऐसी चित्तवृत्ति से उत्पन्न,अतःउसका फलभूत पुरूषवर्ती बोध प्रमा है इसी का साधन प्रमाण है।

सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्- अन्य सभी प्रमाणों का इन्ही तीनो मे अर्न्तभाव हो जाता है। भारतीय दर्शन में प्रमाणो की संख्या विषयक विप्रतिपत्ति का संकेत मानसोल्लास में मिलता है-

प्रत्यक्षमेकं चार्वाकाः कणादसुगतौ पुनः।

अनुमानं तच्चापि सांख्याः शब्दं च ते अपि।।

न्यायैकदेशिनोऽप्येवम् उपमानं च केचन्।

अर्थापत्या सहैतानि चत्वार्याह प्रभाकरः।

अभावषष्ठान्येतानि भट्टा वेन्दान्तिनस्तथा।

सम्भवैतिह्ययुक्तानि तानि पौराणिका जगुः।।

प्रत्यक्ष,अनुमान ,शब्द के अतिरिक्त प्रमाण है। उपमान,अर्थापत्ति,अभाव,सम्भव और ऐतिह्य। इनका अर्न्तभाव दिखलाया जा रहा है।उपमान का लक्षण है-

अतिदेशवाक्यार्थस्मरणसहकृतगोसादृश्यविशिष्टपिण्डज्ञानमुपमानम् यथा गौस्तथा गवयः (तर्कभाषा) सांख्य इसे अलग प्रमाण न मानकर उपमान का अन्तर्भाव प्रत्यक्ष में करता है।अर्थापति का लक्षण है। अनुपपद्यमानाथर्दर्शनात् तदुपपादकीभूर्थान्तरकल्पनम् अर्थापत्तिः। तथा पीनो देवदत्तो दिवा न भुड़्क्ते इति दृष्टे श्रुते वा रात्रिभोजनं कल्प्यते। इसका अर्न्तभाव सांख्य अनुमान मे करता है। इस कमरे में गौ नहीं है यह जो गौ के अभाव का ज्ञान है यह अनुपलब्धि प्रमाण है। सांख्य दर्शन इसका अन्तर्भाव प्रत्यक्ष में करता है।सम्भव प्रमाण पर तत्वकौमुदी में लिखा है-सम्भवस्तु यथा खार्य्यांद्रोणाढकप्रस्थाद्यावगमः स चानुमानमेव।इसी तरह ऐतिह्य पर प्रकाश डालते हुए कहते है कि इस वृक्ष पर यक्ष रहता है ऐसा वृद्ध जन कहते है इत्यादि प्रकार कि जन श्रुति ऐतिह्य प्रमाण है। वह मूल वक्ता के ज्ञान के अभाव मे सन्दिग्ध है और यह प्रमाणिक पुरूष प्रोक्त हो तो आगम प्रमाण है।

हि प्रमाणात् प्रमेयसिद्धिः - यतः प्रमाणो के द्वारा ही प्रमेयो का ज्ञान होता है।विद्यमान सभी विषयों का ज्ञान प्रमाण से ही होता है। अतः तत्वों की उपलब्धि के साधन प्रमाणों का उपन्यास किया गया है। प्रमेय प्रकृति आदि 25 तत्व है जिनकी उपलब्धि प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द से होती है। 4

पूर्वापर सम्बन्ध

यतः प्रमेयों का ज्ञान प्रमाण से होता है।सांख्य के अनुसार प्रमाण तीन ही है। उनके लक्षण क्या है ?

ऐसी आशंका होने पर कहते हैं -

प्रतिविषयाध्वसायो दृष्टं त्रिविधमनुमानमाख्यातम्।

तल्लिङ्गलिङ्पिूर्वकमाप्तश्रुतिराप्तवचनं तु1।। का0-5

अन्वय - प्रतिविषयाध्यवसायःदृष्टम्।अनुमानं त्रिविधम् आख्यातम् तल्लिङ्गलिङ्पिूर्वकम्। तु आप्तश्रुतिराप्तवचनम्।

अर्थ- विषय से सन्निकृष्ट इन्द्रियाश्रित बुद्धि का व्यापार प्रत्यक्ष है। अनुमान को तीन प्रकार का कहा गया है। वह लिंङ्ग(व्याप्य) और लिङ्गी (व्यापक) के ज्ञान से होता है।आप्तश्रुति जन्य अर्थ ज्ञान ही आगम प्रमाण है।

शारदाव्याख्या

प्रतिविषयाध्यवसायःदृष्टम्-विषय से सन्निकृष्ट इन्द्रियाश्रित बुद्धि का व्यापार प्रत्यक्ष है। विषयं विषयं प्रति इति प्रतिविषयम् प्रतिविषयेषु श्रोत्रादीनां शब्दादिविषयेषु, अध्यवसायः दृष्टंप्रत्यक्षम् (गौडपाद)। अर्थात् त्वचा के 'द्वारा स्पर्श विषय का चक्षु के द्वारा रूप का, रसना के द्वारा रस का, नासिका के द्वारा गन्ध का अध्यवसाय अर्थात निश्चय जो बुद्धि का व्यापार है वही प्रत्यक्ष प्रमाण है। व्यास भाष्य मे प्रत्यक्ष पर इस तरह विचारमिलता है- इन्द्रियप्रणालिकया चित्तस्य वाह्यवस्तूपरागात्तद्विषया **सामान्यविषयात्मनोऽर्थस्यविशेषावधारण-**
प्रधानावृत्तिःप्रत्यक्षंप्रमाणं।फलमविशिष्टःपौरूषेयश्चित्तवृत्तिवोधः। प्रत्यक्ष का लक्षण न्यायसूत्र मे इस प्रकार है। इन्द्रियार्थसन्निकर्षात्पन्नं **ज्ञानमव्ययदेश्यमव्याभिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्** 1.4,न्याय दर्शन इन्द्रियों को प्रमाण मानता है। किन्तु सांख्य बुद्वि के अध्यवसाय को प्रमाण मानता है।

तल्लिङ्गलिङ्पिूर्वकम्अनुमानम्- कारिकाकार ने पहले भेद बतलाया है तब अनुमान का लक्षण किया है। यहां पहले अनुमान का लक्षण करते हैं फिर उसके भेद का वर्णन किया जायेगा। लिड.ग और लिड्.गीपूर्वक होने वाले ज्ञान को अनुमान कहा जाता है। अनुमान का अर्थ है अनु अर्थात् पश्चात् और मान का अर्थ है ज्ञान । इस तरह जो ज्ञान प्रत्यक्ष और आगम प्रमाण पर आश्रित हो वह अनुमान प्रमाण है। इसमें व्याप्य से व्यापक का और व्यापक से व्याप्य का ज्ञान होता है।जैसे धूम से अग्नि का अनुमान दण्ड के द्वारा यति होने का ज्ञान। काली कोट से वकील होने का अनुमान ।

अनुमानं त्रिविधम् आख्यातम्-अनुमान के तीन भेद हैं। पूर्ववत शेषवत् और सामन्यतोदृष्ट। ऐसी ही स्वीकृति न्याय की भी है- अथ तत्पूर्वकं अनुमानं पूर्ववच्छेषवत् सामान्यतोदृष्टं च (न्यायसूत्र) पूर्ववत

अनुमान वह है जिसमें पूर्व अर्थात् कारण को देखकर कार्य का ज्ञान होता है।जैसे उमड़े हुए वादलो को देखकर होने वाली वृष्टि का अनुमान। मौसम विभाग की भविष्यवाणियाँ पूर्ववत्,अनुमान

ही है। शेषवत् अनुमान वह है जिसमे कार्य को देखका कारण का ज्ञान होता है।जैसे बढ़ी हुई नदी को देखकर देशान्तर में होने वाली वृष्टि का अनुमान।किन्तु गौडपाद इसका अन्य उदाहरण दिये है। शेषवत् **तथा समुद्रादेकं जलपलं लवणंमासाद्य शेषमप्यस्ति लवणभाव**: इति।

सामान्यतोदृष्टंनाम-यत्रअप्रत्यक्षे लिड्.लङ्गिनोः सम्बन्धे केनचिदर्थेन लिड.गस्य सामान्यादप्रत्यक्षो

लिडि.गी गम्यते यथा कार्यतःप्रकृत्युपलब्धिः।

अनुमान प्रमाण पर भारतीय दर्शन में सर्वाधिक सूक्ष्म चिन्तन न्याय दर्शन मे हुआ है।

आप्तश्रुतिःआप्तवचनम्इति- आप्तश्रुति जन्य अर्थ ज्ञान ही शब्द प्रमाण है। आप्तश्रुतिरितिः -आप्ताः आचार्याः व्रह्मादयःश्रुतिर्वेदः आप्ताश्च श्रुतिश्च आप्तश्रुतिः तदुक्तमाप्तवचनः व्रह्मा आदि आचर्यों के वचन जन्य अर्थ और वेद जन्य अर्थ ज्ञान दोनो हीआगम प्रमाण है।आप्त का लक्षण गौडपादभाष्य में इस प्रकार किया गया है-

आगमो ह्याप्तवचनमाप्तं दोषक्षयाद्विदुः।

क्षीणदोषोऽनृतं वाक्यं न बूयाद्धेत्वसम्भवात्।।

स्वकर्मण्यभियुक्तो य सड.गद्वेषविवर्जितः।

पूजितस्तविधैर्नित्यमाप्तो ज्ञेयः स तादृशः।।

प्रमाणो का स्वरूप व भेद बतला दिया गया है। 5

पूर्वापर संम्बन्ध-प्रत्यक्ष प्रमाण का फल स्पष्ट ही है किन्तु अनुमान और शब्द प्रमाण का क्या फल है? ऐसी आकांक्षा होने पर कहते है।

सामान्यतस्तुदृष्टादइन्द्रियाणां प्रतीतिरनुमानात्1।

तस्मादपि चासिद्धम्2 परोक्षमाप्तागमात् सिद्धम्।।का06

अन्वय- सामान्यतःदृष्टाद् अनुमानाद् अतीन्द्रियाणां प्रतीतिः।तस्मादपि च असिद्धम् परोक्षम् आप्ताडमात् सिद्धम्।

अर्थ-सामान्यतोदृष्ट अनुमान से अतीन्द्रिय प्रमेयो की उपलब्धि होती है।और उससे अर्थात् सामान्यतोदृष्ट अनुमान से असिद्ध परोक्ष प्रमेय आगम प्रमाण से सिद्ध होते है।

शारदाव्याख्या

सामान्यतोदृष्टादनुमानादतीन्द्रियाणां प्रतीतिः-सामान्तोदृष्ट अनुमान से इन्द्रियातीत विद्यमान प्रमेयो की सिद्धि होती है।प्रत्यक्ष प्रमाण से इन्द्रियगोचर वर्तमानकालीन विषयों की सिद्धि होती है। इन दोनों कि

सिद्धि सामन्तोदृष्टि अनुमान से होती है जैसे महदादि लिंड्.ग त्रिगुणात्मक है त्रिगुणात्मक कार्य जिसके है,वह प्रधान है।इसी प्रकार,क्योकि अचेतन चेतन की तरह प्रतीत होता है अतः इसका संचालक पुरूष है। अनुमान से भूतकालीन ,वर्तमानकालीन और भविष्यत्कालीन विषयों का ज्ञान होता है।

1. प्रसिद्धिरनुमानात् -युक्तिदीपिका , 2. साध्यम्- माठरवृत्तिः

तस्मादपि च असिद्धं परोक्षम् आप्तागमात् सिद्धम्- उस सामान्यतोदृष्टानुमान से जिन अतीन्द्रिय प्रमेयो का ज्ञान नही होता है।उन प्रमेयो की उपलब्धि शब्द प्रमाण से होती है।जैसे स्वर्ग है, नरक है, देवताओं के राजा इन्द्र है, यज्ञ करने से स्वर्ग मिलता है आदि शब्द प्रमाण के द्वारा जाने जाते है। 6

पूर्वापर संम्बन्ध-प्रमेय विद्यमान रहने पर भी प्रत्यक्ष का विषय क्यो नही होते है ? ऐसी आशंका होने पर कहते हैं।

अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान् मनोऽनवस्थानाच्च।

सौक्ष्म्याद् व्यवधानादभिभवात् समानाभिहारात् च ।। का07

अन्वय-अतिदूरात्,सामीप्यात्,इन्द्रियघातात्,मनोऽनवस्थानात्,सौक्ष्म्याद्,व्यवधानाद्,अभिभवात्, समानाभिहारात् च(प्रमेयणाम् उपलबिधः न भवति इति शेषः)।

अर्थ- अधिक दूर होने के कारण,अधिक समीप होने के कारण ,इन्द्रियों के नाश के कारण , चित्त की अस्थिरता के कारण, बीच मे किसी रूकावट के कारण ,अभिभूत होने के कारण,और समान मे मिल जाने के कारण (प्रमेयों का प्रत्यक्ष ज्ञान नही होता है)।

शारदाव्याख्या- विद्यमान होने पर विषयो के प्रत्यक्ष न होने के आठ हेतु है-

अतिदूरात्-अधिक दूर होने से वस्तुओ का प्रत्यक्ष नही होता है जैसे देशान्तर मे विद्यमान चैत्र,मैत्र और विष्णुमित्र का प्रत्यक्ष नही होता है।

सामीप्यात्-अधिक समीपता के कारण भी प्रमेयो का प्रत्यक्ष ज्ञान नही होता है,जैसे आखो मे लगा हुआ आजन समीप होने के कारण दिखाई नही देता है।

इन्द्रियघातात्-इन्द्रियों का घात अर्थात अपने-2 विषय को प्रकाशित करने की शक्ति का नाश होने पर विद्यमान पदार्थोका प्रत्यक्ष नही हेाता है जैसे अन्धत्व के कारण रूप का ज्ञान नही होता है।

मनोऽनवस्थानात्- मन की अस्थिरता से विद्यमान वस्तु भी ज्ञात नही होती है जैसे व्यग्रचित्त व्यक्ति कही गयी बात को अवधारित नही कर पाता है।

सौक्ष्म्यात्-सूक्ष्म होने के कारण भी विद्यमान वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान नही होता है जैसे इलेक्ट्रान,प्रोटान और न्यूट्रान कणो का प्रत्यक्ष सूक्ष्म होने के कारण नही होता है। प्रकृति और पुरूष अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण प्रत्यक्ष नहीं होते हैं।

व्यवधानात्-व्यवधानात् अर्थात् आड़ मे होने के कारण भी विद्यमान वस्तुओ का प्रत्यक्ष ज्ञान नही

होता है जैसे दीवार आदि की ओट मे रहने से राज महिषियों का प्रत्यक्ष नही होता है।

अभिभवात्- अभिभव अर्थात् तिरस्कृत होने के कारण भी विद्यमान का प्रत्यक्ष नही होता है।जैसे सूर्य के तेज से तिरस्कृत होने से दिन में ग्रह,नक्षत्र ,तारे आदि प्रत्यक्ष के द्वारा नही जाने जाते है।

समानाभिहारात्-सदृश वस्तु के साथ मिश्रित होने जाने पर भी विद्यमान वस्तु का प्रत्यक्ष नही होता हैं जैसे-सरोवर केजल में मिली हुई वर्षा की बूँद का प्रत्यक्ष नही होता ,मूँग की राशि मे मिला दिये गये मूँग का प्रत्यक्ष नही होता है।उपर्युक्त आठ हेतु वस्तुतः प्रत्यक्ष प्रमाण की सीमाएं है।

पूर्वापर सम्बन्ध- अत्यन्तदूरादि 8 कारणो से प्रमेय का प्रत्यक्ष नही होता है तो प्रकृति का प्रत्यक्ष न होने मे क्या कारण है ? और उसकी उपलब्धता कैसे होती है ? ऐसी आंकाक्षा होने पर कहते है-

सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिर्नाभावात् कार्यतस्तदुपलब्धेः1 ।
महदादि तच्च कार्यं प्रकृतिविरूपं2 सरूपं च ।।का08

अन्वय-सैक्ष्मयात् तदनुपलब्धिः,अभावात् न, कार्यतः तदुपलब्धेः। तच्च कार्य महदादि प्रकृतिविरूपं सरूपं च।

अर्थ-सूक्ष्म होने के कारण ही उन प्रकृति और पुरूष का प्रत्यक्ष ज्ञान नही होता है,अभाव के कारण नही ,क्योकि कार्य से उस प्रकृति का अनुमानात्मक ज्ञान होता है। और वे कार्य महदादि है(जो)प्रकृति के समान धर्म वाले भी है और उसमे भिन्न धर्म वाले भी है।

शारदाव्याख्या- सौक्ष्म्यात् तदनुपलब्धिः - सूक्ष्म होने के कारण उन प्रकृति और पुरूष का प्रत्यक्ष के द्वारा सिद्धि नहीं होती है।जो सूक्ष्म पदार्थ हैं उनकी प्रत्यक्ष के द्वारा सिद्धि नही होती है।

न अभावात्-ऐसा नही है कि प्रकृति और पुरूष ख पुष्प की तरह असत् पदार्थ है अतः उन दोनो का प्रत्यक्ष नही होता हैं। वस्तुतः वे भाव पदार्थ हैं। नित्य है। यदि प्रकृति और पुरूष भाव पदार्थ हैं तो उनकी उपलब्धि कैसे होती है ऐसी आकांक्षा होने पर कहते है कार्यतस्दुपलब्धेः कार्य से उस प्रकृति का अनुमानात्मक ज्ञान होता है जैसे लोक मे कार्य को देखकर उसके कारण का अनुमान होता है वैसे ही प्रकृति का ज्ञान उसके कार्य से होता है। पुरूष के अनुमानार्थ हेतुओं का संघातपरार्थत्वात् 17वी कारिका में कहा जायेगा। कार्य से प्रकृति का ज्ञान होता है।कार्य कौन है ऐसी आशंका होने पर कहा गया है-तच्चकार्यं महदादिः वे कार्य है महदादि 23 तत्व अर्थात् महत् अहंकार,11इन्द्रियाँ , 5 तन्मात्र और 5 महाभूत। ये कार्य हैं।इन्ही से प्रकृति का अनुमान होता है।

प्रकृतिविरूपं सरूपं च- वे महत् आदि कार्य प्रकृति के सदृश धर्म वाले भी है। और प्रकृति से विरूप धर्म वाले भी हैं। जैसे पुत्र पिता के सदृश भी होता है और उससे भिन्न भी होता है वैसे ही महत् आदि कार्य प्रकृति के सदृश भी हैं और भिन्न भी हैं। 8

पूर्वापर संम्बन्ध-महदादि कार्यो से प्रकृति का अनुमान होता है। महदादि कार्य प्रकृति मे सत् है या असत् ?ऐसा संशय होने पर कहते है।

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात् ।

शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्।।का09

अन्वय-कार्यं सत् असदकरणात्,उपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात् शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च।

अर्थ- असत् के न उत्पन्न होने के कारण,उपादान कारण का ग्रहण होने के कारण,सभी कारणो से सभी कार्यो की उत्पत्ति असम्भव होने के कारण,समर्थ कारण से ही समर्थ कार्य की उत्पत्ति होने के कारण,कार्य के कारण स्वरूप होने के कारण कार्य उत्पन्न होने के पूर्व भी कारण मेे सत् होता है।

1. तदुपलब्धिः-गौडपादभाष्य,युक्तिदीपिका। 2. प्रकृतिविरूपं सरूपं च तत्वकौमुदी

शारदाव्याख्या- कार्यं सत् - उत्पत्ति के पहले कार्य कारण मे विद्यमान रहता है। यह सिद्धान्त सत्कार्यवाद है इसका प्रयोजन कार्य से प्रकृति की अस्तित्व की सिद्धि है।कारण में कार्य सत् है इसके लिए 5 हेतु दिए गए है।

असदकरणात्-

अर्थात् जो वस्तु अनस्तित्व वाला होता है उसे किसी भी कारण से उत्पन्न नही किया जा सकता है।जैसे आकाश पुष्प असत् है उसे किसी कारण से नही उत्पन्न किया जा सकता है और करोड़ो शिल्पी मिलकर नीले रंग को पीला नही वना सकते है।अतः जैसे उत्पत्ति के बाद कार्य सत् होता है ठीक वैसे ही उत्पत्ति के पूर्व भी कार्य कारण में सत् होता है।

उपादानग्रहणात्- यतः कार्य की उत्पत्ति के लिए सम्बन्धित उपादान का ग्रहण किया जाता है। यह लोक सिद्ध है कि जो व्यक्ति जिस कार्य को चाहता है वह उससे संम्बन्धित उपादान कारण का ग्रहण करता है,जैसे दही को प्राप्त करने के लिए दूध का ही ग्रहण करता है। इससे सिद्ध है कि कार्य उत्पत्ति के पहले कारण मे सत् है।

सर्वसम्भवाभावात्

यतः सभी कार्यों की सभी कारणो से उत्पत्ति नही होती है अतः यह भी सिद्ध करता है कि कार्य कारण में उत्पत्ति के पहले से ही मौजूद रहता है। जैसे-सुवर्ण की रजत् ,तृण,धूल,और बालू से उत्पत्ति नही होती है।

शक्तस्य शक्यकरणात्

यतः जो कारण जिस कार्य की उत्पत्ति मे शक्त अर्थात समर्थ होता है उससे उसी शक्य कार्य की उत्पत्ति होती है।अतः सिद्ध होता है कि कार्य कारण मे सत् है, जैसे शक्य तेल,घट,पट, को उत्पन्न करने में क्रमशः तिल ,मृत्तिका और तन्तु ही समर्थ हैं।

कारणभावाच्च

यतः कार्य कारणात्मक होता है जो लक्षण कारण का होता है वही लक्षण कार्य का भी होता है। यह सिद्ध करता है कि कार्य कारण मे पहले से विद्यमान है जैसे जौ से जौ ही उत्पन्न होता है,धान से धान ही उत्पन्न होता है,गेहूँ से गेहूँ उत्पन्न होता है।

विशेष-

कार्य उत्पत्तिपूर्व कारण मे सत् है या असत् है,सदसत् है ? इस प्रश्न के समाधानार्थ भारतीय दर्शन मे कई सिद्धान्त मिलते है। जो मानते है कि कार्य उत्पत्ति के पहले कारण मे सत् है वे सत्कार्यवादी कहे जाते हैं। सत्कार्यवाद को सांख्ययोग और वेदान्त मानता है। सांख्ययोग सत्कार्यवाद के भेद प्रकृति परिणामवाद को मानता है। विशिष्टाद्वैत व्रह्मपरिणामवाद को मानता है। अद्वैतवेदान्त व्रह्मविवर्तवाद मानता है। जो र्दशन कार्य को उत्पत्ति के पहले कारण में असत् मानते हैं। वे असत्कार्यवादी हैं। वे हैं न्यायवैशेषिक और बौद्धदर्शन। न्यायवैशेषिक आरम्भवादी हैं। ये कार्य को नवीन सृष्टि मानते है।कार्य में उत्पत्ति और व्यय के द्वारा असत्कार्यवाद को सिद्ध करते हैं। वौद्ध क्षणभंगवाद को मानता है। जो कारण मे कार्य को सद् और असद् दोनो मानतंे है वे सदसत्कार्यवादी है जैन दर्शन इस सिद्धान्त को मानता है। जैन दर्शन स्यादवाद से सदसत् कार्यवाद को सिद्ध करता है। 9

पूर्वापर संम्वन्ध- 8वीं कारिका मे महदादि कार्य और प्रकृति मे कुछ धर्म असमान है ऐसा कहा गया है तो वे असमान धर्म क्या है ? ऐसी आकांक्षा होने पर कहते है-

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिड्.गम्।

सावयवं परतंत्रं व्यक्तं,विपरीतम व्यक्तम्।।का0.10

अन्वय-व्यक्तंहेतुमत्,अनित्यम् अव्यापि सक्रियम् अनेकम् आश्रितं लिड्.गं सावयवं परतंत्रम्।अव्यक्तं विपरीतम्।

अर्थ-व्यक्तसकारणअर्थात्उत्पन्न,विनाशी,व्याप्त,क्रियाशील,अनेक,स्वकारणमेआश्रित,लिङ्ग अर्थात लययुक्त या प्रधान के ज्ञापक हेतु,अवयव युक्त,और परतन्त्र हैं जबकिअव्यक्त, निष्क्रिय, एक,आश्रय, अलिंग,निरवयव, और स्वतंत्र है।

शारदाव्याख्या-व्यक्त कार्य है और अव्यक्त कारण है दोनो मे विरूपता है उनमे विरूपता बतलाने के लिए व्यक्त के धर्म को पहले बतलाते है -

व्यक्तं हेतुमत्-व्यक्त महदादि सकारण है इनका कोई कारण होता है। महत् का कारण प्रकृति है।अहंकार का कारण महत् है। 11 इन्द्रियों एवं 5 तन्मात्राओ का कारण अहंकार है। 5 महाभूतो का कारण 5 तन्मात्राएं है।

अनित्यम्-अनित्य का अर्थ है विनाशी। विनाशी होने का अर्थ है अपने कारण मे अन्तर्भूत हो जाना।व्यक्त अपने कारण में लय हो जाने से अनित्य हैं। जैसे प्रलयकाल में महाभूत तन्मात्राओं में , तन्मात्राएं एवं 11 इन्द्रियां अहंकार में,यह भी महत् मे और महत प्रकृति मे अन्तर्भूत हो जाते हैं।

अव्यापि- अव्यापि का अर्थ है अव्यापक होना। सभी कार्य परिणामी कारण को व्याप्त नही करते हैं,

महदादि परिणाम परिणामी प्रकृति को व्याप्त नही करते है। अतः व्यक्त व्याप्य हैं।

सक्रियम्-व्यक्त सृष्टि की दशा मे संसरण करता हैं अतः सक्रिय है।

अनेकम्-व्यक्त अनेक हैं। ये महद् आदि 23 तत्व हैं।

आश्रितम्-स्वकारणमाश्रयते महद् आदि अपने-अपने कारण मे आश्रय लेते है अतः ये आश्रित है।महत् प्रधान पर आश्रित है। वुद्धि पर अहंकार आश्रित है। अहंकार मे 11 इन्द्रियाँ व 5 तन्मात आश्रित है, तन्मात्रो मे 5 महाभूत आश्रित है।

लिङ्गम-इसकी व्याख्या मे गौडपादभाष्यं एवं तत्व कौमुदी मे अन्तर है **गौड़पादभाव्यं** मे तो-लिङ्गं **लययुक्तं लयकाले पंचमहाभूतानि तन्मात्रेषु लीयन्ते .....च प्रधाने लयं यातीति**। कहा गया है। किन्तु तत्व कौमुदी मे इस प्रकार कहा गया है,लिंङ्गं प्रधानस्य अर्थात् ये प्रधान के अनुमान मे हेतु होते है।

सावयम्-अवयवों वाला होना ही सावयव है।व्यक्त तत्व सावयव हैं ।अवयव शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ही है उनसे युक्त होने से व्यक्त सावयव है।

परतंत्रम्- व्यक्त स्वयं से उत्पन्न नही हो ेते हैं। अतः परतन्त्र है।परतन्त्र का अर्थ पराधीन होना भी है।ये व्यक्त के धर्म व्याख्यात हुए अब प्रकृति की विरूपता दिखलाने के लिए कहते हैं- अव्यक्तं विपरीतम् जिसमें सभी कार्य अप्रकट रूप से कारण मे विद्यमान रहते हैं। वह अव्यक्त है। वह व्यक्त के विपरीत धर्म वाला है। यतः व्यक्त हेतुमद,अनित्य,सक्रिय,अनेक,आश्रित,लिङ्.ग,सावयव, तथा परतन्त्र है किन्तु अव्यक्त अहेतुमद्,नित्य,एक,आश्रय,अलिङ्ग,निरवयव तथा स्वतन्त्र हैं। 10

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. दुःख कितने हैं-

(a). तीन (b) पाँच

(c). दो (d). चार

प्रश्न 2. दुःखत्रय का आत्यंतिक विनाश होता है -

(a). लौकिक उपाय से (b). वैदिक उपाय से

(c). तत्वज्ञान से (d).. इनमें से किसी से नहीं

प्रश्न 3. तत्वों की कुल संख्या है -

(a). 1 (b). 20

(c).. 18 (d).. 25

प्रश्न 4. प्रकृति विकृति तत्वों की संख्या है-

(a). 5 (b). 8

(c). 7 (d). 4

प्रश्न 5. सांख्य स्वीकृत प्रमाण हैं -

(a). केवल प्रत्यक्ष (b). केवल अनुमान

(c). केवल आगम (d). ये सभी

प्रश्न 6. विकृति तत्व हैं -

(a). 8 (b). 16

(c). 12 (d). 20

प्रश्न 7. प्रतिविषयाध्यवसायः लक्षण है -

(a). प्रत्यक्ष का (b). अनुमान का

(c). आगम का (d). उपमान का

प्रश्न 8. लिङ्ग लिङ्गी पूर्वक होता है -

(a). आगम (b). अनुमान

(c). प्रत्यक्ष (d). उपमान

प्रश्न 9. अनुमान के भेद हैं -

(a). 2 (b). 5

(c). 3 (d). 4

प्रश्न 10. अतिदूरात् ..... में 8 बाधक हेतु हैं -

(a). प्रत्यक्ष के (b). अनुमान के

(c). उपमान के (d).. आगम के

प्रश्न 11. सांख्य दर्शन स्वीकार करता है -

(a). असत्कार्यवाद (b). सत्कार्यवाद

(c).. दोनो (d). इनमें से कोई नहीं

3.4 सारांश

सांख्यकारिका अत्यन्त ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।इस इकाई मे 1-10 कारिकाओ तक जो प्रतिपादित है उनका सार निम्नवत है।सांख्यशास्तत्र दुःखो के ऐकान्तिक एवं आत्यंतिक शमन का साधन व्यक्त अव्यक्त एवं ज्ञ के विवेक ज्ञान से उत्पन्न कैवल्य को मानता है। अतः यह मोक्ष शास्त्र है। व्यक्त में 23 तत्व है- महत् तत्व,अहकार ,11इन्द्रियाँ,5 तन्मात्राएं और 5 महाभूत। अव्यक्त तत्व प्रकृति है यह एक है। ज्ञ पुरूष है। इस प्रकार कुल 25 तत्व है इनका ज्ञान दृष्ट अनुमान और शब्द प्रमाण से ही होता है। कारिका 4-7 में सांख्य की ज्ञानमीमांसा वर्णित है। प्रकृति के सिद्धि के साधन भूत सत्कार्यवाद को मानता है यह इसका कारणता सिद्धान्त है। व्यक्त सकारण व्याप्य सक्रिय अनेक आश्रित लिङ्ग और सावयव परतंत्र है। अव्यक्त अकारण नित्य व्यापक अलिंग आश्रय निरवयव और स्वतंत्र है।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

1. दुःख - प्रतिकूल वेदनीय रजोगुण का परिणाम विशेष दुःख है।
2. प्रकृति - मूल सृजन कारिणी जड अचेतन शक्ति जो गुणो की साम्यावस्था है।
3. अव्यक्त- जिसमे सभी कार्य समूह अप्रकट रूप से विद्यमान होते है। प्रकृतिअव्यक्त माया प्रधान पर्याय शब्द है।
4. व्यक्त -कारण और कार्य स्वरूपात्मक महत् आदि 23 तत्व है।
5. सत्कार्यवाद- वह सिद्धान्त जो कार्य को उत्पत्ति के पहले कारण मे सत् मानता है।

3.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1.a 2.c 3.d 4.c

5.d	6.b	7.a	8.b
9.c	10.a	11.b	

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.सांख्यकारिका-गौडपादभाष्यसमन्विता लेखक ईश्वरकृष्ण-व्याख्याकार पं0श्री ज्वाला प्रसाद गौड,प्रकाशक-चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संस्करण 2004।

2. सांख्यतत्वकौमुदीप्रभा-व्याख्याकार डा0 आद्या प्रसाद मिश्र,प्रकाशक- अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद,संस्करण 1994

3. सांख्यकारिका युक्तिदीपिका सहित-व्याख्या डा0 रमाशंकर त्रिपाठी प्रकाशक कष्णदास अकादमी वाराणसी,संस्करण -1999

4. सांख्यकारिका माठरवृत्ति व जयमंगला समन्वित-संशोधक सत्कारि शर्मा वंगीय प्रकाशक चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी तृतीय संस्करण 1994

,5.सांख्यदर्शनम्-सांख्यप्रवचनभाष्यसहित सम्पादक डा0 पं0 गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर

6. देवीभागवत- (मूल संस्कृत) गीता प्रेस गोरखपुर।

3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

आप इस इकाई का अध्ययन के लिए अधोलिखित पाठ्य सामग्री का उपयोग कर सकते है-

1.सांख्यकारिका-गौडपादभाष्यसमन्विता लेखक ईश्वरकृष्ण-व्याख्याकार पं0श्री ज्वाला प्रसाद गौड,प्रकाशक-चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संस्करण 2004।

2. सांख्यतत्वकौमुदीप्रभा-व्याख्याकार डा0 आद्या प्रसाद मिश्र,प्रकाशक- अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद,संस्करण 1994

3. सांख्यकारिका युक्तिदीपिका सहित-व्याख्या डा0 रमाशंकर त्रिपाठी प्रकाशक कष्णदास अकादमी वाराणसी,संस्करण -1999

4. सांख्यकारिका माठरवृत्ति व जयमंगला समन्वित-संशोधक सत्कारि शर्मा वंगीय प्रकाशक चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी तृतीय संस्करण 1994

,5.सांख्यदर्शनम्-सांख्यप्रवचनभाष्यसहित सम्पादक डा0 पं0 गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. प्रथम इकाई की कारिकाओं का सं◌ाराँश लिखिए ?

प्रश्न 2. सांख्य र्दशन की ज्ञानमीमांसा पर प्रकाश डालिए?

प्रश्न 3. सत्कार्यवाद सिद्धान्त को समझाइए ?

इकाई-4 सांख्यकारिका 11-20 मूलपाठ अर्थ एवं व्याख्या

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3. साख्यकारिका11-20 मूलपाठ से अर्थ एवं व्याख्या
4.4 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.5 परिभाषिक शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों उत्तर
4.7 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत चतुर्थ इकाई मे सांख्यकारिका की 11 से 20 कारिकाओं का मूलपाठ,अर्थ एवं व्याख्या की गयी है। ग्यारहवीं कारिका में प्रकृति एवं तथा व्यक्त के समान धर्म और पुरूष तत्व की प्रकृति एवं प्रकृति से सरूपता एवं विरूपता प्रतिपादित है। 12वीं कारिका में गुणों का स्वरूप प्रयोजन और प्रणाली का वर्णन है। 13वीं कारिका में तीनों गुणों का नाम व वैशिष्ट्य प्रतिपादित हैं। 14वीं कारिका में प्रकृति आदि शूक्ष्म तत्वों में अविवेकित्व आदि धर्मों की सिद्धि की गयी है। 15वीं कारिका में प्रकृति तत्व की सिद्धि के 5 हेतुओं का वर्णन है। 16वीं कारिका में तीनों गुणों के समुदय से उत्पन्न हुई सृष्टि में नानात्व का उपपत्ति पूर्वक प्रतिपादन है। 17वीं कारिका में पुरूष के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए 5 हेतुओं को दिया गया है। 18वीं कारिका में पुरूष के बहुत्व को सिद्ध किया गया है। 19वीं कारिका में पुरूष के वास्तविक धर्म का प्रतिपादन किया गया है। 20वीं कारिका में अचेतन लिंग के चेतनवत् प्रतिपादित होने के कारण का वर्णन किया गया है।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप निम्न तथ्यो से परिचित हो जायेगें -

- प्रकृति का स्वरूप क्या है ? गुण कौन हैं ?, प्रकृति की सिद्वि किन हेतुओ से होती है ?
- पुरूष का स्वरूप क्या है, पुरूष की सिद्धि कैसे होती है ?
- पुरूष एक है या अनेक ?

4.3 साख्यकारिका 11-20 मूलपाठ,अर्थ एवं व्याख्या

अवतरणिका-सांख्यकारिका 8 मे कहा गया है- **तच्च कार्यं महदादि प्रकृतिविरूपं सरूपं च ।**

अर्थात अव्यक्त एवं व्यक्त मे असमान धर्म है और समान धर्म भी है। असमान धर्म कारिका 10 मंे प्रतिपादित किये गये हैं किन्तु दोनो के समान धर्म क्या है ? पुरूष किस प्रकार उनके सदृश एवं भिन्न है ऐसी आशंका होने पर कहा गया है-

त्रिगुणमविवेकि विषयःसामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।

व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्।। का0-11

अन्वय-व्यक्तं तथा प्रधानं त्रिगुणम्अविवेकि विषयः सामान्यम् अचेतनं प्रसवधर्मि । पुमान् तद्विपरितः तथा च।

अर्थ-व्यक्त तथा प्रधान दोनो त्रिगुणात्मक, अपृथक विषय अर्थात् भोग्य या

विज्ञानवाह्य,सर्वसाधारण,जड़ एवं परिणामी भी है । पुरूष उन दोनो से भिन्न भी है एव सदृश भी है।

शारदाव्याख्या-व्यक्त एवं अव्यक्त मसमान धर्मो के प्रतिपादनार्थ कहते है त्रिगुणेति-.

व्यक्तं तथा प्रधानं त्रिगुणम्- व्यक्त तथा प्रधान दोनो ही त्रिगुणात्मक है। व्यक्त सत्व, रजस् एवं तमस् के धर्म सुख दु.ख एवं मोह से युक्त होने से त्रिगुणात्मक है और प्रधान तो गुणो की साम्यावस्था होने से त्रिगुणात्मक है यह दोनो मे पहली सरूपता है।

दोनों में दूसरी सरूपता है अविवेकि जैसे प्रधान अपने से अभिन्न है ये गुण है यह प्रकृति है ऐसा भेद नही सम्भव है क्योंकि प्रकृति त्रिगुणों की तद्रूपता है वैसे ही यह व्यक्त है यह गुण है ऐसा भेद नही है अतःअविवेकि का अर्थ अभिन्नता है।

दोनों मे तीसरी सरूपता है- विषयः-विषय का अर्थ है भोग्य होना व्यक्त और अव्यक्त पुरूष का भोग्य होने से विषय है। सभी का भोग्य होने के कारण विषय है (गौडपाद)। विषयः ग्राह्यःविज्ञानात्वहिरिति यावत् (तत्व कैमुदी)।व्यक्त और अव्यक्त विज्ञान वाह्य होने से भी विषय है।

दोनों में चतुर्थ समानता है सामान्यम् अर्थात् सर्वसाधारण होना व्यक्त और अव्यक्त दोनों मूल्यदासी की तरह से सर्वसाधारण होने से सामान्य है।

दोनों मे 5वीं सरूपता है अचेतनम् अचेतन का अर्थ है सुख और दुःख का ज्ञान नही होना । चूँकि सुख दुःख और मोह का ज्ञान व्यक्त और अव्यक्त को नही होता है अतः वे दोनों अचेतन है। जड होना ही अचेतन होना है।

दोनों में 6वी समानता है प्रसवधर्मि- प्रसवरूपो धर्मो यः सो अस्य अस्ति इति प्रसवधर्मि- जिसमें प्रसवरूप धर्म विद्यमान है वह प्रसवधर्मी है। प्रसवधर्मिता का अर्थ है नित्य परिणामशीलता। व्यक्त और अव्यक्त दोनों में नित्य परिणाम होता रहता है। यह प्रसवरूप धर्म विद्यमान रहते ही वुद्धि से अहंकार,उससे 11 इन्द्रियाँ व 5 तन्मात्र , 5 तन्मात्रो से 5 महाभूत प्रसूत होतेहैं।ऐसे ही प्रकृति में भी नित्य रूप से परिणाम होता रहता है। प्रलय काल मे गुणो में सरूप परिणाम होता रहता है। तथा सृष्टिकाल में गुणों में विरूप परिणाम होता है । विरूप परिणामावस्था में यह महदादि को प्रसूत करती है। यहाँ तक व्यक्त और अव्यक्त के सरूप धर्म प्रतिपादित हुए।

किन्तु पुरूष का इनसे वैरूप्य तथा सारूप्य बतलाने के लिए कहा गया है-पुमान् तद्विपरितः तथा च। पुरूष उन दोनो व्यक्त तथा अव्यक्त के विरूपधर्मवाला भी है और उस अव्यक्त के समान धर्मवाला भी है।पुरूष अत्रिगुण है,विवेकी है, भोक्ता है असामान्य है, चेतन है तथा अपरिणामी है, अकारण नित्य व्यापक निष्क्रिय अनेक, आश्रय अलिंग निरवयव और स्वतंत्र है। 11

पूर्वापर सम्बन्ध- अव्यक्त तथा व्यक्त त्रिगुणात्मक है उन त्रिगुणों का स्वरूप क्या है। उनका प्रयोजन (कार्य) क्या है ? उनका व्यापार कैसे होता है ? ऐसी आकांक्षाओं के होने पर कहा गया है-

प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः।

अन्योऽन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः।।का0.12

अन्वय गुणाप्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाप्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाअन्योऽन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च भवन्ति।

अर्थ-तीनो गुण सुख,दुःख मोहात्मक है,प्रकाशन,प्रर्वतन,तथा नियमन इनके प्रयोजन है तथा ये एक दूसरे को अभिभूत करते हैं ,एक दूसरे के आश्रय बनतें है , एक दूसरे के उत्पादक (परिणाम सहकारी) होते हैं, एक दूसरे से मिथुनीभूत होते हैं और एक दूसरे की वृत्ति को उत्पन्न करने वाले होते हैं।

शारदाव्याख्या-गुणाः प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रीत्यात्मकः अप्रीत्यात्मकः विषादात्मकः ते तथा - तीनों गुण सुख दुख और मोहात्मक हैं।गुण का अर्थ है दूसरे के लिए होना , गौड होना और रज्जु की तरह से बॉधने वाला होना। ये तीन हैं सत्वगुण रजोगुण व तमोगुण। सत्वगुण का स्वरूप सुख है। रजो गुण का स्वरूप दुख है और तमो गुण का स्वरूप मोह है। सुख की अवस्था में सत्व गुण प्रबल होता है। और दुख की अवस्था में रजोगुण प्रबल होता है। मोह की अवस्था में तमो गुण प्रबल होता है। गुणों का स्वरूप प्रतिपादन के अनन्तर इनका प्रयोजन बताया जाना अभीष्ट है। इनका प्रयोजन है- **प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः प्रकाशार्थः च प्रवृत्त्यर्थः च नियमार्थश्च** अर्थात् गुण प्रकाशन प्रवर्तन और नियमन प्रयोजन वाले हैं। सत्वगुण का प्रयोजन विषयें को प्रकाशित करना है, रजोगुण का प्रयोजन क्रिया में प्रवृत्त करना है । तमोगुण का प्रयोजन नियंत्रित करना है। गुणों का **व्यापारहैअन्योऽन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्चअन्योऽन्याभिभवाः,अन्योऽन्याश्रयाःअन्योऽन्यजननाः**, **अन्योऽन्यमिथुनाः अन्योऽन्यवृत्तयाः च ते (गौडपाद**)। ये गुण एक दूसरे को अभिभूत करतें हैं ,एक दूसरे के आश्रय बनतें है एक दूसरे के उत्पादक (परिणाम सहकारी) होते हैं, एक दूसरे से मिथुनीभूत होते हैं और एक दूसरे की वृत्ति को उत्पन्न करने वाले होते हैं।

अन्योऽन्याभिभवाः तीनों गुण परस्पर एक दूसरे को तिरस्कृत करने वाले होकर ही अपने प्रयोजन को करते हैं जैसे सत्वगुण तमोगुण व रजोगुण को अभिभूत करके ही विषयो को प्रकाशित करता है ऐसे ही रजोगुण और तमोगुण भी अन्य दोनो गुणों को अभिभूत करके अपने प्रयोजन को पूरा करते हैं।

अन्योऽन्याश्रयाः - गुण एक दूसरे के आश्रय बनने वाले होते है। जब विषयों का प्रकाशन होता है तो वह तमोगुण और रजो गुण पर अवलम्बित होता है ऐसे ही अन्य गुणों की क्रिया अन्य दूसरे पर अवलम्बित होती है।

अन्योऽन्यजननाः तीनों गुण एक दूसरे के परिणाम सहकारी हैं। गुण परस्पर अपेक्षा रखते हुए प्रलयावस्था में प्रकृति में सरूपरिणाम (जनन) उत्पन्न करते हैं।

अन्योऽन्यमिथुना: ये परस्पर मिथुन भाव से रहते हैं ये परस्पर सहयोगी हैं जैसे स्त्री पुरूष मिलकर अपने प्रयोजनो को पूरा करते हैं ठीक वैसे ही गुण भी परस्पर सहायक होकर ही अपना प्रयोजन पूरा करते हैं। जैसा कि कहा गया है-

अन्योन्यमिथुना: सर्वे सर्वे सर्वत्रगामिनः।
रजसो मिथुनं सत्वं सत्वस्य मिथुनं रजः।।
तमसश्चापि मिथुने ते सत्वरजसी उभे।
उभयो: सत्व रजसोर्मिथुनं तम उच्यते।।
नैषामादि: सम्प्रयोगो वियोगो वोपलभ्यते।। देवीभागवत्

अन्योऽन्यवृत्तय:- गुण एक दूसरे की वृत्ति को उत्पन्न करते हैं (अन्योन्यवृत्तिः जनयन्ति इति माठरः) जैसे कोई नय विनम्रता विश्वास चतुरा स्त्री भातृ बन्धु व पति को सुखी करती है वही सौतों मे दुःख एवं मोह को उत्पन्न करती है। इस प्रकार सत्व गुण के द्वारा रजोगुण व तमोगुण की वृत्ति उत्पन्न की गई। ऐसे ही अन्य दोनों गुण भी अन्य दोनों के व्यापार को उत्पन्न करते हैं। भगवान श्री कृष्ण ने भी गीता मे इसका संकेत किया है- **गुणा गुणेषु वर्तन्ते। 12**

पूर्वापर सम्बन्ध- त्रिगुणों का स्वरूप प्रयोजन,एवं व्यापार का प्रतिपादन किया गया है। सुख दुःख मोहात्मक त्रिगुण कौन हैं ? उनमे क्या वैशिष्ट्य है ऐसी आकांक्षा होने पर कहते हैं-

सत्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः।
गुरूवरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः।।का0.13

अन्वय-सत्वंलघुप्रकाशकंरजःचलंउपष्टम्भकंचलंतमःगुरूवरणकमेइष्टंअर्थतःप्रदीपवत्वृत्त।

अर्थ- सत्वगुण हल्का एतएव प्रकाशक माना गया है , रजोगुण चंचल एतएव उत्तेजक माना गया है । तमोगुण भारी अतएव नियामक माना गया है । प्रयोजन की सिद्धि मे ये प्रदीप की तरह मिलकर व्यापार करते हैं ।

शारदाव्याख्या -सत्वं लघु प्रकाशकम् इष्टम्-सत्व गुण लघु और प्रकाशक है। जब सत्व गुण प्रबल होता है तब अंग हल्के होते हैं , बुद्धि विषयों का प्ररकाशन करती हैं, इन्द्रियों मे प्रसन्नता होती है। देवीभागवत में सत्वगुण के सम्बन्ध में निम्न विचार मिलते हैं -

सत्वं प्रीत्यात्मकं ज्ञेयं सुखात्प्रीतिसुमुद्भवः।
आर्जवं च तथा सत्यं,शौचं,श्रद्धा,क्षमा,धृतिः।।
अनुकम्पा तथा लज्जाशान्तिः सन्तोष एव च।
एतैः सत्वप्रतीतिश्च जायते निश्चला सदा।।
श्वेतवर्णं सत्वं धर्मे प्रीतिकरं सदा ।
सच्द्रद्धोत्पादकं नित्यंअसच्द्रद्धानिवारकम्।।3.8.2-4

उपष्टम्भकं चलं च रजः। रजोगुण उत्तेजक और क्रियाशील है।यह उत्तेजकता वैसी ही है जैसे वृष को देखकर दूसरा वृष उत्तेजित होता है। रजोगुणीव्यक्ति कलहप्रेमी होता है , उत्सुक मन वाला होता है

चंचलचित्त वाला होता है। इसका स्वरूप देवीभागवत में इस प्रकार वर्णित है-

रक्तवर्णं रजः प्रोक्तमप्रीतिकरमद्भुतम्।
अप्रीतिर्दुःखयोगत्वात्येव सुनिश्चिता ।।
प्रद्वेषोऽथ तथा द्रोहो मत्सरः स्तम्भ एव च।
उत्कण्ठा च तथानिद्रा श्रद्धा तत्र च राजसी।।
मानो मदस्तथा गर्वो रजसा किल जायते।
प्रत्येतव्यं रजस्त्वेतैर्लक्षणैश्च विचक्षणै।।3.8.6-8

तमःगुरूवरणकमेव-तमोगुण भारी होता है अतः अवरोधक माना गया है। जब तमोगुण प्रबल होता है अंग भारी होते है। इन्द्रियाँ अपने अपने विषयों का प्रकाशन नहीं करती हैं।देवीभागवत में इसका स्वरूप इस प्रकार मिलता है -

कृष्णवर्णं तमः प्रोक्तं मोहनं च विषादकृत्।
आलस्यं च तथा अज्ञानं निद्रा दैन्यं भयं तथा।।
विवादश्चैव कार्पण्यं कौटिल्यं रोष एव च।
वैषम्यं वातिनास्तिक्यं परदोषानुदर्शनम् ।।
प्रत्येतव्यं तमस्त्वेतैर्लक्षणैः सर्वथा बुधैः।

तामस्या श्रद्धया युक्तं परतापोपपादकम्।।3.8.9-11

अर्थतः प्रदीपवत् वृत्तिः- परस्पर विरोधी स्वभाव वाला होने पर भी गुणत्रय प्रदीप की तरह एक ही प्रयोजन की सिद्धि के लिए मिलकर कार्य करते हैं। ऐसा देखने मे आता है कि जैसे अग्नि बत्ती और तेल का विरोधी है फिर भी उनके साथ मिलकर विषयों को प्रकाशित करता है वैसे ही सत्व रजस् और तमस् भी परस्पर विरोधी होने पर भी परस्पर सहयोग पूर्वक अपना कार्य करते हैं। सहयोग का अर्थ है पुरूष का भोगापवर्ग। जैसा 31वीं कारिका मे कहा गया है- पुरूषार्थ एवं हेतुः न केदचित् कार्यते करणम्। 13

पूर्वापर सम्बन्ध-11वीं कारिका मे त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनम् प्रसवधर्मि व्यक्तं तथा प्रधानम् ऐसा कहा गया है। प्रत्यक्ष पदार्थो मे त्रिगुण आदि धर्म तो सिद्ध है किन्तु सूक्ष्म अव्यक्त तथा वुद्धि आदि मे इनकी सत्ता कैसे स्वीकार की जा सकती है ? ऐसी आकांक्षा होने पर कहा गया है -

अविवेक्यादेः1 सिद्धिः त्रैगुण्यात्तद्विपर्ययाभावात्।
कारणगुणात्मकत्वात्कार्यस्याव्यक्तमपि सिद्धम्।।का0-14

अन्वय-अविवेक्यादेःसिद्धिःत्रैगुण्यात्तद्विपर्ययाभावात्।कार्यस्यकारणगुणात्मकत्वात अव्यकतम्अपि सिद्धम्।

अर्थ-त्रिगुणात्मक होने के कारण अव्यक्त आदि मे अविवेकित्वादि धर्मो की सिद्धि होती है। क्योंकि इनके अभाव में अव्यक्त आदि पदार्थों में तीनों गुणों का अभाव हो जायेगा और कार्य के कारण गुणों से ही युक्त होने से इन अविवेकित्व आदि धर्मों के आश्रयभूत अव्यक्त की भी सत्ता सिद्ध होती है।

शारदाव्याख्या-अविवेक्यादेःसिद्धिःत्रैगुण्यात्- अव्यक्त इत्यादि अप्रत्यक्ष पदार्थो मे अविवेकि,विषय,सामान्य,आदि धर्म की सिद्धि त्रिगुणात्मक होने से होती है।जो-जो पदार्थ त्रिगुणात्मक होते है वे अविवेकी आदि धर्मो से युक्त होते है जैसे प्रत्यक्ष होने वाले व्यक्त पदार्थ युक्त होते हैं। यह अन्वयव्याप्ति पूर्वक अव्यक्त और व्यक्त में अविवेकि आदि धर्मो की सिद्धि की गयी है।

तद्विपर्ययाभवात्-अर्थात जहाँ अविवेकित्व विषयत्वादि धर्मों का विपर्यय(अभाव) है। वहाँ त्रैगुण्य का भी अभाव है जैसे पुरूष में। अतः व्यक्त और अव्यक्त त्रैगुण्य रूप हेतुवाले होने से अविवेकि

1 विवेक्यादिः -माठरवृत

विषय सामान्य आदि धर्म वाले है। यहा व्यतिरेकव्याप्ति पूर्वक अविवेकित्वादि की अव्यक्त आदि मे सिद्ध की गई है। चूँकि अभी तक अव्यक्त को सिद्ध नही किया गया है तो उसमे अविवेकि आदि धर्मो की सिद्धि कैसे होती है ऐसी आशंका होने पर कहते हैं -

कार्यस्य कारणगुणात्मकत्वात् अव्यक्तम्अपि सिद्धम्-कार्य मे कारण के गुण होते है । जैसे स्वर्ण निर्मित आभूषण स्वर्ण के गुण वाला ही होता है उसी तरह व्यक्त कार्य भी त्रिगुणात्मक तथा अविवेकित्वादि धर्म वाले देखे जाते हैं। इस स्थिति मे तद्रूप मूल कारण अव्यक्त सिद्ध होता है। 14

पूर्वापर संम्बन्ध- अविवेकित्वआदि धर्म युक्त अव्यक्त है उसकी सत्ता कैसे सिद्ध की जा सकती है ? ऐसी आशंका होने पर कहा गया है-

भेदानां परिमाणात् समन्वयाच्छक्तितः प्रवृत्तेश्च।
कारणकार्यविभागादविभागाद् वैश्वरूप्यस्य।।का0.15।।
कारणमस्त्यवक्तं,प्रवर्ततेत्रिगुणतःसमुदयाच्च।
परिणामतः सलिलवत् प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात्।।का016।।

अन्वय - भेदानां परिमाणात्, समन्वयात् , शक्तितः प्रवृत्तेः,कारणकार्यविभागात् , वैश्वरूप्यस्य अविभागात् चअव्यक्तं कारणम् अस्ति। त्रिगुणतः च समुदयात् प्रवर्तते , प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात् परिणामतः सलिलवत् भवन्ति।

अर्थ- महत्आदि कार्यों के परिमित होने , कारण के समान होने , कारण की शक्ति से जन्य होने, कारण कार्य के अलग-अलग मालूम होने , प्रलय की अवस्था में नानारूप कार्यों के कारण में लीन होने से , सबका एक कारण अव्यक्त सिद्ध होता है। अव्यक्त अपने तीनो गुणों के स्वरूप से तथा मिले

हुए तीनों गुणों के समूह से कार्य करता है एक-एक गुण के आश्रय से उत्पन्न भेद के कारण परिणाम से जल की भॉति विभिन्न होते हैं।

शारदाव्याख्या

भेदानां परिमाणात्- महद् आदि कार्यों के सीमित होने से अव्यक्त का अस्तित्व सिद्ध होता है। इस संसार के पदार्थ सीमित परतंत्र अव्यापक और अनेक हैं। ये असीमित स्वतंत्र व्यापक और एक की ओर संकेत करते हैं। जैसे बुद्धि अहंकार 11 इन्द्रियां 5 तन्मात्र 5 महाभूत सीमित परतंत्र अव्यापक और अनेक हैं इनका जो कारण है वह असीमित स्वतंत्र व्यापक और एक होना चाहिए वह कारण है अव्यक्त।

समन्वयात्

संसार के सभी पदार्थ सुखात्मक दुखात्मक और मोहात्मक हैं। इन सभी कार्यों के मूल कारण में भी इस त्रिगुणात्मक स्वभाव का होना आवश्यक है। इनका मूल कारण अव्यक्त है जो त्रिगुणात्मक है। इस प्रकार तीनो गुणों के स्वरूप का समन्वय प्रकृति में होने से उसका अस्तित्व सिद्ध है।

शक्तितः प्रवृत्तेः

शक्ति से प्रवृत्त होने से अव्यक्त का अस्तित्व सिद्ध होता है। व्यक्त आदि कार्य शक्ति के द्वारा ही उत्पन्न होते हैं। शक्ति आश्रयहीना नहीं होती है। उस शक्ति का आश्रय अव्यक्त है। लोक में जिस व्यक्ति में जैसा कार्य करने की शक्ति होती है वैसे ही कार्य को करता है ठीक ऐसे ही सृष्टि को उत्पन्न करने की शक्ति केवल प्रकृति में ही है। अतः उसका अस्तित्व सिद्ध है।

कारणकार्यविभागात्

करोति इति कारणं क्रियते इति कार्यं तयोर्विभागः तस्मात् जो करता है वह कारण है और जो किया जाय वह कार्य कहा जाता है, चूंकि कारण अलग होता है और कार्य अलग होता है इससे भी प्रकृति का अस्तित्व सिद्ध होता है। जैसे मिट्टी का पिण्ड कारण है और घट कार्य है क्योंकि वही मधु जल दुग्ध आदि ग्रहण करने मे समर्थ है न कि मिट्टी का पिण्ड। इसी तरह से व्यक्त और अव्यक्त में भी भेद है ,व्यक्त कार्य अलग हैं और अव्यक्त प्रधान व्यक्त से भिन्न कारण है। अतः अव्यक्त का अस्तित्व सिद्ध है।

वैश्वरूप्यस्य अविभागात्

विश्वरूपस्य भावो वैश्वरूप्यम् बहुरूपम् इति अर्थः तस्य विश्वरूपता का भाव ही वैश्वरूप्य है। वैश्वरूप्य का अर्थ है बहुरूपता उसके अविभक्त रूप में अन्तर्भूत होने के कारण प्रधान का अस्तित्व सिद्ध है। प्रलयकाल में त्रैलोक्य 5 महाभूतों में अभिन्न बन जाता है। 5 महाभूत 5 तन्मात्राओं मे अभिन्न बन

जाते हैं। पंच तन्मात्र और 11 इन्द्रियां अहंकार में , अहंकार बुद्धि में और वह अव्यक्त में अविभक्त बन जाती हैं। इस प्रकार तीनो लोक प्रलयकाल में प्रकृति में अविभक्त रूप से विद्यमान रहते हैं। सभी कार्य समूह के प्रकृष्ट रूप से अवस्थित होने के कारण अव्यक्त को प्रधान कहते हैं। माठरवृत्ति कहती है प्रकर्षेण धीयते अवस्थाप्यते अत्राखिलमिति प्रधानम्। इस अविभाग के कारण प्रकृति का अस्तित्व सिद्ध होता है।

प्रधान में सभी कार्य प्रलयावस्था मे अविभक्त रूप से विद्यमान रहते हैं।और वह एक है तो उससे अनेक कार्यों की उत्पत्ति कैसे होती है ? ऐसी आशंका होने पर कहा गया है -**त्रिगुणतः समुदयात् च प्रवर्तते** - प्रधान तो तीनो गुणों की साम्यावस्था है। उस अवस्था में प्रकृति में सरूप परिणाम होता है जिसे त्रिगुणतः शब्द से कहा गया है। उसी त्रिगुणात्मक प्रकृति से तीन तरह का व्यापार होता हैं। वह व्यापार गुणक्षोभ होने पर होता है तीनो गुण मिलकर व्यक्त को उत्पन्न करते हैं। जब सृष्टि एक ही कारण से उत्पन्न है तो उसमें विभिन्नता क्यों दिखलायी पड़ती है ? ऐसी आशंका होने पर कहते हैं प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात् परिणामतः सलिलवत् भवन्ति। जैसे आकाश से गिरा हुआ एक ही जल अनेक भू-विकारों को प्राप्त करके आम, जामुन तथा नीम आदि का रस बन जाने पर मीठा कसैला तिक्त आदि अनेक प्रकार का हो जाता है उसी प्रकार प्रत्येक काल में एक ही गुण के प्रबल होने से प्राधान्य प्राप्त उस गुण का आश्रय लेकर अप्रधान गुण अनेक परिणाम उत्पन्न करते हैं। 15-16पूर्वापर सम्बन्ध- प्रधान का अस्तित्व सिद्ध किया जा चुका है ।अब पुरूष के अस्तित्व कि सिद्धि के लिए

कहा गया है -

सङ्घातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविषययादधिष्ठानात्।

पुरूषोऽस्ति भोक्तृभावात्,कैवल्यार्थं प्रवृतेश्च।।का0.17।।

अन्वय-पुरूषः अस्ति सङ्घातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविषययाद् अधिष्ठानात् भोक्तृभावात्,कैवल्यार्थ प्रवृतेश्च।

अर्थ-संघातो के दूसरो के लिए होने के कारण,त्रिगुणादि धर्मो से भिन्न धर्मो वाला होने से,(प्रकृति का) संचालक होने से,भोक्ता होने के कारण,और कैवल्य प्राप्ति के लिए प्रवृत्त होने से पुरूष का अस्तित्व सिद्ध है।

शारदाव्याख्या-पुरूषः अस्ति, पुरूष का अस्तित्व है इसके साधक हेतु है। संघात परार्थत्वात्-जो यह महदादि सुघात पदार्थ है वह पुरूष के लिए है ऐसा अनुमान किया जाता है। क्योंकि संघात पदार्थ अचेतन है अतःवे पर्यंक् की तरह दूसरे के लिए है और भी यह शरीर पंचमहाभूतो का संघात है। यह भोग्य शरीर जिसके लिए है वह पुरूष है।

त्रिगुणादिविपर्ययाद्-त्रिगुण,अविवेकि विषय सामान्य अचेतन परिणाम धर्म सावयव,परतंत्र से विपरीत धर्मो वाला होने से पुरूष का अस्तित्व सिद्ध है। व्यक्त तथा अव्यक्त दोनो ही मे ये सरूप धर्म है-त्रिगुण अविवेकि विषय,सामान्य परिणाम समान धर्म है। त्रिगुण निर्गुण का ,अविवेकी विवेकी का,और विषय अविषय का ,सामान्य असामान्य का तथा चेतन अचेतन का परिणाम अपरिणाम का निर्देश करता है। ये व्यक्त एवं अव्यक्त के विपरीत धर्म जिसमे है वह तत्व पुरूष है।

अधिष्ठानात्-संचालक होने के कारण भी पुरूष का अस्तित्व व्यक्त और अव्यकत सभी त्रिगुणात्मक होने से जड़ है वे स्वयं अपना संचालन नही कर सकते है। उसके संचालक के रूप में पुरूष की सत्ता सिद्ध होती है जैसे संसार में लंघन धावन क्रिया मे समर्थ अश्वो से युक्त रथ सारथी के द्वारा प्रेरित होता है वैसे ही यह अचेतन शरीर भी पुरूष के द्वारा प्रेरित होता है। गीता भी कहती है।..... **हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**। यही रहस्य पंचसिख ने पष्टि तन्त्र मे निर्दिष्ट किया है ।

पुरूषाधिष्ठितं प्रधानं प्रर्वतते ।

भोक्तभावात्- भोक्ता का भाव हो के कारण भी पुरूष का अस्तित्व सिद्धि होता है। व्यक्त और अव्यक्त विषय और सामान्य है।भोग्य होने के कारण विषय है मूल्यदासीवत् होने के कारण सामान्य है। इन भोग्य पदार्थो को भोक्ता की अपेक्षा होती है वह भोक्ता पुरूष है जैसे षड्रस समन्ति व्यंजन भोग्य है उसके भोक्ता के रूप मे यज्ञदत्त की सिद्धि होती है। ऐसे ही महदादि लिड्.ग स्वयं अपने भोक्ता नही है ये भोग्य है ।इनके भोक्ता के रूप मे आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है।

कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च- कैवल्य के लिए प्रवृत्त होने से भी पुरूष की अलग सत्ता सिद्ध होती है। कैवल्य का अर्थ है दुःख का आत्यन्तिकशमन।यतः शास्त्र कैवल्य का प्रतिपादन करते है और लोग इसे पाना चाहते है अतः यह सिद्ध होता है कि पुरूष है जो मुक्ति चाहता है इस कारिका मे 5 हेतुओं से आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध किया गया है। 17 पूर्वापर सम्बन्ध-पुरूष का अस्तित्व तो सिद्ध हो चुका किन्तु पुरूष एक है या अनेक ? ऐसी आशंका होने पर कहा गया है-

जननमरणकरणानां1 प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च
पुरूष बहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव2 ।। का0 18

1.जन्ममरणकरणानाम्-गौडपाद्भाष्य,माठरवृत्ति,युक्तिदीपिका।2.त्रिगुणादिविपर्ययाच्चैव-युक्तिदीपिका।

अन्वय- जननमरणकरणानां प्रतिनियमात्, अयुगपद्प्रवृत्तेश्च, त्रैगुण्ययविपर्ययात् पुरूषबहुत्वं सिद्धम् एव।

अर्थ- जन्म, मृत्यु तथा इन्द्रियों की प्रत्येक जीव के साथ व्यवस्था होने से, एक ही साथ (कार्या) मेंप्रवृत्त न होने से तथा सुख-दुःख मोह में विपर्यय होने के कारण पुरूष बहुत हैं, यह सिद्ध है।

शारदाव्याख्या-जननमरणकरणानां प्रतिनियमाद् पुरूषबहुत्वं सिद्धम- जन्म मृत्यु तथा इन्द्रियों की प्रत्येक जीव के साथ अलग-अलग व्यवस्था होने के कारण पुरूष बहुत हैं। यदि आत्मा एक होती तो एक ही जीव के जन्म से सभी जीवों का जन्म हो जाता। लेकिन हम देखते हैं कि एक ही जीव के जन्म के साथ सभी जीवों का जन्म नहीं होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि आत्मा एक नहीं अनेक

है। इसी तरह से प्रत्येक जीव की मृत्यु भी अलग-अलग होती है। ऐसा नहीं है कि यदि एक की मृत्यु हो जाय तो सभी मर जायँ। इससे भी सिद्ध होता है कि आत्मा एक नहीं अनेक है। इसी तरह से प्रत्येक जीव के साथ ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां के बीच अलग-अलग व्यवस्था देखने को मिलती है। यदि आत्मा एक ही होती तो एक जीव के अन्धे होने पर सभी जीव अन्धे हो जाते। एक ही जीव के पंगु होने पर सभी जीव पंगु हो जाते। किन्तु ऐसा लोक में दिखाई नहीं पड़ता है। अतएव यह मानना युक्ति संगत है कि जीव एक नहीं अनेक हैं। इस अंश में पुरूष बहुत्व के साधक तीन हेतु जन्म की व्यवस्था, मृत्यु की अलग-अलग व्यवस्था और इन्द्रियों की अलग-अलग व्यवस्था को बताया गया है।

अयुग्पद्प्रवृत्तेश्च- और सभी जीवों के एक ही साथ सदृश कार्यों में प्रवृत्त न होने से भी पुरूष का बहुत्व सिद्ध होता है। यदि आत्म तत्व एक होता तो सभी जीवों की क्रियाओं में सादृश्य दिखाई पड़ता, किन्तु हम देखते हैं कि सभी जीव एक ही साथ एक ही कार्य में प्रवृत्त नहीं होते हैं। कुछ जीव धर्म में प्रवृत्त होते हैं तो कुछ अधर्म में। कुछ जीव वैराग्य में प्रवृत्त होते हैं तो कुछ जीव आसक्ति में लगे होते हैं। कुछ जीव ऐश्वर्य में प्रवृत्त होते हैं तो कुछ जीव अनैश्वर्य की ओर प्रवृत्त होते हैं। इससे यह सिद्ध होता है पुरूष एक नहीं है बल्कि अनेक हैं।

त्रैगुण्यविपर्ययात् च तीनों गुणों के परिणाम सुख दुःख मोह में विपर्यय दिखाई पड़ने से पुरूष बहुत हैं। यदि आत्मा एक हो तो सभी जीवों को एक ही साथ सुखी एक ही साथ दुखी अथवा एक ही साथ मोहयुक्त होना चाहिए, किन्तु हम देखते हैं समान जन्म होने पर भी सात्विक पुरूष सुखी, राजसी दुखी तथा तामसी व्यक्ति मोहयुक्त होता। इस कारण यही मानना युक्तिसंगत है कि आत्मा एक नहीं अनेक हैं। इस प्रकार इस कारिका में पुरूष बहुत्व के साधक पाँच हेतुओं को बताया गया है। 18

पूर्वापर संबन्ध-पुरूष बहुत हैं यह सिद्ध किया जा चुका है। अब विवेकज्ञान में उपयोगी उसके धर्म कौन-कौन हैं ? ऐसी आकांक्षा होने पर कहा गया है-

तस्माच्च विपर्यासात्सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरूषस्य
कैवल्यम्याध्यस्थं द्रष्टृत्वमकतृभावस्च्।। का019

अन्वय- च तस्मात् विपर्यासात् अस्य पुरूषस्य साक्षित्वं कैवल्यं माध्यस्थं द्रष्टृत्वम् अकर्तृभावः च सिद्धम्।

अर्थ-और उन-(त्रिगुण,अविवेकि,विषय,सामान्य,अचेतन आदि) से विपरित धर्मो वाला होने से इस पुरूष का साक्षी होना,कैवल्य,मध्यस्थ होना,द्रष्टा होना और अकर्ता होना सिद्ध होता है।

शारदाव्याख्या-च तस्मात् विपर्यासात्- और उन त्रिगुण, अविवेकी, सामान्य, अचेतन, अपरिणामी आदि धर्म से विपरीत धर्म वाला पुरूष है। ग्यारहवीं कारिका में व्यक्त और अव्यक्त से विपरीत धर्म वाला पुरूष को कहा गया है-

त्रिगुणमविवेकि विषयःसामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्।।

त्रिगुण,अविवेकि,विषय,सामान्य चेतन ये व्यक्त तथा अव्यक्त के धर्म है इससे विपरित अर्थात अगुण,विवेकि,अविषय,असामान्य, चेतन,तथा अपरिणामी धर्म वाला पुरूष तत्व है व्यक्त एवं अव्यक्त से विपरित धर्मो वाला होने से पुरूष के स्वरूपगत धर्म सिद्ध होते हैं। जो धर्म विवेक ज्ञान में अत्यन्त उपयोगी हैं। विवेक ज्ञान में उपयोगी वे धर्म कौन हैं ? ऐसी आशंका होने पर कहते हैं- अस्य पुरूषस्य साक्षित्वं कैवल्यं माध्यस्थं द्रष्टृत्वं अकर्तृभावश्च सिद्धम्- अर्थात इस पुरूष में साक्षित्व,कैवल्य, माध्यस्थ, द्रष्टृत्व और अकर्तापन सिद्ध हैं। यही साक्षित्व, कैवल्य, माध्यस्थ और अकर्तापन ही पुरूष के वास्तविक स्वरूप धर्म हैं। अब इन पर अलग-अलग विचार करना अपेक्षित है।

साक्षित्वम् द्रष्टृत्वम्- पुरूष चेतन है अतः वह विषयों को देखने वाला है। विषय विषय को नहीं देख सकता है। चेतन ही विषयों का द्रष्टा होता है। द्रष्टा ही साक्षी होता है। तत्व कौमुदी के अनुसार जिसको विषय दिखाया जाय वही साक्षी है। जैसे लोक में वादी और प्रतिवादी विवाद का विषय साक्षी को दिखाते हैं उसी प्रकार प्रकृति भी अपने द्वारा किये गये कार्य को पुरूष को दिखाती है। यह साक्षित्व और द्रष्टृत्व अविषयत्व व चेतनत्व के कारण सिद्ध होते हैं। अतः चेतन होने के नाते पुरूष में साक्षित्व तथा द्रष्टृत्व दोनों सिद्ध होते हैं।

कैवल्यं माध्यस्थम्- दुःखों की निवृत्ति ही कैवल्य है। कैवल्य, मोक्ष, अपवर्ग, मुक्ति पर्याय हैं। जहाँ-जहाँ त्रिगुणत्व है वहीं सुख-दुःख और मोह है। चूँकि पुरूष निर्गुण है। अतः उसमें सुख-दुःख आज भी नहीं है। अतएव वास्तविक रूप से वह नित्य कैवल्य प्राप्त है। कर्म और कर्ता त्रिगुणात्मक ही हैं। पुरूष निर्गुण है। अतः वह कर्म और कर्ता दोनों से ही परे है। यही कारण है कि वह मध्यस्थ है। पुरूष की मध्यस्थता वैसी ही है जैसे योगी कृषि कार्य मे लगे हुए पुरूषों के बीच में रहता हुआ भी उदासीन रहता है। वैसे ही यह पुरूष तत्व गुणों के प्रवृत्त होने पर भी उदासीन रहता है। मध्यस्थता उदासीनता ही है।

अकर्तृभावः - पुरूष विवेकी है। अपरिणामी है। अतः वह अकर्ता है। गीता तो स्पष्ट रूप से कहती है- **गुणा गुणेषु वर्तन्ते इति मत्वा न सज्जते।**

पूर्वापर संबन्ध -पुरूष वस्तुतः अकर्ता है; किन्तु मै चेतनावान् हूँ और मैं जा रहा हूँ ऐसी कटु भाव की प्रतीति का कारण क्या है ? ऐसी आकांक्षा होने पर कहा गया है-

तस्मात् तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्।

गुण कर्तृत्वे च तथा कर्तेव भवत्युदासीनः।। का0 20

अन्वय- तस्मात् ततसंयोगात् अचेतनं लिङ्गं चेतनावत् इव भवति।

अर्थ- अतः दोनों (चेतन पुरूष और अचेतन प्रकृति) के संयोग से अचेतन लिङ्ग (बृद्धि आदि तत्व

चेतन की तरह से प्रतीत हो जाता है और उसी प्रकार तीनों गुणों के वास्तविक रूप से कर्ता होने पर भी उदासीन पुरूष कर्ता सा प्रतीत होता है।

शारदाव्याख्या- तस्मात्- यतः पुरूष चेतन है अतएव। तत् संयोगात् अचेतनं लिङगं चेतनावत् इव भवति- उस चेतन पुरूष के संयोग के कारण अचेतन महत् आदि लिङग (सूक्ष्म शरीर) चेतन जैसे प्रतीत होते हैं। जैसे इस संसार में घड़ा यद्यपि शीतल एवं उष्ण नहीं होता है, फिर भी उसमें उष्णता और शीतलता के संक्रान्त कर दिये जाने पर वह उष्ण और गर्म है ऐसा प्रतीत होता है। ठीक इसी प्रकार से महत् आदि लिङग अचेतन हैं फिर भी उस चेतन पुरूष के संयोग मात्र से ही चेतनावान् हो जाते हैं।

तथा च गुणकर्तृत्वे उदासीनः कर्ता इव भवति- और वैसे ही गुणों के वास्तव में कर्ता होने पर भी उदासीन पुरूष कर्ता सा हो जाता है। यद्यपि संसार में पुरूष को ही कर्ता आदि कहा जाता है, किन्तु वह वास्तव में कर्ता नहीं है। कर्ता को पाणिनि ने स्वतन्त्रः कर्ता कहकर परिभाषित किया है। स्वतन्त्र का अर्थ है- व्यापार का आश्रय होना। व्यापार क्रिया है। अतः जो क्रिया का आश्रय है वही कर्ता है। चूँकि प्रकृति त्रिगुणात्मक है। त्रिगुणात्मक होने के कारण नित्य क्रियाशील है। उसमें सरूप और विरूप परिणाम नित्य होते रहते हैं। अतः वास्तव में गुण ही कर्ता हैं। उन गुणों का कर्तृत्व उदासीन पुरूष में संक्रमित सा होने से पुरूष कर्ता समझा जाता है।किन्तु पुरूष वस्तुतः कर्ता नहीं है। पुरूष मंे कर्तापन की प्रतीति कैसे होती है ? और कैसे वह अकर्ता है ? इसे समझाने के लिए गौडपाद ने ऐसा कहा है- **यथाऽचौरश्चचौरैःसह गृहीतश्चौर इत्यवगम्यते**, एवं त्रयो गुणाः कर्तारः तै संयुक्तः पुरूषोऽकर्ताऽपि कर्ता भवति कर्तृ संयोगात्। अर्थात् जैसे चोरों के साथ पकड़ा गया अचौर भी चौर ही समझा जाता है। वैसे ही तीनों ही गुण वास्तव में कर्ता हैं। उनके साथ संयुक्त होने से अकर्ता होने पर भी पुरूष कर्ता सा हो जाता है। लिङ्ग में चेतना प्रातीतिक है और पुरूष में कर्ता पर प्रातीतिक है। प्रकृति पुरूष संयोग के कारण अचेतन प्रकृति चेतन जैसी हो जाती है और उदासीन पुरूष कर्ता सा हो जाता है। गुणकर्तृत्वेऽपि-माठरवृत्ति जयमंगला।

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न-1. द्वितीय इकाई में कुल कारिका हैं-

(a). 8 (a). 6

(c). 10 (d). 18

प्रश्न-2. त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यम् अचेतनं प्रसवधर्मि... ये समान धर्म हैं-

(a). व्यक्त और पुरूष के (b). अव्यक्त और पुरूष के

(c). व्यक्त और अव्यक्त के (d). इनमें से कोई नहीं

प्रश्न-3. प्रकाश प्रवृत्ति और नियमन् क्रमशः प्रयोजन हैं-

(a). रजस् तमस् सत्व के (b). सत्व रजस् तमस् के

(c). सत्व तमस् रजस् के (d). इनमें से कोई नहीं

प्रश्न-4. प्रीति अप्रीति और विषाद क्रमशः स्वरूप हैं-

(a). सत्व रजस् तमस् के (b). रजस् सत्व तमस् के

(c). रजस् तमस् सत्व के (d). इनमें से कोई नहीं

प्रश्न-5. अन्योन्याभिभवाश्रय.....में प्रतिपादित है-

(a). गुणों का स्वरूप (b). गुणों का प्रयोजन

(c). गुणों का व्यापार (d). इनमें से कोई नहीं

प्रश्न-6. लघु प्रकाशकम् है-

(a). सत्व गुण (a). रजो गुण

(a). तमस् गुण (a). ये सभी

प्रश्न-7. उपष्टम्भकं चलम् है-

(a). सत्वगुण (b). तमोगुण

(c). रजोगुण (d). इनमें से कोई नहीं

प्रश्न-8. गुरुवरणकम् है-

(a). रजोगुण (b). तमोगुण

(c). सत्वगुण (d). इनमें से कोई नहीं

प्रश्न-9. श्वेत रक्त व कृष्ण रंग क्रमशः माने गये हैं-

(a). तमस् रजस् सत्व के (b). रजस् सत्व तमस् के

(c). तमस् सत्व रजस् के (d). सत्व रजस् तमस् के

प्रश्न-10. भेदानां परिमाणात्.....से सिद्ध होता है-

(a). प्रकृति (b). पुरूष

(c). दोनों (d). इनमें से कोई नहीं

4.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई का सारांश निम्नवत् है- प्रकृति और व्यक्त दोनों ही त्रिगुणात्मक अविवेकी, विषय, सामान्य और अचेतन तथा परिणामी हैं। पुरूष निर्गुण, विवेकी, भोक्ता, असामान्य, चेतन तथा अपरिणामी है। प्रकृति तीनों गुणों की साम्यावस्था है तीन गुण सत्व, रजस् और तमस् हैं। सत्वगुण सुख स्वरूप, रजोगुण दुःख स्वरूप और तमोगुण मोह स्वरूप हैं। इन तीनों गुणों के प्रकाश, प्रवर्तन और नियमन् प्रयोजन हैं। एक दूसरे का अभिभव आदि करके ये दीपक की तरह से प्रयोजन सिद्ध करते हैं। प्रकृति तत्व की सिद्धि पांच हेतुओं से होती है। पुरूष तत्व की सिद्धि पांच हेतुओं से होती है। पुरूष तत्व अनेक हैं। पुरूषों में स्वरूपगत एकता किन्तु संख्यागत भेद है। साक्षित्व, मध्यस्थता, कैवल्य, द्रष्टाभाव, अकर्ताभाव ये पुरूष के स्वरूप धर्म हैं। पुरूष में कर्तृत्व आदि की भासमानता प्रकृति से संयोग होने से होती है।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

1. सत्वगुण- वह गुण जो लघु और प्रकाशक होता है।

2. रजोगुण- वह गुण जो उपष्टम्भक् और चंचल होता है।

3. तमोगुण- वह गुण जो भारी और अवरोधक होता है।

4. प्रकृति- गुणों की साम्यवास्था का नाम है।

5. प्रधान- प्रकर्षेण धीयते स्थाप्यते अत्राखिलमिति जिसमें प्रलय काल में सभी विकार अवस्थित हो जाते हैं। उसे प्रधान कहते हैं।

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. c	2.c	3. b	4. a	5.c
6. a	7.c	8. b	9. d	10. a

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सांख्यकारिका-गौडपादभाष्यसमन्विता लेखक ईश्वरकृष्ण-व्याख्याकार पं0श्री ज्वाला प्रसाद गौड,प्रकाशक-चौखम्बा वद्याभवन वाराणसी संस्करण 2004।
2. सांख्यतत्वकौमुदीप्रभा-व्याख्याकार डा0 आद्या प्रसाद मिश्र,प्रकाशक- अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद,संस्करण 1994
3. सांख्यकारिका युक्तिदीपिका सहित-व्याख्या डा0 रमाशंकर त्रिपाठी प्रकाशक कष्णदास अकादमी वाराणसी, संस्करण -1999
4. सांख्यकारिका माठरवृत्ति व जयमंगला समन्वित-संशोधक सत्कारि शर्मा वंगीय प्रकाशक चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी तृतीय संस्करण 1994
5. सांख्यदर्शनम्-सांख्यप्रवचनभाष्यसहित सम्पादक डा0 पं0 गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर
6. देवीभागवत् (मूल संस्कृत) गीता प्रेस गोरखपुर

4.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

आप इस इकाई का अध्ययन के लिए अधोलिखित पाठ्य सामग्री का उपयोग कर सकते हैं-

1. सांख्यकारिका-गौडपादभाष्यसमन्विता लेखक ईश्वरकृष्ण-व्याख्याकार पं0 श्री ज्वाला प्रसाद गौड, प्रकाशक-चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संस्करण 2004।
2. सांख्यतत्वकौमुदीप्रभा-व्याख्याकार डा0 आद्या प्रसाद मिश्र,प्रकाशक- अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद,संस्करण 1994
3. सांख्यकारिका युक्तिदीपिका सहित-व्याख्या डा0 रमाशंकर त्रिपाठी प्रकाशक कष्णदास अकादमी वाराणसी, संस्करण -1999
4. सांख्यकारिका माठरवृत्ति व जयमंगला समन्वित-संशोधक सत्कारि शर्मा वंगीय प्रकाशक चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी तृतीय संस्करण 1994
5.सांख्यदर्शनम्-सांख्यप्रवचनभाष्यसहित सम्पादक डा0 पं0 गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

- द्वितीय इकाई के कारिकाओं का सारांश लिखिए ?
- प्रकृति का स्वरूप व उसके अस्तित्व की सिद्धि कीजिए ?
- पुरूष का स्वरूप एवं उसके अस्तित्व की सिद्धि कीजिए ?

इकाई-5 सांख्यकारिका 21-30 मूलपाठ एवं अर्थ व्याख्या

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 सांख्यकारिका 21-30 मूलपाठ अर्थ एवं व्याख्या
5.4 सारांश
5.5 परिभाषिक शब्दावली
5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई मे सांख्यकारिका की 21-30 कारिकाओ का मूलपाठ अर्थ एवं व्याख्या है, 21वीं कारिका में प्रकृति पुरूष के सप्रयोजन सम्बन्ध को बताया गया है। दोनों का संयोग लंगड़े व अन्धे की तरह से है। 22वीं कारिका में प्रकृति से होने वाली 23 तत्वों की सृष्टि का क्रम प्रतिपादित है, जिसमें प्रकृति से महत, महत से अहंकार, अहंकार से 11 इन्द्रियाँ व 5 तन्मात्र, 5 तन्मात्रों से 5 महाभूतों के उत्पत्ति का संकेत हुआ है। 23वीं कारिका में बुद्धि का लक्षण और उसके 8 अंगों धर्म आदि का प्रतिपादन है। 24वीं कारिका में 1 अहंकार से 2 प्रकार की सृष्टि होने का प्रतिपादन है। यह द्विविध सृष्टि है-(1) 11 इन्द्रियों का समूह व (2) 5 तन्मात्रायें। 25वीं कारिका में वैकृत अहंकार से 11 इन्द्रियों के समूह की उत्पत्ति और भूतादि अहंकार से 5 तन्मात्राओं के समूह की उत्पत्ति का वर्णन है। राजस अहंकार वैकृत और भूतादि अहंकार का सहयोगी है इसका प्रतिपादन है। 26वीं कारिका में श्रोत्र आदि 5 ज्ञानेन्द्रियों तथा वाक् आदि 5 कर्मेन्द्रियों का नाम निर्देष है। 27वीं कारिका में उभयात्मक इन्द्रिय मन का वर्णन है और एकही अहंकार से 16 पदार्थों का समूह कैसे उत्पन्न होता है इस पर प्रकाश डाला गया है तथा ग्राह्य विषयों के भिन्न्ता से मन के अनेक रूपात्मक होने का भी गुण है। 28वीं कारिका में श्रोत्र आदि सभी ज्ञानेन्द्रियों के शब्द आदि विषयों के आलोचन मात्र व्यापार को तथा वाक् आदि 5 कर्मेन्द्रियों के वचन आदि 5 व्यापारों का वर्णन किया गया है। 29वीं कारिका में अन्तःकरणों के विशिष्ट एवं सामान्य व्यापार का वर्णन किया गया है तथा प्राण आदि 5 वायुओं के व्यापार का वर्णन किया गया है। 30वीं कारिका में अन्तःकरणों सहित प्रत्येक ज्ञानेन्द्रियों के विषयों की उपलब्धि में यौगपद्य एवं क्रम का वर्णन किया गया है। यह इकाई व्यक्त तत्वों के ऊपर पूरी तरह केन्द्रित है।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप निम्न तथ्यो से परिचित हो सकेंगें-

1. प्रकृति और पुरूष संयोग का प्रयोजन,
2. सृष्टि क्रम,
3. महत् अहंकार 11 इन्द्रियों पाँच तन्मात्राओं 5 महाभूतों का स्वरूप व व्यापार,
4. अन्तःकरण एवं उनका वाह्य करण के साथ ज्ञानोपलब्धि मे यौगपद्य एवं क्रमादि।

5.3 साख्यकारिका 21-30 मूलपाठ अर्थ एवं व्याख्या-

अवतरणिका-चतुर्थ इकाई में 20वीं कारिका मे प्रकृति एवं पुरूष के संयोग का संकेत किया गया है। प्रकृति पुरूष का संयोग किस प्रयोजन से होता है ? कैसे होता है ? उस संयोग का फल क्या है ? ऐसी आकांक्षा होने पर कहा गया है-

पुरूषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य1

पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत् कृतः सर्ग।। का0-21

अन्वय- पुरूषस्य दर्शनार्थं तथा प्रधानस्य कैवल्यार्थं पङ्ग्वन्धवद् उभयोअपिसंयोगःभवति। तत्कृतःसर्गः।

अर्थ- पुरूष द्वारा प्रधान को देखने के लिए और प्रधान द्वारा पुरूष का कैवल्य सम्पन्न कराने के लिए लंगड़े व अन्धे की तरह दोनो का संयोग होता है। उन दोनो के संयोग का फल सृष्टि है।

शारदाव्याख्या- पुरूषस्य प्रधानेन सह संयोगो दर्शनार्थम्- पुरूष का प्रधान के साथ जो संयोग है वह दर्शन के लिए होता है। प्रकृति, महद् से भूतपर्यन्त जो सृष्टि है उसे पुरूष देखता है।

प्रधानस्य पुरूषेण सह संयोगः कैवल्यार्थम्- प्रकृति का पुरूष के साथ जो संयोग है वह पुरूष का कैवल्य सम्पन्न कराना है। वाचस्पति मिश्र के अनुसार संयोग का अर्थ सन्निधि है। प्रकृति और पुरूष दोनों का संयोग पंगु और अंधे की तरह से है। पुरूष पंगु है और प्रकृति अंधी है। जिस प्रकार गमन क्रिया में असमर्थ पंगु एवं देखने में असमर्थ अन्धे अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए संयुक्त होते हैं और अपना प्रयोजन पूरा हो जाने पर दोनों अलग हो जाते हैं ठीक वैसे ही क्रिया रहित शक्ति वाले पुरूष और क्रियावती किन्तु दर्शन शक्ति रहित प्रकृति भी अपने-अपने दर्शन और कैवल्य प्रयोजन को सम्पन्न करने के लिए एक दूसरे से संयुक्त होते हैं और प्रयोजन पूरा करके दोनों वियुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार पुरूष का प्रधान से संयोग का प्रयोजन प्रकृति को विकारों सहित देखना है और प्रकृति का पुरूष से संयोग का प्रयोजन पुरूष का कैवल्य सम्पन्न करना है। प्रकृति पुरूष का कैवल्य सम्पन्न करती है इसे आगे बताया जायेगा।

तत्कृतः सर्गः ताभ्यां कृतः सर्गः –

उन दोनों के संयोग का फल सृष्टि है। जैसे स्त्री-पुरूष मिलकर सन्तान उत्पन्न करते हैं और रमण करते हैं ठीक वैसे ही प्रकृति और पुरूष के संयोग से सृष्टि उत्पन्न होती है। प्रकृति से पुरूष का संयोग होने पर शान्त रहने वाली (सदृश परिणाम वाली) प्रकृति में गुणक्षोभ होता है और वह विरूप परिणाम वाली होकर सृष्टि करती है। प्रकृति और पुरूष का संयोग होने पर सर्गावस्था होती है और दोनों का वियोग होने पर प्रलय होता है।

पूर्वापर सम्बन्ध- प्रकृति पुरूष संयोग का फल सृष्टि है। सृष्टि का क्रम क्या है ? ऐसी आकांक्षा होने पर कहा गया है-

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्.कारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः।

तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पंञ्चभूतानि।। का0-22

1- पुरूषस्य दर्शनार्थः कैवल्यार्थस्तथा प्रधानस्य- युक्तिदीपिका

अन्वय- प्रकृतेः महान्, ततःअहङ्.कारः, तस्माद् षोडशकः गणः च,तस्माद् षोडशकात् अपि पञ्चभ्यः पंञ्चभूतानि भवन्ति।

अर्थ-प्रकृति से महत् उत्पन्न होता है। उस महत् से अहंकार उत्पन्न होता है और उस अहंकार से 16 तत्वों का समूह उत्पन्न होता है । उन 16 तत्वों के समूह में से पाँच तन्मात्राओं से पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं।

शारदाव्याख्या- प्रकृतेः महान्- प्रकृति से महत् तत्व उत्पन्न होता है। प्रकृति प्रधान माया अव्यक्त ये पर्याय हैं। अन्य किसी कारण में लय को प्राप्त न होने वाली प्रकृति से महत् तत्व उत्पन्न होता है। महत् तत्व को बुद्धि, आसुरी मति, ख्याति, ज्ञान और प्रज्ञा भी कहते हैं।

ततः अहंकारः - उस महत् तत्व से अहंकार उत्पन्न होता है। भूतादि वैकृत तैजस् तथा अभिमान पर्याय हैं।

तस्मात् षोडशकः गणः च- और उस अहंकार से 16 तत्वों का समूह उत्पन्न होता है। ये 16 तत्व हैं- 5 ज्ञानेन्द्रियाँ (श्रवण, त्वक, चक्षु, जिह्वा, घ्राण), 5 कर्मेन्द्रियाँ (वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ), 1 उभयेन्द्रिय मन, 5 तन्मात्रायें (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध)।

तस्मात् षोडशकात् पंचभ्यः पंचभूतानि- उन 16 पदार्थों के समूह में से 5 तन्मात्राओं से 5 महाभूत उत्पन्न होते हैं। शब्द तन्मात्र से आकाश महाभूत होता है। इसमें शब्द नामक गुण होता है। स्पर्श तन्मात्र से वायु उत्पन्न होता है जिसमें शब्द और स्पर्श दो गुण होते हैं। रूप तन्मात्र से अग्नि उत्पन्न होता है जिसमें शब्द, स्पर्श और रूप गुण होते हैं। रस तन्मात्र से जल उत्पन्न होता है जिसमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस गुण होता है। गन्ध तन्मात्र से पृथिवी उत्पन्न होती है। जिसमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध गुण होते हैं। यह 23 तत्व हैं जिन्हें व्यक्त कहा जाता है। इस में बुद्धि, अहंकार और 5 तन्मात्रायें प्रकृति और विकृति दोनों हैं। 11 इन्द्रियाँ और 5 महाभूत केवल विकार हैं। व्यक्त प्रकृति के सरूप धर्म वाला भी है और उससे विरूप धर्म वाला भी है। जैसे- प्रकृति त्रिगुणात्मक, अविवेकी, विषय सामान्य, अचेतन और परिणामी है वैसे ही व्यक्त भी त्रिगुणात्मक अविवेकी, विषय, सामान्य, अचेतन, और परिणामी हैं। प्रकृति अहेतुमत्, नित्य, प्रवेश और निःसरणरहित व्यापक एक आश्रय, आलिग, निरवयव और स्वतन्त्र है। व्यक्त हेतुमत, अनित्य, सक्रिय, व्याप्य, अनेक, आश्रित, लिंग, सावयव और परतन्त्र हैं। प्रलय अवस्था में व्यक्त अव्यक्त में अवस्थित हो जाया करता है। **पूर्वापर सम्बन्ध**- प्रकृति से महत् तत्व उत्पन्न होता है उसका लक्षण क्या है ? और उसके धर्म कौन-कौन हैं ? ऐसी आकांक्षा होने पर कहा गया है-

अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मा ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्।

सात्त्विकमेतद् रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम्।। का0-23

अन्वय- अध्यवसायःबुद्धिः। धर्मः ज्ञानं विरागःऐश्वर्यम एतद् सात्त्विकं रूपम्।अस्मात् विपर्यस्तम् एतद् तामसं रूपम्।

अर्थ- निश्चय बुद्धि है अर्थात शरीर मे निश्चय करने वाला तत्व बुद्धि है।धर्म ज्ञान वेराग्य और ऐश्वर्य बुद्धि के सात्विक रूप हैं। इनसे विपरीत अधर्म अज्ञान राग तथा अनैश्वर्य इस बुद्धि के तामसिक रूप हैं।

शारदाव्याख्या- अध्यवसायः बुद्धिः- अध्यवस्यति इति अध्यवसायः जो निश्चय करती है वही बुद्धि है। निश्चय करने वाली तत्व को बुद्धि कहते हैं। इसे हम निम्न उदाहरण से भलीभाँति समझ सकते हैं। जब हमें पाँच सौ रूपये का नोट मिलता है तो मन संकल्प विकल्प करता है कि यह असली नोट है या नकली ? विभिन्न लक्षणों के आधार पर जो यह निश्चत होता है कि यह नोट असली ही है। ऐसा निश्चय करने वाली शक्ति ही बुद्धि है।

धर्मः ज्ञानं विरागः ऐश्वर्यं एतद् सात्विकं रूपम्- धर्म ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य ये चार इस बुद्धि के सात्विक रूप हैं। धर्म का लक्षण है जिससे अभ्युदय एवं निःश्रेयस मिले वही धर्म है। यज्ञ आदि लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति के हेतु होने से धर्म हैं और अष्टांग योगानुष्ठान से उत्पन्न धर्म निःश्रेयस का साधन है। धर्म विषयक यह मत तत्व कौमुदी का है। किन्तु गौडपाद कहते हैं- **तत्र धर्मो नामदयादानयमनियमलक्षणःतत्रयमाःनियमाःचपातंजलेऽभिहिताःअहिंसासत्याऽस्तेय्ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः, शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।**

धर्म से उर्ध्वगमन होता है। ज्ञान, अवगम, प्रकाश, भान ये सब पर्याय हैं। गीता कहती है- न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। ज्ञान से अपवर्ग होता है। ज्ञान के दो भेद हैं- वाह्य और आभ्यन्तर। अंगों सहित वेद, पुराण, न्याय मीमांसा अन्य भी अपरा विद्यायें वाह्य ज्ञान हैं। आभ्यन्तर ज्ञान प्रकृति और पुरूष का विवेक है। देवी भागवत के अनुसार ज्ञान की तीन भार्या हैं- बुद्धि, मेधा और धैर्य (9.1.114) वाह्य ज्ञान लोकानुराग को बढ़ाता है। किन्तु आन्तरिक ज्ञान मोक्ष देता है। वैराग्य के दो भेद हैं- वाह्य और आभ्यन्तर। वाह्य वैराग्य वह है जो विरक्त पुरूष की प्रत्यक्ष विषयों के प्रति वितृष्णा है। मोक्ष के इच्छुक को जो वैराग्य उत्पन्न होता है वह आन्तरिक वैराग्य होता है। तत्व ज्ञान रहित वैराग्य से प्रकृति लय होता है। देवी भागवत् के अनुसार वैराग्य की दो भार्यायें हैं- श्रद्धा और भक्ति (9.1.123)। ईश्वर भाव ही ऐश्वर्य है। ये आठ गुण हैं- अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राकाम्य, इशित्व, वशित्व और यत्रकामावसायित्व। ऐश्वर्य से इच्छाओं का हनन नहीं होता है। ये चारों धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य सात्विक बुद्धि के धर्म हैं। इस तरह बुद्धि के आठ अंग हैं। वे हैं धर्म, अधर्म, ज्ञान, अज्ञान,

राग, वैराग्य, ऐश्वर्य अनैश्वर्य।

अस्मात् विपर्यस्तं तामसं- इस सात्विक बुद्धि के विपरीत तामसिक बुद्धि के रूप हैं। ये हैं- अधर्म, अज्ञान, राग तथा अनैश्वर्य। अधर्म से अधोगति होती है, अज्ञान से बन्धन होता है, राग से संसरण होता है तथा अनैश्वर्य से इच्छाओं का हनन् होता है। 23

पूर्वापर सम्बन्ध- महत् तत्व का निरूपण किया गया अब उसके विकार अहंकार का लक्षण क्या है ? उससे होने वाली दो प्रकार की सृष्टि कौन-कौन हैं ? ऐसी आकांक्षा होने पर कहा गया है-

कारस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्तते सर्गः।

एकादशकश्च गणस्तन्मात्रप´चकश्चैव1।। का0 24

अन्वय- अभिमानः अहंकारः। तस्मात् द्विविधिः सर्ग प्रवर्धते। एकादशकः च गणः। तन्मात्र पंचकः एव च।

अर्थ- अभिमान अहंकार है। उस अहंकार से दो प्रकार की सृष्टि होती है- 11 इन्द्रियों का समूह और पाँच तन्मात्राओं का समूह।

शारदाव्याख्या- अभिमानः अहंकार- अहंकार अभिमान को कहते हैं। जो यह ग्रहण किया हुआ और विचार किया हुआ विषय है इसमें मैं ही अधिकृत हूँ। इसे करने में मैं ही समर्थ हूँ। ये विषय मेरे लिए ही हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई इसमें अधिकृत नहीं है। इस प्रकार का अभिमान अहंकार का असाधारण धर्म होने से अहंकार है।तस्मात् द्विविधः सर्गः प्रवर्तते। उस अहंकार से दो तरह की सृष्टि होती है। एकादशकः गणः - 11 इन्द्रियों का समूह ही एकादशक गण है। 11 इन्द्रियों में 5 ज्ञानेन्द्रियाँ, 5 कर्मेन्द्रियाँ और एक उभयेन्द्रिय मन है। 24

पूर्वापर सम्बन्ध- एक अहंकार से दो प्रकार की सृष्टि कैसे होती है ? ऐसी आशंका होने पर कहा गया है-

सात्विक एकादशकः प्रवर्तते वैकृतादहङ्कारात्।

भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम्।। का0 25।।

अन्वय- वैकृतात् अहंकारात एकादशकः सात्विकः प्रवर्तते। भूतादेः तन्मात्रः प्रवर्तते, सः तामसः। तैजसात्उभयं प्रवर्तते।

अर्थ- वैकृत अहंकार से 11 इन्द्रियों का सात्विक समूह उत्पन्न होता है। भूतादि अहंकार से

पंचतन्मात्राओं का समूह उत्पन्न होता है। वह भूतादि अहंकार तामसिक अहंकार है। राजसिक अहंकार से दोनों ही उत्पन्न होते हैं।

शारदाव्याख्या- वैकृतात् अहंकारात एकादशकः सात्विकः प्रवर्तते- वैकृत अहंकार से 11 इन्द्रियों

का सात्विक समूह उत्पन्न होता है। वैकृत अहंकार को सात्विक अहंकार कहते हैं। यह अहंकार की वह अवस्था है जब उसमें सत्वगुण प्रबल होकर रजस् एवं तमस् को अभिभूत किये रहता है। 11 इन्द्रियाँ सात्विक हैं। सात्विक कहने का आशय यह है कि विशुद्ध इन्द्रियाँ ही अपने-अपने आलोचन आदि

1. ऐन्द्रिय एकादशकस्य तन्मात्र पंचकस्यैव युक्तिदीपिका।

क्रियाओं में समर्थ होती हैं।

भूतादेस्तन्मात्रः प्रवर्तते स तामसः - भूतादि अहंकार से 5 तन्मात्रायें उत्पन्न होती हैं। भूतादि अहंकार को तामसिक अहंकार कहते हैं। यह अहंकार की वह अवस्था है जिसमें तमोगुण प्रबल होकर अन्य को अभिभूत किये रहता है। पाँच तन्मात्रायें हैं- शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध।

तैजसादुभयम्- तैजस अहंकार से दोनों ही उत्पन्न होते हैं। रजोगुण की प्रबलता वाले अहंकार को तैजस अहंकार कहते हैं। यह अहंकार की वह अवस्था है जिसमें रजोगुण अन्य को अभिभूत किये रहता है। इसे राजसिक अहंकार भी कहते हैं। यह सात्विक और तामसिक दोनों ही अहंकारों का सहयोगी है। 25

पूर्वापर सम्बन्ध- सात्विक अहंकार से उत्पन्न होने वाली ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ कौन-कौन हैं ? ऐसी आशंका होने पर कहते हैं-

बुद्धीन्द्रियाणि श्रोत्रत्वक्चक्षूरसननासिकाख्यानि1

वाक्पाणिपादपायूपस्थानि2 कर्मेन्द्रियाण्याहुः ।। का0 26।।

अन्वय- श्रोत्रत्वक्चक्षूरसननासिकाख्यानि बुद्धीन्द्रियाणि, वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाणि आहुः।

अर्थ-श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। वाणी, दोनों हाथ, दोनों चरण पायु तथा उपस्थ को कर्मेन्द्रियाँ कहा गया है।

शारदाव्याख्या- श्रोत्रत्वक्चक्षूरसननासिकाख्यानि बुद्धीन्द्रियाणि- श्रोत्रं च, त्वक् च, चक्षू च, रसनं

च, नासिका च ते आख्यानि इति तानि अर्थात् श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और घ्राण ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। शब्दस्पर्शरूपरसगन्धन् बुद्ध्यन्त इति बुद्धीन्द्रियाणि अर्थात् जो क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान करती हैं वे ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इन्द्रिय शब्द की व्युत्पत्ति माठर में किया है- इन् इति विषयाणां नाम, तानिनः विषयान् प्रति द्रवन्तीति इन्द्रियाणि- इन का अर्थ है विषय और उन विषयों में

जो द्रवित होती हैं उन्हें इन्द्रियाँ कहते हैं। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और घ्राण के विषय क्रमशः शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध हैं। उन्हीं में ये द्रवीभूत होती हैं अर्थात् केवल उन्हीं का आलोचन करती हैं।

वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाणि आहुः - वाक् च पाणी च पादौ च पायुः च उपस्थं च इति तानि कर्मेन्द्रियाणि कर्म कुर्वन्ति कार्यन्ति च इति कर्मेन्द्रियाणि। वाणी, दोनों हाथ, दोनों पैर, पायु और उपस्थ ये कर्मेन्द्रियाँ हैं। वचन, आहरण, विहरण, विसर्जन, आनन्द इनके कार्य हैं। वात्सायनभाष्य में

1. चक्षुःश्रोत्रघाणरसनत्वगाख्यानि- तत्वकौमुदी। कर्णत्वक्चक्षूरसननासिकाख्यानि युक्तिदीपिका

2. वाक्पाणिपादपायूपस्थान्- माठरवृत्तिः, वाक्पाणिपादपायूपस्था युक्तिदीपिका।

ज्ञानेन्द्रियों के विषय में निम्न विचार मिलता है- जिघ्रति अनेन इति घ्राणं, गन्धं गृहणाति। रस्यति अनेन इति रसनं गृहणाति। चष्टेऽनेनेति चक्षू रूपं पश्यतीति। त्वग्स्थानमिन्द्रियं त्वक् तदुपचार स्थानादिति। श्रृणोत्यनेनेति श्रोत्रं शब्दं गृहणातीति। एवं समाख्यानिर्वचनसामर्थ्याद्बोध्यं स्वविषयग्रहणलक्षणानीन्द्रियाणीति। 26

पूर्वापर सम्बन्ध- ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों का नाम निर्देश किया गया किन्तु मन का स्वरूप क्या है ? ऐसी आशंका होने पर कहा गया है-

उभयात्मकमत्र मनः संकल्पकमिन्द्रियं च साधर्म्यात्।

गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं ग्राह्यभेदाच्च1 ।। का0 27 ।।

अन्वय- अत्र मनः उभयात्मकम्, मनः संकल्पकम्, साधर्म्यात् इन्द्रियं च, गुणपरिणामविशेषानानात्वम् वाह्यभेदाः च।

अर्थ- इनमें मन उभयात्मक है। संकल्प करने वाला मन है। समान धर्म वाला होने से यह इन्द्रिय है। गुणों के विशिष्ट परिणाम के कारण जैसे विभिन्न वाह्य वस्तुयें उत्पन्न होती हैं वैसे ही वाह्य विषयों से सम्बन्धित मन भी नानात्व को प्राप्त करता है।

शारदा व्याख्या- अत्र मनः उभयात्मकम्- 11 इन्द्रियों में मन उभयेन्द्रिय है। यह ज्ञानेन्द्रियों के साथ ज्ञानेन्द्रियवत् हो जाता है और कर्मेन्द्रियों के साथ कर्मेन्द्रियवत् हो जाता है।

मनः संकल्पकं- संकल्प और विकल्प करना मन का लक्षण है। संकल्प का अर्थ युक्तिदीपिका मंे अभिलाषा, इच्छा और तृष्णा कहा गया है। यह ज्ञानेन्द्रियों के प्रवृत्ति की कामना करता है अतः यह

संकल्पक है। पंचदशी में मन को विमर्श रूप कहा गया है- मनोविमर्शरूपं स्यात्। भगवान कृष्ण ने अपने को इन्द्रियों में मन बताया है- इन्द्रियाणां मनश्चास्मि।

साधर्म्यात् इन्द्रियं च- 10 इन्द्रियों के समान धर्म वाला होने से मन भी इन्द्रिय है। जैसे- कर्मेन्द्रियाँ व ज्ञानेन्द्रियाँ सात्विक अहंकार से उत्पन्न हैं वैसे ही मन भी सात्विक अहंकार से उत्पन्न होने के कारण इन्द्रिय है। मन के महत्व को बृहदारण्यक 1.5.3 में बताया गया है- अन्यत्र मना अभूवं नादर्शमन्यत्रमना अभूवं नाश्रौषमिति मनसा ह्येव पश्यति मनसा श्रृणोति। अर्थात् मेरा मन दूसरी जगह था अतः मैंने नहीं देखा। मेरा मन दूसरी जगह था अतः मैं नहीं सुन सका। (ऐसा जो मनुष्य कहता है इससे निश्चय होता है कि) वह मन से ही देखता है और मन से ही सुनता है।

गुणपरिणामविशेषानानात्वम् ग्राह्यभेदाच्च- गुणों के परिणाम विशेष से विभिन्न वाह्य वस्तुयें उत्पन्न होती हैं। वैसे ही मन भी अन्य इन्द्रियों के संग से अनेक रूपात्मक होता है। सांख्यप्रवचन भाष्य में कहा गया है- यथा एक एव नरः सङ्गवसान्नानात्वं भजते कामिनी संङ्गात कामुको विरक्तसङगाद्विरक्तोऽन्यसङ्गाच्चान्यः एवं मनोऽपि चक्षुरादि सङ्गाचक्षुराद्येकीभावेन

1. वाह्यभेदाश्च- तत्वकौमुदी

दर्शनादिवृत्तिविशिष्टतया नानाभवति। 27

पूर्वापर सम्बन्ध- 26वीं कारिका में ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों का नाम परिगणन किया गया किन्तु इनके विशेष व्यापार क्या हैं ऐसी आशंका होने पर कहा गया है-

शब्दादिषु1 पंचानामालोचनमात्रमिष्यते वृत्तिः।

वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्च2 पंचानाम्।। का0 28 ।।

अन्वय- शब्दादिषु पंचानामालोचनमात्रम् इष्यते वृत्तिः। वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्च पं ंचानाम्।

अर्थ- शब्द आदि पांचों विषयों का केवल निर्विकल्पक ज्ञान करना ही पांचों ज्ञानेन्दियांे के व्यापार कहे जाते हैं और बोलना, लेना, विहार, उत्सर्ग तथा रमण पाँच कर्मेन्द्रियों के व्यापार कहे जाते हैं।

शारदाव्याख्या- शब्दादिषु पंचानामालोचनमात्रमिष्यते वृत्तिः -शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का निर्विकल्पक ज्ञान क्रमशः श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और घ्राण के द्वारा होता है। ज्ञानेन्द्रियाँ केवल अपने-अपने विषयों का ही ज्ञान प्राप्त करती हैं। आलोचन का अर्थ श्लोकवार्तिक में निर्विकल्पक किया गया है- अस्ति ह्यालोचनं ज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पकम्।

वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्च पं ंचानाम्- बोलना, आदान, विहार, उत्सर्ग तथा रमण करना क्रमशः

वाक्, पाणि, पाग, पायु और उपस्थ के असाधारण व्यापार हैं। प्रश्न उपनिषद में इन्द्रियों की क्रियाओं का वर्णन मिलता है- चक्षुश्च द्रष्टव्यं च, श्रोत्रं च श्रोतव्यं च,

घ्राणं च, घ्रातव्यं च, रसश्च रसयितव्यं च, त्वक् च स्पर्शयितव्यं च, वाक् च वक्तव्यं च, हस्तौ चादातव्यं, चोपस्थश्च चानन्दयितव्यं च, पायुश्च विसर्जयितव्यं च, पादौ च गन्तव्यं च, मनश्च मन्तव्यं च बुद्धिश्च वोद्धव्यं च अहंकारश्चाहङ्कर्तव्यं च 4.8। 28

पूर्वापर सम्बन्ध- बुद्धि, मन और अहंकार अन्तःकरण हैं तथा 10 इन्द्रियाँ वाह्यकरण हैं। अन्तःकरणों के विशिष्ट एवं सामान्य व्यापार क्या हैं ? ऐसी आशंका होने पर कहा गया है-

स्वलक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या।

सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पंच।। का0 29 ।।

अन्वय- त्रयस्य स्वालक्षण्यं वृत्तिः सा एषा असामान्या भवति। प्राणाद्याः पंचवायवः सामान्यकरणवृत्तिः भवन्ति।

अर्थ- तीनों (बुद्धि अहंकार और मन) के अपने लक्षण (अध्यवसाय, अभिमान और संकल्प) ही व्यापार हैं और ये ही इनके विशेष व्यापार हैं। प्राण आदि पाँच वायु इनके साधारण व्यापार हैं।

1. रूपादिषु- तत्वकौमुदी।

2. .....नन्दास्तु- माठरवृत्ति। 3. स्वालक्षण्या माठरवृत्तिः

शारदाव्याखा- त्रयस्य स्वालक्षण्यां वृत्तिः सा एषा असामान्या अर्थात् तीनों बुद्धि अहंकार एवं मन के अपने-अपने लक्षण ही इनके व्यापार हैं। बुद्धि का लक्षण अध्यवसाय है। अहंकार का लक्षण अभिमान है और मन का लक्षण संकल्प है। निश्चय मैं हूँ और संकल्प विकल्प ये तीनों बुद्धि आदि के असाधारण व्यापार हैं।

प्राणाद्याः पंचवायवः सामान्यकरणवृत्तिः भवन्ति प्राणादि पंचवायु इनके साधारण व्यापार हैं। ये पांच वायुयें है- अपान, प्राण, समान, उदान, व्यान। प्राण वायु वाक् एवं मन से उत्पन्न हुआ है। (वृह्दारण्यक 1.5.12) वेदान्त सार में पंचप्राणों पर निम्नवत् प्रकाश डाला गया है-प्राणो नाम प्राग्गमनवान्नासाग्रस्थानवर्ती।अपानोनामावाग्गमनवान्पाय्वादिस्थानवर्ती।व्यानोनामविश्वग्गमनवानखिलशरीरवर्ती।उदानो नाम् कण्ठस्थानीय उर्ध्वगमनवानुउत्क्रमणवायुः। समानो नाम शरीरगताशितपीतान्नादिसमीकरणकरः।सुवर्ण स्मति शास्त्र में इसकी व्याख्या निम्नवत् है- यथा पंजरे शुकः शुकचलनात् पंजरं चलति तथा इन्द्रियाण्यपि। प्राणवायुचलनात् त्रयोदशेन्द्रियाणि चलन्ति।ठीक ऐसी ही व्याख्या गौडपाद की भी है- प्राणोऽपि पंजरशकुनिवत् सर्वस्य चालनं करोति इति।तत्व

कौमुदी एवं विद्वततोषिणी में करणों से पाँच वायुओं के व्यापार का होना बताया गया है। जबकि गौड पाद और सुवर्णसप्ततिकार ने पांच वायुवों को तेरह करणों के व्यापार का कारण मानते हैं।गौड पाद के मत का आधार कदाचित् प्रश्नोपनिषद का निम्न प्रसंग है-

सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रम इव तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिँश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रातिष्ठन्ते। तद्यथा मक्षिका मधुकरराजनमुत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिँश्च प्रतिष्ठमाने सर्वा एवं प्रातिष्ठन्त एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति 2.4 । 29

पूर्वापर सम्बन्ध- अन्तःकरणों एवं वाह्यकरणों के व्यापार का क्रम क्या है ? ऐसी आशंका होने पर कहा गया है-

युगपच्चतुष्टयस्य तु वृत्तिः क्रमशश्च तस्य निर्दिष्टा।

दृष्टे तथाप्यदृष्टे त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्तिः।। का0 30 ।।

अन्वय- दृष्टे तस्य चतुष्टयस्य वृत्तिः तु युगपत् क्रमशः च निर्दिष्टा तथा अदृष्टे त्रयस्य वृत्तिः तत्पूर्विका भवति।

अर्थ- प्रत्यक्ष के विषय में उन चारों का व्यापार कभी एक साथ एवं कभी क्रमशः भी होता है। किन्तु अप्रत्यक्ष के सम्बन्ध में तीनों अन्तःकरणों का व्यापार एक साथ और क्रमशः प्रत्यक्ष पूर्वक होता है।

शारदाव्याख्या- दृष्टे तस्य चतुष्टयस्य वृत्तिः तु युगपत् क्रमशः च निर्दिष्टा- प्रत्यक्ष के विषयभूत पदार्थ के विषय में उन चारों (बुद्धि, अहंकार, मन का एक-एक इन्द्रिय से सम्बन्ध होने से चतुष्टय बनता है।) का व्यापार एक साथ और क्रमशः होता है। पाँच चतुष्टय हैं- बुद्धिअहंकारमनश्रोत्रचतुष्टय, बुद्धिअहंकारमनत्वकचतुष्टय्, बुद्धिअहंकारमनजिह्वाचतुष्टय, बुद्धिअहंकारमनघ्राणचतुष्टय। इन पाँचों चतुष्टयों से क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध का ज्ञान कभी-कभी क्रमशः भी होता है और कभी-कभी एक साथ भी होता है। युगपत ज्ञान भी वस्तुत क्रम पूर्वक ही होता है किन्तु उसमें नगण्य समय लगने से युगपद कहा जाता है। युगपद ज्ञान का उदाहरण है- सर्प को देखकर संकल्प विकल्प अहंकार और वहाँ से पलायन का निश्चय चारों का एक साथ ही हो जाना युगपद ज्ञान है।

तथा अदृष्टेऽपि त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्तिः - अदृष्ट अर्थात् भूतकालिका एवं भविष्यतकालिक विषयों का ज्ञान प्रत्यक्ष पूर्वक ही होता है। प्रत्यक्ष की गयी वस्तु का ही बाद में अनुमान तथा स्मरण होता है। कभी भी न देखी गयी वस्तु का न तो अनुमान ही होता है और न प्रत्यक्ष ही। मन अहंकार तथा बुद्धि पहले प्रत्यक्ष की गयी वस्तु के विषय में ही अपना व्यापार करते हैं। बुद्धि, अहंकार और मन का भूतकाल और भविष्यतकालीन पदार्थ से सम्बन्धित ज्ञान प्रत्यक्ष पूर्वक और क्रमशः होता है जब कि वर्तमान काल के विषय में युगपद और क्रमशः दोनों होता है। 30

अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न-1. पुरूष का प्रधान के साथ संयोग का प्रयोजन प्रकृति को विकारों सहित देखना है ....यह कथन है-

(a). असत्य (b). सत्य

(c). दोनों (d). इनमें से कोई नहीं।

प्रश्न-2. प्रकृति का पुरूष के साथ संयोग का प्रयोजन है-

(a). प्रकृति को देखना (a). पुरूष का कैवल्य सम्पन्न कराना

(c). दोनों (d). इनमें से कोई नहीं।

प्रश्न-3. प्रकृति से कुल कितने तत्व उत्पन्न होते हैं-

(a). 23 (b). 22

(c). 20 (d). 24

प्रश्न-4. आठ अंग हैं-

(a). अहंकार के (b). बुद्धि के

(c). मन के (d). अव्यक्त के

प्रश्न-5. सात्विक अहंकार से उत्पन्न होता है-

(a). मन (b). पांच ज्ञानेन्द्रियां

(c). पांच कर्मेन्द्रियां (d). ये सभी

प्रश्न-6. धर्म ज्ञान, ऐश्वर्य, वैराग्य लक्षण हैं-

(a). सात्विक बुद्धि के (b). राजसिक बुद्धि के

(c). तामसिक बुद्धि के (d). इनमें से कोई नहीं

प्रश्न-7. बुद्धि मेधा और धैर्य किसकी भार्या हैं-

(a). ज्ञान (b). अज्ञान

(c). धर्म (d). अधर्म

प्रश्न-8. वैराग्य की भार्या हैं-

(a). श्रद्धा (b). भक्ति

(c). दोनों (d). इनमें से कोई नहीं

प्रश्न-9. अहंकार से सृष्टि होती है-

(a). दो प्रकार के (b). तीन प्रकार के

(c). चार प्रकार के (d). इनमें से कोई नहीं

प्रश्न-10. तामसिक अहंकार से उत्पन्न हैं-

(a). मन (b). पंचमहाभूत

(c). पंचतन् मात्रायें (d). इनमें से कोई नहीं

प्रश्न-11. आकाश महाभूत उत्पन्न होता है-

(a). गन्ध तन्मात्र से (a). शब्द तन्मात्र से

(c). रूप तन्मात्र से (d). इनमें से कोई नहीं

प्रश्न-12. संकल्प विकल्प करने वाला है-

(a). मन (b). बुद्धि

(c). अहंकार (d). ये सभी

प्रश्न-13. श्रवण इन्द्रिय आलोचन करती है-

; (a). गन्ध का (b). रस का

(c). रूप का (d). शब्द का

प्रश्न-14. स्वालक्षण्यावृत्ति वाले हैं-

(a). मन (b). अहंकार

(c). बुद्धि (d). ये तीनों

प्रश्न-15. किस इकाई में कुल कारिकायें हैं-

(a). 6 (b). 8

(c). 10 (d). 12

प्रश्न-16. अभिमान लक्षण है-

(a). बुद्धि का (b). मन का

(c). दोनों का (d). इनमें से कोई नहीं

5.4 सारांश-

प्रस्तुत इकाई में कुल 10 कारिकायें हैं। प्रकृति और पुरूष के मिलन से ही सृष्टि होती है। यह सांख्य की मान्यता है। सांख्य दर्शन ने सृष्टि की व्याख्या चेतन व अचेतन चेतन के संयोग से माना है। पुरूष का प्रकृति से संयोग का प्रयोजन प्रकृति को उसके विकारों के सहित देखना है और प्रकृति का पुरूष से संयोग का प्रयोजन पुरूष का कैवल्य सम्पन्न करना है। दोनों का संयोग लंगड़े व अन्धे की तरह से होता है। चेतन पुरूष के संयोग से प्रकृति में गुण क्षोभ होता है और वह विरूप परिणाम वाली होकर सृष्टि करती है। प्रकृति से महत्, महत् से अहंकार, अहंकार से द्विविध सृष्टि 1. 11 इन्द्रियों का समूह, व 2. 5 तन्मात्रायें उत्पन्न होती हैं। 5 तन्मात्राओं से 5 महाभूत उत्पन्न होते हैं। महत् तत्व को बुद्धि भी कहते हैं। महत् तत्व विश्व का बीज है। बुद्धि का धर्म निश्चय करना है। इसके सात्विक और तामसिक दो स्वरूप हैं। सात्विक स्वरूप के चार अंग हैं- धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य और तामसिक बुद्धि के चार अंग हैं- अधर्म, अज्ञान, राग, अनैश्वर्य। मैं ज्ञानवान हूँ ऐसा अभिमान करने वाला तत्व अहंकार है। इसके सात्विक राजसिक व तामसिक 3 स्वरूप हैं। सात्विक अहंकार से 11 इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं और तामसिक अहंकार से 5 तन्मात्रायें उत्पन्न होती हैं। मन 5 ज्ञानेन्द्रियां, 5 कर्मेन्द्रियां ये 11 इन्द्रियां हैं। मन विमर्श रूप है। यह उभयेन्द्रिय है। ग्राह्य विषयों के सम्पर्क से यह अनेक रूपतामक होता है। श्रोत्र त्वक नेत्र जिह्वा और नासिका ये ज्ञानेन्द्रियां हैं। ये क्रमशः शब्द मात्र, स्पर्श मात्र रूप मात्र और गन्ध मात्र का आलोचन करती हैं। वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ ये कर्मेन्द्रियां हैं। बोलना, लेना विहार करना, विसर्जन करना और रमण करना इनके व्यापार हैं। अन्तःकरणों का

उनका अपना व्यापार असाधारण व्यापार है। प्राणादि 5 वायु इनके साधारण व्यापार हैं। पंच प्राण हैं- प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान। ज्ञानोत्पत्ति में चतुष्टयों का व्यापार युगपद और क्रमशः हुआ करता है।

5.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.b	2.b	3.a	4.b	5.d
6.a	7.a	8.c	9.a	10.c
11.b	12.a	13.c	14.d	15.c
16.d				

5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1.सांख्यकारिका-गौडपादभाष्यसमन्विता लेखक ईश्वरकृष्ण-व्याख्याकार पं0श्री ज्वाला प्रसाद गौड, प्रकाशक-चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संस्करण 2004।

2. सांख्यतत्वकौमुदीप्रभा-व्याख्याकार डा0 आद्या प्रसाद मिश्र,प्रकाशक- अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद,संस्करण 1994

3. सांख्यकारिका युक्तिदीपिका सहित-व्याख्या डा0 रमाशंकर त्रिपाठी प्रकाशक कृष्णदास अकादमी वाराणसी,संस्करण -1999

4. सांख्यकारिका माठरवृत्ति व जयमंगला समन्वित-संशोधक सत्कारि शर्मा वंगीय प्रकाशक चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी तृतीय संस्करण 1994

5.सांख्यदर्शनम्-सांख्यप्रवचनभाष्यसहित सम्पादक डा0 पं0 गजानन शास्त्री मुसलगाँवक

5.7 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

आप इस इकाई का अध्ययन के लिए अधोलिखित पाठ्य सामग्री का उपयोग कर सकते है-

1.सांख्यकारिका-गौडपादभाष्यसमन्विता लेखक ईश्वरकृष्ण-व्याख्याकार पं0 श्री ज्वाला प्रसाद गौड, प्रकाशक-चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संस्करण 2004।

2.सांख्यतत्वकौमुदीप्रभा-व्याख्याकार डा0 आद्या प्रसाद मिश्र,प्रकाशक- अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद,संस्करण 1994

3.सांख्यकारिका युक्तिदीपिका सहित-व्याख्या डा0 रमाशंकर त्रिपाठी प्रकाशक कष्णदास अकादमी वाराणसी,संस्करण -1999

4. सांख्यकारिका माठरवृत्ति व जयमंगला समन्वित-संशोधक सत्कारि शर्मा वंगीय प्रकाशक चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी तृतीय संस्करण 1994

5. सांख्यदर्शनम्-सांख्यप्रवचनभाष्यसहित सम्पादक डा0 पं0 गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. प्रकृति और पुरूष का सम्बन्ध व सृष्टिक्रम बताइये ?

प्रश्न 2. व्यक्त तत्वों को विस्तार पूर्वक समझाइये।

प्रथम सेमेस्टर /SEMESTER-I

खण्ड 3- वेदान्तसार

इकाई 1. वेदान्त दर्शन का ऐतिहासिक स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 वेदान्त दर्शन की ऐतिहासिकता
1.3.1 अद्वैत वेदांत
1.3.2 विशिष्टाद्वैत वेदांत
1.3.3 द्वैत वैदांत
1.3.4 द्वैताद्वैत वेदांत
1.3.5 शुद्धाद्वैत वेदांत
1.3.6 अचिन्त्य भेदाभेद वेदांत
1.5 सारांश
1.6 पारिभाषिक शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1प्रस्तावना

वेदान्तसार नामक ग्रन्थ के विस्तृत अध्ययन हेतु निर्मित इस खण्ड की यह प्रथम इकाई है। वेदान्तसार नामक ग्रन्थ के गूढ अध्ययन हेतु इस इकाई में आप वेदान्त में वर्णित सिद्धान्तों को प्रस्तुत करने वाले आचार्यों का परिचय प्राप्त करते हुए सम्पूर्ण वेदान्त दर्शन की ऐतिहासिकता को जानेगें।

गुरू एवं आचार्य के रूप में विश्रुत होंने के लिए उपनिषदों पर जिन आचार्यों नें टीका ग्रन्थ अथवा पुस्तकें लिखकर वेदान्त को अग्रसरित होने में योगदान दिया वे आज भी भारतीय मनीषा में स्मरणीय हैं। वैसे तो भारतीय दर्शन की परम्परा लगभग पॉच हजार वर्ष से कम पुरानी नहीं है। वेदान्त दर्शन के प्रारम्भिक आचार्यों से लेकर आज तक के सभी प्रणेताओं के संक्षिप्त परिचय इस इकाई के अन्तर्गत आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप वेदान्त दर्शन की सम्पूर्ण ऐतिहासिकता का संक्षेप किन्तु विस्तृत अवलोकन करते हुए इस दर्शन की अति प्राचीनता और चिरनवीनता का ज्ञान कराएंगे

1.2 उद्देश्य

वेदान्त दर्शन की पृष्ठभूमि से सम्बन्धित इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेंगे कि –

गौडपादाचार्य के बारे में समझा सकेगें।

- वेदान्त दर्शन की ऐतिहासिकता को बता सकेगें।
- आदि शंकराचार्य का परिचय दे सकेगे।
- द्वैत वेदान्त के बारे में जान सकेगें।
- मध्ववेदान्त का परिचय दे सकेगें।
- चैतन्य महाप्रभु के बारे में बता सकेगें।

1.3 वेदान्त दर्शन की ऐतिहासिकता

वेदान्त ज्ञानयोग की एक शाखा है जो व्यक्ति को ज्ञान प्राप्ति की दिशा में उत्प्रेरित करता है। इसका मुख्य स्त्रोत उपनिषद है जो वेद ग्रंथो और अरण्यक ग्रंथों का सार समझे जाते हैं। वेदान्त की तीन शाखाएँ जो सबसे ज्यादा जानी जाती हैं वे हैं: अद्वैत वेदांत, विशिष्ट अद्वैत और द्वैत। आदि

शंकराचार्य, रामानुज और श्री मध्वाचार्य जिनको क्रमश: इन तीनो शाखाओं का प्रवर्तक माना जाता है, इनके अलावा भी ज्ञानयोग की अन्य शाखाएँ हैं। ये शाखाएँ अपने प्रवर्तकों के नाम से जानी जाती हैं जिनमें भास्कर, वल्लभ, चैतन्य, निम्बारक, वाचस्पति मिश्र, सुरेश्वर, और विज्ञान भिक्षु. आधुनिक काल में जो प्रमुख वेदांती हुये हैं उनमें रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, अरविंद घोष, स्वामी शिवानंद और रमण महर्षि उल्लेखनीय हैं. ये आधुनिक विचारक अद्वैत वेदांत शाखा का प्रतिनिधित्व करते हैं। दूसरे वेदांतो के प्रवर्तकों ने भी अपने विचारों को भारत में भलिभाँति प्रचारित किया है परन्तु भारत के बाहर उन्हें बहुत कम जाना जाता है।

ऐतिहासिक रुप से किसी गुरु के लिये अचार्य बनने / समझे जाने के लिये वेदांत की पुस्तकों पर टीकाएँ या भाष्य लिखने पड़ते हैं। इन पुस्तकों में तीन महत्वपूर्ण पुस्तक शामिल हैं उपनिषद, भगवद गीता, और ब्रह्मसूत्र. तदनुसार आदि शंकराचार्य, रामानुज और मध्वाचार्य तीनों ने इन तीन महत्वपूर्ण पुस्तकों पर विशिष्ट रचनायें दी हैं।

आदिम मनुष्य प्रकृति के रूपों को देखकर आश्चर्य करता है, उनकी पूजा करने का विधान बनाता है। कर्मकांड का इस प्रकार विकास हो जाने पर सुस्थिर चित्त से मनुष्य उनके पीछे कार्य कर रहे नियमों का चिंतन करने लगता है और यहीं उसकी जिज्ञासा प्रारंभ होती है। स्व का पर के साथ संबंध होने पर स्व और पर के वास्तविक स्वरूप तथा उनके पारस्परिक संबंध के बारे में स्वाभाविक जिज्ञासा उठती है। यदि स्व जीव है तो पर को जगत् कहा जा सकता है। स्व और पर में विभिन्नता प्रत्यक्षत: दृष्टिगोचर होती है पर प्रत्यक्ष से आगे विचार करने पर मनुष्य स्व-पर में समान रूप से रहनेवाले तत्व विशेष (ब्रह्म) की कल्पना करता है। उपनिषदों में कर्मकांड को 'अवर' कहकर ज्ञान को इसलिए महत्व दिया गया कि ज्ञान स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाता है। ब्रह्म, जीव और जगत् का ज्ञान पाना उपनिषदों की मूल शिक्षा है। कालांतर में जिन ग्रंथों में उपनिषद् की परंपरा का पालन करते हुए इन विषयों पर विचार किया गया, उनको भी 'वेदांत' कहा जाने लगा। भगवद्गीता तथा ब्रह्मसूत्र उपनिषदों के साथ मिलकर वेदांत की 'प्रस्थानत्रयी' कहलाते हैं।

तीनों ग्रंथों में प्रगट विचारों का कई तरह से व्याख्यान किया जा सकता है। इसी कारण से ब्रह्म, जीव तथा जगत् के संबंध में अनेक मत उपस्थित किए गए और इस तरह वेदांत के अनेक रूपो का निर्माण हुआ।

वेदान्त दर्शन की आचार्य परम्परा वस्तुत: अत्यन्त प्राचीन है बादरायणकृत वेदान्त सूत्रों में आचार्य बादरायण ने विभिन्न अन्य समकालीन आचार्यो के मत का संग्रह किया है वे विभिन्न मत कहीं तो आचार्य बादरायण के अपने मतों के समर्थक हैं और कही उनसे विरोध दर्शाते है । एवं विध कुछवेदान्ताचार्यो के नाम ज्ञात होते हैं तथा उनके मतो का भी संकेत मिलता है।

गौडपाद - यद्यपि अद्वेतवेदान्त की गुरू परम्परा अतिप्राचीन है, किन्तु गोडपाद आचार्य के समय से वह परम्परा ऐतिहासिक प्रामाणिकता को प्राप्त कर लेती है।

वास्तव मे अद्वैतवाद के प्रथम प्रवर्तक आचार्य गोडपाद ही सिद्व होते है। सर्वप्रथम अद्वैतवेदान्त के सिद्वान्तो का क्रमबद्व रूप में प्रतिपादन इन्ही के द्वारा हुआ है। विद्वानों का विचार है कि गौडपाद आचार्य का अद्वैतवाद बौद्ववाद पर आधारित है। डॉ0 दास गुप्ता का तो यह विश्वास है कि आचार्य गौडपाद सम्भवत: बौद्व ही थे , किन्तु डॉ0 शर्मा का कथन है कि गौडपादाचार्य के मायावाद का मुख्य प्रयोजन बौद्व-दर्शन का समर्थन न होकर उपनिषद् विचारधारा का स्पष्टीकरण है, इसलिए इनके मायावाद को बौद्व शून्यवाद अथवा विज्ञानवाद पर आधारित न मानकर उपनिषद् दर्शन पर ही प्रतिष्ठित मानना चाहिए।

गौडपाद आचार्य की प्रसिद्व कृति माण्डूक्योपनिषद् पर आधारित माडूक्यकारिका है। यह ग्रन्थ चार प्रकरणों में विभक्त है- 1- आगम प्रकरण 2- नैतथ्य प्रकरण 3- अद्वैत प्रकरण और 4- अतीत शान्ति प्रकरण।

माण्डूकय कारिका से गौडपाद के दार्शनिक विचारों का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। वह अनादि माया को ही द्वैत कारण मानते है। (सृष्टी के सम्बन्ध में उनका मत है कि वह अनुभाविक रूप से ही सत्य है यथार्थ सत्ता नहीं, वह स्वप्न भ्रन्ति है और समस्त भेद प्रतीतिरूप है) मायिक जगत् के लिए उन्होंने स्वप्न , मरीचिका जल एवं गांधर्व नगर आदि के दृष्टान्त दिये हैं। यथार्थ सत्ता एकमा आत्मा हैं। यह सदैव अजन्मा , जागृत , स्वप्नरहित स्वप्रकाश है।

श्रीयुत बलदेव उपाध्याय माण्डूक्य कारिका के अतिरिक्त उत्तरगीता का भाष्य भी इन्हीं की कृति बताते हैं। इनका काल अधिकांशत: आठवीं शताब्दी का प्रारम्भ अथवा सातवीं शताब्दी का अन्त निश्चित किया जाता है।

गोविन्दपाद – गौडपादाचार्य के शिष्य तथा आचार्य शंकर के गुरू थे, किन्तु इनके विषय में अधिक प्रामाणिकता सामग्री उपलब्ध नहीं हो सकी है। माधवाचार्य ने सवदर्शनसंग्रह में रसेश्वर दर्शन के अर्न्तगत रसहृदय नाम से कुछ श्लोक उद्धृत किये है। श्रीयुत बलदेव उपाध्याय वहॉ उल्लिखत इस ग्रन्थ को गोविन्द की कृति बताते है।

आचार्य शंकर – आचार्य शंकर बौद्विक जगत की वह महिमामय विभूति हैं,जिन्हें पाकर भारत भूमि धन्य हो गई। वे दार्शनिक नाभमण्डल का ऐसा तेजोमय सूर्य सिद्व हुए जिसके प्रकाश को देश , काल की सीमायें अवरूद्व न कर सकीं। तभी तो वह विश्वव्यापी ख्याती अर्जित कर सके। क्या पौर्वात्य , क्या पाश्चात्य सभी विद्वान उनके ज्ञान की महानता के समक्ष नामित हो गये। डॉ0 घाटे ने उन्हें अद्वैतवाद का सर्वोच्च माना है और टोमलिन का कथन है- शंकर उन सअ दार्शनिकों में महान हैं , जिन्हें आज पश्चिम में प्राप्त प्रतिष्ठा की अपेक्षा अधिकतर प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए। भाष्य स्तोत्र और प्रकरण इनकी तीन प्रकार की कृतियॉ हैं।

आचार्य शंकर का सिद्वान्त अद्वैतवाद के नाम से प्रसिद्व है । सत्ताओं के पृथक् महत्व को अस्वीकार करना ही अद्वैतवाद है। आचार्य के अद्वैत का मूल- मन्त्र है, **" ब्रहमा सत्यं जगन्मिथ्या ।"** ब्रहमा के अतिरिक्त अन्य समस्त वस्तुओं को मिथ्या की सिद्वि हेतु उन्होंने मायावाद की स्थापना की । विद्वानों का कथन है कि शंकर का मायावाद गौड.पादाचार्य के मायावाद से प्रभावित है । आचार्य शंकर ने माया शब्द का प्रयोग अविद्या, अज्ञान, भ्रम, मृगतृष्णिका आदि अर्थो में किया है। मायावाद शंकर का वह अमोघ मन्त्र है जिसके द्वारा ब्रहमा और जगत् के सम्बन्ध की पहेली को सुलझा सके है। जगत् ब्रहमा का विवर्तमात्र है जैसे रज्जू में सर्प ।

आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध मे आचार्य का मत है कि वह तो स्वत: सिद्व है । अपने अस्तित्व का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को सदैव रहता है। आत्मा शंकर का दृष्टिकोण निराशावादी अथवा पलायनवादी नहीं है। मोक्षएक व्यवहारिक सत्य है। इसके लिए उन्होंने ज्ञान, कर्म और उपासना आदि सभी की उपादेयता स्वीकार की है। यही कारण है कि शंकर के सिद्वान्त केवल ज्ञानियों और योगिता को ही नही वरन् साधारण मानव को भी प्रभावित करते है।

आचार्य शंकर ने अद्वैत वेदान्त की जिस धारा को गति दी उसे और अधिक प्रगति की ओर उनके योग्य शिष्य प्रशिष्य ले गये । आचार्य शंकर से आगे चलने वाली वेदान्ताचार्यो की पंक्ति अत्यंन्त दीर्घ है। उनमें से कुछ ने वेदान्त साहित्य को अत्यन्त समृद्व किया।

वाचस्पति मिश्र- आचार्य शंकर के समान ही वाचस्पति मिश्र भी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा वाले आचार्य थे । इन्होंने प्राय: आचार्य थे । इन्होंने प्राय: सभी दर्शनों के साहित्य को समृद्व किया । वेदान्त के व्रहमशंकर शांकरभाष्य पर भामती टीका इनके वेदान्तसार की परिचायिका है । इनका काल नौवीं शताब्दी निश्चित है

विद्यारण्य - विद्यारण्य मुनि का नाम 'माधव ' बताया जाता है। अपने जीवन के प्रारम्भ में यह माधव नाम मन्त्री पद पर कार्य करते रहे। तदुपरान्त सन्यास की दीक्षा लेकर विद्यारण्य नाम से श्रृंगेरी मठ के अध्यक्ष बने। इनका स्थितिकाल 1296 ई0 से 1386 ई0 तक निश्चित किया जाता है। जीवन्मुक्ति , विवेक तथा पञ्चदशी विद्यारण्य तथा भारती तीर्थ की सम्मिलित रचना बताई जाती है।

आनन्दगिरी – आनन्दगिरी शंकर के प्रधान शिष्यों में से थे। शंकरभाष्य पर न्यायनिर्णय नामक टीका इनका प्रसिद्व ग्रन्थ है।

मधुसूदन सरस्वती – यह सोलहवीं शताब्दी के प्रसिद्व वेदान्ती हैं। इनकी प्रसिद्व कृति न्यायामृत की समीक्षा रूप में अद्वैत सिद्वी है। यह अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण है। संक्षेपशारीरिकटीका , गूढार्थदीपिका, सिद्वान्तबिन्दु , वेदान्तकल्पलतिका इत्यादि अन्य कृतिया हैं।

धर्मराजाध्वरीन्द्र - 16 वीं शताब्दी के अन्य आचार्य हैं – धर्मराजाध्वरीनद्र। इनकी उंत्कृष्ट प्रतिभा और विद्वता का परिचायक ग्रन्थ हैं - ' वेदान्तपरिभाषा '। इसका अध्ययन वेदान्त के प्रमाण सम्बन्धी

ज्ञान के लिए आवश्यक तथा उपयोगी है। बेदान्त –परिभाषा पर इनके पुत्ररचित ' शिलामणि ' नामक व्याख्या भी उपलब्ध है।

सदानन्द – सदानन्द योगीन्द्र भी 16वीं शताब्दी के वेदान्ताचार्य हैं इनकी ख्यातिप्राप्त कृति वेदान्तसार है। यह सम्पूर्ण वेदान्त –सिद्वान्त का परिचायक ग्रन्थ वेदान्त का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह ग्रन्थ अत्यधिक उपादेय है। वेदान्तसार पर नृसिंह सरस्वती ने सुबोधिनी ,आपदेव ने बालबोधिनी तथा स्वामी रामतीर्थ ने विद्वन्मनोरन्जन टींकायें रचीं।
इन महाविभूतियों के अतिरिक्त अद्वैव वेदान्त साहित्य को अन्य अनेक विद्वानों ने भी समृद्व किया। इनमें श्रीहर्ष , सर्वज्ञात्मुनि , अत्पदीक्षित , प्रकाशात्मा , ब्रहमानन्द सरस्वती , नारायणतीर्थ , सदानन्द यति प्रभृति का नाम विशेषोल्लेखनीय है।

1.3.1 अद्वैत वेदांत

(300 ई.) तथा उनके अनुवर्ती आदि शंकराचार्य (700 ई.) ब्रह्म को प्रधान मानकर जीव और जगत् को उससे अभिन्न मानते हैं। उनके अनुसार तत्व को उत्पत्ति और विनाश से रहित होना चाहिए। नाशवान् जगत तत्वशून्य है, जीव भी जैसा दिखाई देता है वैसा तत्वत: नहीं है। जाग्रत और स्वप्नावस्थाओं में जीव जगत् में रहता है परंतु सुषुप्ति में जीव प्रपंच ज्ञानशून्य चेतनावस्था में रहता है। इससे सिद्ध होता है कि जीव का शुद्ध रूप सुषुप्ति जैसा होना चाहिए। सुषुप्ति अवस्था अनित्य है अत: इससे परे तुरीयावस्था को जीव का शुद्ध रूप माना जाता है। इस अवस्था में नश्वर जगत् से कोई संबंध नहीं होता और जीव को पुन: नश्वर जगत् में प्रवेश भी नहीं करना पड़ता। यह तुरीयावस्था अभ्यास से प्राप्त होती है। ब्रह्म-जीव-जगत् में अभेद का ज्ञान उत्पन्न होने पर जगत् जीव में तथा जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है। तीनों में वास्तविक अभेद होने पर भी अज्ञान के कारण जीव जगत् को अपने से पृथक् समझता है। परंतु स्वप्नसंसार की तरह जाग्रत संसार भी जीव की कल्पना है। भेद इतना ही है कि स्वप्न व्यक्तिगत कल्पना का परिणाम है जबकि जाग्रत अनुभव-समष्टि-गत महाकल्पना का। स्वप्नजगत् का ज्ञान होने पर दोनों में मिथ्यात्व सिद्ध है। परंतु बौद्धों की तरह वेदांत में जीव को जगत् का अंग होने के कारण मिथ्या नहीं माना जाता। मिथ्यात्व का अनुभव करनेवाला जीव परम सत्य है, उसे मिथ्या मानने पर सभी ज्ञान को मिथ्या मानना होगा। परंतु जिस रूप में जीव संसार में व्यवहार करता है उसका वह रूप अवश्य मिथ्या है। जीव की तुरीयावस्था भेदज्ञान शून्य शुद्धावस्था है। ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान का संबंध मिथ्या संबंध है। इनसे परे होकर जीव अपनी शुद्ध चेतनावस्था को प्राप्त होता है। इस अवस्था में भेद का लेश भी नहीं है क्योंकि भेद द्वैत में होता है। इसी अद्वैत अवस्था को ब्रह्म कहते हैं। तत्व असीम होता है, यदि दूसरा तत्व भी हो तो पहले तत्व की सीमा हो जाएगी और सीमित हो जाने से वह तत्व बुद्धिगम्य होगा जिसमें ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान का भेद प्रतिभासित होने लगेगा। अनुभव साक्षी है कि सभी ज्ञेय वस्तुएँ नश्वर हैं। अत: यदि हम तत्व को अनश्वर मानते हैं तो हमें उसे

अद्वय, अज्ञेय, शुद्ध चैतन्य मानना ही होगा। ऐसे तत्व को मानकर जगत् की अनुभूयमान स्थिति का हमें विवर्तवाद के सहार व्याख्यान करना होगा। रस्सी में प्रतिभासित होनेवाले सर्प की तरह यह जगत् न तो सत् है, असत् है। सत् होता तो इसका कभी नाशश् न होता, असत् होता तो सुख, दु:ख का अनुभव न होता। अत: सत् असत् से विलक्षण अनिवर्चनीय अवस्था ही वास्तविक अवस्था हो सकती है । उपनिषदों में नेति कहकर इसी अज्ञातावस्था का प्रतिपादन किया गया है। अज्ञान भाव रूप है क्योंकि इससे वस्तु के अस्तित्व की उपलब्धि होती है, यह अभाव रूप है, क्योंकि इसका वास्तविक रूप कुछ भी नहीं है। इसी अज्ञान को जगत् का कारण माना जाता है । अज्ञान का ब्रह्म के साथ क्या संबंध है, इसका सही उत्तर कठिन है परंतु ब्रह्म अपने शुद्ध निर्गुण रूप में अज्ञान विरहित है, किसी तरह वह भावाभाव विलक्षण अज्ञान से आवृत्त होकर सगुण ईश्वर कहलाने लगता है और इस तरह सृष्टिक्रम चालू हो जाता है । ईश्वर को अपने शुद्ध रूप का ज्ञान होता है परंतु जीव को अपने ब्रह्मरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिए साधना के द्वारा ब्रह्मीभूत होना पड़ता है । गुरु के मुख से 'तत्वमसि' का उपदेश सुनकर जीव 'अहं ब्रह्मास्मि' का अनुभव करता है । उस अवस्था में संपूर्ण जगत् को आत्ममय तथा अपने में सम्पूर्ण जगत् को देखता है क्योंकि उस समय उसके (ब्रह्म) के अतिरिक्त कोई तत्व नहीं होता। इसी अवस्था को तुरीयावस्था या मोक्ष कहते हैं।

1.3.2 विशिष्टाद्वैत वेदांत

रामानुजाचार्य ने (11वीं शताब्दी) शंकर मत के विपरीत यह कहा कि ईश्वर (ब्रह्म) स्वतंत्र तत्व है परंतु जीव भी सत्य है, मिथ्या नहीं। ये जीव ईश्वर के साथ संबद्ध हैं। उनका यह संबंध भी अज्ञान के कारण नहीं है, वह वास्तविक है। मोक्ष होने पर भी जीव की स्वतंत्र सत्ता रहती है। भौतिक जगत् और जीव अलग अलग रूप से सत्य हैं परंतु ईश्वर की सत्यता इनकी सत्यता से विलक्षण है। ब्रह्म पूर्ण है, जगत् जड़ है, जीव अज्ञान और दु:ख से घिरा है। ये तीनों मिलकर एकाकार हो जाते हैं क्योंकि जगत् और जीव ब्रह्म के शरीर हैं और ब्रह्म इनकी आत्मा तथा नियंता है। ब्रह्म से पृथक् इनका अस्तित्व नहीं है, ये ब्रह्म की सेवा करने के लिए ही हैं। इस दर्शन में अद्वैत की जगह बहुत्व की कल्पना है परंतु ब्रह्म अनेक में एकता स्थापित करनेवाला एक तत्व है। बहुत्व से विशिष्ट अद्वय ब्रह्म का प्रतिपादन करने के कारण इसे विशिष्टाद्वैत कहा जाता है।

विशिष्टाद्वैत मत में भेदरहित ज्ञान असंभव माना गया है। इसीलिए शंकर का शुद्ध अद्वय ब्रह्म इस मत में ग्राह्य नहीं है। ब्रह्म सविशेष है और उसकी विशेषता इसमें है कि उसमें सभी सत् गुण विद्यामान हैं । अत: ब्रह्म वास्तव में शरीरी ईश्वर है। सभी वैयक्तिक आत्माएँ सत्य हैं और इन्हीं से ब्रह्म का शरीर निर्मित है । ये ब्रह्म में, मोक्ष हाने पर, लीन नहीं होतीं; इनका अस्तित्व अक्षुण्ण बना रहता है। इस तरह ब्रह्म अनेकता में एकता स्थापित करनेवाला सूत्र है। यही ब्रह्म प्रलय काल में सूक्ष्मभूत और आत्माओं के साथ कारण रूप में स्थित रहता है परंतु सृष्टिकाल में सूक्ष्म स्थूल रूप धारण कर लेता

है। यही कार्य ब्रह्म कहा जाता है। अनंत ज्ञान और आनंद से युक्त ब्रह्म को नारायण कहते हैं जो लक्ष्मी (शक्ति) के साथ बैकुंठ में निवास करते हैं। भक्ति के द्वारा इस नारायण के समीप पहुँचा जा सकता है। सर्वोत्तम भक्ति नारायण के प्रसाद से प्राप्त होती है और यह भगवद्ज्ञानमय है। भक्ति मार्ग में जाति-वर्ण-गत भेद का स्थान नहीं है। सबके लिए भगवत्प्राप्ति का यह राजमार्ग है।

अभ्यास के प्रश्न

निम्नलिखित के सही विकल्प चुनकर लिखिए

1.वेदान्त का मुख्य स्रोत है

क. गीता ख. महाभारत
ख. पुराण घ. उपनिषद्

2. मध्वाचार्य प्रवर्तक हैं

क. अद्वैत दर्शन के ख. द्वैत दर्शन के
ग. चार्वाक के घ . बौद्ध के

3.मध्वाचार्य का समय क्या है

क. 1197 ई. ख. 1208 ई.
ग. 1390ई. घ. 1550ई.

4. अद्वैत प्रकरण रचना -

क. शंकर की ख. रामानुज
ग. गौड पाद घ. वाचस्पति

5. श्रीमद भगवतगीता में वर्णित है

क. न्याय ख. कर्मकाण्ड
ग. निष्काम घ. परम्परा

निम्नलिखित के एक शब्द में उत्तर दिजिए

क. आन्नद गिरी कौन थे।
ख. वेदान्तसार किसने लिखा है।
ग. मधुसूदन सरस्वती का समय है।

घ. भामती तीका के लेखक कौन है।
ङ. विशिष्टाद्वैत के प्रवर्तक थे।
च. मायावाद का खंडन किसने किया था।
छ. वेदान्त का अर्थ क्या हैं।

3. 1.3.3 द्वैत वैदांत

मध्व (1197 ई.) ने द्वैत वेदांत का प्रचार किया जिसमें पाँच भेदों को आधार माना जाता है। जीव ईश्वर, जीव जीव, जीव जगत्, ईश्वर जगत्, जगत् जगत् इनमें भेद स्वत: सिद्ध है। भेद के बिना वस्तु की स्थिति असंभव है। जगत् और जीव ईश्वर से पृथक् हैं किंतु ईश्वर द्वारा नियंत्रित हैं। सगुण ईश्वर जगत् का स्रष्टा, पालक और संहारक है। भक्ति से प्रसन्न होनेवाले ईश्वर के इशारे पर ही सृष्टि का खेल चलता है। यद्यपि जीव स्वभावत: ज्ञानमय और आनंदमय है परंतु शरीर, मन आदि के संसर्ग से इसे दु:ख भोगना पड़ता है। यह संसर्ग कर्मों के परिणामस्वरूप होता है। जीव ईश्वरनियंत्रित होने पर भी कर्ता और फलभोक्ता है। ईश्वर में नित्य प्रेम ही भक्ति है जिससे जीव मुक्त होकर, ईश्वर के समीप स्थित होकर, आनंदभोग करता है। भौतिक जगत् ईश्वर के अधीन है और ईश्वर की इच्छा से ही सृष्टि और प्रलय में यह क्रमश: स्थूल और सूक्ष्म अवस्था में स्थित होता है। रामानुज की तरह मध्य जीव और जगत् को ब्रह्म का शरीर नहीं मानते। ये स्वत:स्थित तत्व हैं। उनमें परस्पर भेद वास्तविक है। ईश्वर केवल इनका नियंत्रण करता है। इस दर्शन में ब्रह्म जगत् का निमित्त कारण है, प्रकृति (भौतिक तत्व) उपादान कारण है।

1.3.4 द्वैताद्वैत वेदांत

निंबार्क (11 वीं शताब्दी) का दर्शन रामानुज से अत्यधिक प्रभावित है। जीव ज्ञान स्वरूप तथा ज्ञान का आधार है। जीव और ज्ञान में धर्मी-धर्म-भाव-संबध अथवा भेदाभेद संबंध माना गया है। यही ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता है। ईश्वरश् जीव का नियंता, भर्ता और साक्षी है। भक्ति से ज्ञान का उदय हो पर संसार के दु:ख से मुक्त जीव ईश्वर का सामीप्य प्राप्त करता है। अप्राकृत भूत से ईश्वर का शरीर तथा प्राकृत भूत से जगत् का निर्माण हुआ है। काल तीसरा भूत माना गया है। ईश्वर को कृष्ण राधा के रूप में माना गया है। जीव और भूत इसी के अंग हैं। यही उपादान और निमित कारण है। जीव-जगत् तथा ईश्वर में भेद भी है अभेद भी है। यदि जीव-जगत् तथा ईश्वर एक होते तो ईश्वर को भी जीव की तरह कष्ट भोगना पड़ता। यदि भिन्न होते तो ईश्वर सर्वव्यापी सर्वांतरात्मा कैसे कहलाता ?

1.3.5 शुद्धाद्वैत वेदांत

वल्लभ (1479 ई.) के इस मत में ब्रह्म स्वतंत्र तत्व है। सच्चिदानंद श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं और जीव तथा जगत् उनके अंश हैं। वही अणोरणीयान् तथा महतो महीयान् है। वह एक भी है, नाना भी है। वही

अपनी इच्छा से अपने आप को जीव और जगत् के नाना रूपों में प्रगट करता है। माया उसकी शक्ति है जिसी सहायता से वह एक से अनेक होता है। परंतु अनेक मिथ्या नहीं है। श्रीकृष्ण से जीव-जगत् की स्वभावत: उत्पत्ति होती है। इस उत्पत्ति से श्रीकृष्ण में कोई विकार नहीं उत्पन्न होता। जीव-जगत् तथा ईश्वर का संबंध चिनगारी आग का सबंध है। ईश्वर के प्रति स्नेह भक्ति है। सांसारिक वस्तुओं से वैराग्य लेकर ईश्वर में राग लगाना जीव का कर्तव्य है। ईश्वर के अनुग्रह से ही यह भक्ति प्राप्य है, भक्त होना जीव के अपने वश में नहीं है। ईश्वर जब प्रसन्न हो जाते हैं तो जीव को (अंश) अपने भीतर ले लेते हैं या अपने पास नित्यसुख का उपभोग करने के लिए रख लेते हैं। इस भक्तिमार्ग को पुष्टिमार्ग भी कहते हैं।

1.3.6 अचिन्त्य भेदाभेद वेदांत

महाप्रभु चैतन्य (1485-1533 ई.) के इस संप्रदाय में अनंत गुणनिधान, सच्चिदानंद श्रीकृष्ण परब्रह्म माने गए हैं। ब्रह्म भेदातीत हैं। परंतु अपनी शक्ति से वह जीव और जगत् के रूप में आविर्भूत होता है। ये ब्रह्म से भिन्न और अभिन्न हैं। अपने आपमें वह निमित्त कारण है परंतु शक्ति से संपर्क होने के कारण वह उपादान कारण भी है। उसकी तटस्थशक्ति से जीवों का तथा मायाशक्ति से जगत् का निर्माण होता है। जीव अनंत और अणु रूप हैं। यह सूर्य की किरणों की तरह ईश्वर पर निर्भर हैं। संसार उसी का प्रकाश है अत: मिथ्या नहीं है। मोक्ष में जीव का अज्ञान नष्ट होता है पर संसार बना रहता है। सारी अभिलाषाओं को छोड़कर कृष्ण का अनुसेवन ही भक्ति है। वेदशास्त्रानुमोदित मार्ग से ईश्वरभक्ति के अनंतर जब जीव ईश्वर के रग में रँग जाता है तब वास्तविक भक्ति होती है जिसे रुचि या रागानुगा भक्ति कहते हैं। राधा की भक्ति सर्वोत्कृष्ट है। वृंदावन धाम में सर्वदा कृष्ण का आनंदपूर्ण प्रेम प्राप्त करना ही मोक्ष है।

आराध्यो भगवान व्रजेश तनय: तद्धामवृन्दावनम्
रम्याकाचिदुपासना प्रजवधूवर्गेण या कल्पिता
शास्त्रं भागवतमपुराणममलं प्रेमापुमर्थो महान
श्री चैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो न: पर: ।। इनका मानना था कि व्रजेश तनय भगवान कृष्ण ही एकमात्र आाध्य हैं। व्रजवधुओं द्वारा कल्पित रमणीय उपासना ही एकमात्र उपासना है। श्रीमद्भागवतमहापुराण ही शास्त्र है। प्रेमा नामक महानद पुरूषार्थ है।

1.5 सारांश

वेदान्त ज्ञानयोग की एक शाखा है जो व्यक्ति को ज्ञान प्राप्ति की दिशा में उत्प्रेरित करता है। इसका मुख्य स्त्रोत उपनिषद है जो वेद ग्रंथो और अरण्यक ग्रंथों का सार समझे जाते हैं। वेदान्त की तीन शाखाएँ जो सबसे ज्यादा जानी जाती हैं वे हैं: अद्वैत वेदांत, विशिष्ट अद्वैत और द्वैत। आदि शंकराचार्य, रामानुज और श्री मध्वाचार्य जिनको क्रमश: इन तीनो शाखाओं का प्रवर्तक माना जाता

है, इनके अलावा भी ज्ञानयोग की अन्य शाखाएँ हैं। ये शाखाएँ अपने प्रवर्तकों के नाम से जानी जाती हैं जिनमें भास्कर, वल्लभ, चैतन्य, निम्बारक, वाचस्पति मिश्र, सुरेश्वर, और विज्ञान भिक्षु. आधुनिक काल में जो प्रमुख वेदांती हुये हैं उनमें रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, अरविंद घोष, स्वामी शिवानंद और रमण महर्षि उल्लेखनीय हैं. ये आधुनिक विचारक अद्वैत वेदांत शाखा का प्रतिनिधित्व करते हैं। दूसरे वेदांतो के प्रवर्तकों ने भी अपने विचारों को भारत में भलिभाँति प्रचारित किया है परन्तु भारत के बाहर उन्हें बहुत कम जाना जाता।

आचार्य शंकर का सिद्वान्त अद्वैतवाद के नाम से प्रसिद्व है। सत्ताओं के पृथक् महत्व को अस्वीकार करना ही अद्वैतवाद है। आचार्य के अद्वैत का मूल- मन्त्र है, **" ब्रहमा सत्यं जगन्मिथ्या।"** ब्रहमा के अतिरिक्त अन्य समस्त वस्तुओं को मिथ्या की सिद्वि हेतु उन्होंने मायावाद की स्थापना की। विद्वानों का कथन है कि शंकर का मायावाद गौड.पादाचार्य के मायावाद से प्रभावित है। आचार्य शंकर ने माया शब्द का प्रयोग अविद्या, अज्ञान, भ्रम, मृगतृष्णिका आदि अर्थो में किया है। मायावाद शंकर का वह अमोघ मन्त्र है जिसके द्वारा ब्रहमा और जगत् के सम्बन्ध की पहेली को सुलझा सके है। जगत् ब्रहमा का विवर्तमात्र है जैसे रज्जू में सर्प ।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

आगम – शास्त्रों को आगम कहा जाता है

उपनिषद् – गति , विशरण और अवसादन

विवर्त – भ्रम

कारिका – श्लोक रूप

भौतिक – लोक संसार

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 घ.

2 ख.

3 क.

4 घ.

5 ग.

1.8 संदर्भ ग्रंथ

- उपनिषद्; भगवद्गीता; गौडपादकारिका; ब्रह्मसूत्र;
- उपनिषद्गीता और ब्रह्मसूत्र पर सांप्रदायिक भाष्य;
- राधाकृष्णन् : इंडियन फिलासफी, भाग 1-2;
- दासगुप्त : हिस्टरी ऑव इंडियन फिलासफी, भाग1

1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

- वेदान्त दर्शन .स्वामी राधाकृष्णन
- संस्कृत शास्त्रों का इतिहास आचार्य बलदेव उपाध्याय

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

- वेदान्त दर्शन की संक्षेपिका निर्मित कीजिए
- शंकराचार्य का परिचय प्रस्तुत कीजिए
- वेदान्त दर्शन की आचार्य परम्परा पर एक निबन्ध लिखिए

इकाई -2 वेदान्तसार के प्रमुख सिद्धान्तों का समीक्षण

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 वेदान्तसार के प्रमुख सिद्धान्त
    2.3.1 ब्रह्मम का स्वरूप
    2.3.2 अनुबन्ध
        2.3.2.1 अधिकारी
        2.3.2.2. विषय
        2.3.2.3 सम्बन्ध
        2.3.2.4 प्रयोजन
2.4 अध्यारोप एवं आवरण, विक्षेप शक्तियॉ
2.5 सूक्ष्म शरीर
2.6 पंचीकरण
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ
2.11 सहायक /ग्रन्थ उपयोगी पाठ्यसामग्री
2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

वेदान्तसार जो सदानन्द योगीन्द्र द्वारा रचित है, उसके सिद्धान्तों एवं भूत तथ्यों के सम्यक् अध्ययन हेतु निर्मित इस खण्ड की यह दूसरी इकाई है। इस इकाई में वेदान्त एवं वेदान्तसार के सैद्धान्तिक तुलनात्मक समीक्षण का अध्ययन कराया जायेगा।

वस्तुतः भारतीय दर्शनों में वेदान्त दर्शन प्राणस्वरूप् है। इसके अन्तर्गत ब्रह्म, माया, जीव जगत ईश्वर और मनुष्य के करणीय तथा अकरणीय कर्मो की विवेचना नियम-निषेध पूर्वक की गयी है। पूर्व में भी इसकी आचार्य परम्परा अत्यन्त समृद्ध रही है जिकका अध्ययन आपने इसके पूर्व की इकाई में किया है। इसके अन्तर्गत वेदान्तसार में प्रतिपादित सैद्धान्तिक समीक्षण आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है।

प्रस्तुत इकाई में आप वेदान्त के सिद्धान्तों का अध्ययन करने के पश्चात काम्य, निषिद्ध आदि कर्मो को समझाते हुए ज्ञानयोग से ईश्वर प्राप्ति के मार्ग को बता सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात, आप यह बतायेगे कि-

1. ब्रह्राम का स्वरूप क्या है।
2. ईश्वर को किस प्रकार परिभाषित किया गया है।
3. यज्ञों को किस प्रकार परिभाषित किया गया है।
4. ज्ञानमार्ग की विशेषताएं क्या है।
5. अनुवन्ध चतुस्टय का महत्व क्या है।
6. वेदान्तसार की उपयोगिता क्या है।

2.3 वेदान्तसार के प्रमुख सिद्धान्तः

ज्ञान की एक अबाध सरिता जिसका प्रवाह सनातन है उसे दर्शन कहते है। वेदों में जगत् की उत्पत्ति स्थिति तथा विनाश को बताया गया है। इसके बाद जो दार्शनिक सत्यान्वेषण है वह है उपनिषद। इन्ही में ब्रह्म माया, जीव जगत ईश्वर की अन्वेषणपूर्ण सत्य साबित होते हैं। सभी दर्शनों के प्रतिपा? विषयों में ब्रह्म, माया, जीव, जगत, ईश्वर ये सब प्रकारान्तर से वर्णित हैं। सदानन्द योगीन्द्र रचित वेदान्तसार में अनुबन्ध चतुष्टया-विषय, सम्बन्ध, अधिकारी और प्रयोजन को बताकर अध्यारोप, अपवाद, अनुमान, काम्य निषिद्ध कर्म, यज्ञादि तथा ज्ञान एवं अज्ञान के स्वरूप की

विवेचन की गयी है। आवरण तथा विशेष शक्ति के माध्यम से योगीन्द्र ने समस्त गुत्थियों की सुलझाने का प्रयास किया है। इस पाठ के अन्तर्गत आप वेदान्त में जितने सैद्धान्तिक स्वरूप है। उनकी सारभूत बातों को वेदान्तसार के माध्यम से जानेगे।

2.3.1 ब्रह्म-

यहॉ पर केवल वेदान्तसार में वर्णित तथ्यों के आधार पर ब्रह्म के स्वरूप की व्याख्या नहीं की जायेगी। ब्रह्म के बारे में वेदान्त दर्शन की जो मान्यता है उसका संक्षिप्त निदर्शन किया जा रहा है।- सामान्यतः ब्रह्म शब्द को बृह् धातु से उत्पन्न माना गया है। इसका अर्थ है विशाल, अतः जो इतना विशाल हो कि सबकुछ व्याप्त परिण्याप्त कर ले उसी को ब्रहम कहते है। प्रारम्भ में ब्रहम शब्द का प्रयोग वैदिक सूत्रों तथा स्तुतियों में किया जात था। इसी क्रय में ब्रह्म शब्द वेद के लिए प्रयुक्त हो गया। तथा कर्मकाण्ड की प्रचुरता के कारण यज्ञों का महत्व बढ़ जाने से यज्ञ को ही सृष्टि उत्पन्न करने वाली सबसे बड़ी शक्ति समझा जाने लगा। किन्तु यज्ञ का आधार तो ब्रह्म अथवा वेद ही था अतः ब्रह्म या वेद को प्रथमजम् कही जाने लगा। ठसके अलावा ब्रह्म शब्द का तात्पर्य है-एकमात्र नित्य चेतनासत्ता जो जगत् का कारण और सत् चित् आनन्द स्वरूप है। ब्रह्म शब्द का प्रमुख प्रयोग एक ही संख्या के लिए भी किया गया है। अतः ब्रहम् शब्द के चाहे जितने भी अर्थ किये गये हो उनके तात्पर्य तो सर्वव्यापी ही निकलते है।

श्रुतियों में ब्रह्म के लिए स्थान-स्थान पर आनन्द एवं आनन्दमय शब्द का निर्माण ''तत्प्रकृतवचने'' प्रचुरता के अर्थ में मयत् प्रत्यय के योग से हुआ है। अतः इसका अर्थ है ''आनन्द की प्रचुरता'' गुणहीन होने के नाते आनन्द की प्रचुरता ब्रह्म में ही समाहित है। ब्रह्म के विषय में सदाननद योगीन्द्र ने वेदान्तसार के मंगलाचरण के प्रारम्भिक दो पद्यों में ही ब्रहम के स्वरूप को उद्घाटित कर दिया है जिसमें उन्होने अपने गुरू की भी वन्दना की है। मंगलाचरण के पद्य में उन्होनं ब्रह्म को सर्वदा वर्तमान, चेतन और आनन्द स्वरूप, वाणी तथा मन की पहुॅच से परे, अखिल जगत का आधार और अखण्ड कहा है। वेदान्तसार केमत में ब्रह्म सत् चित ओर आनन्द स्वरूप है।

अखण्डं सच्चिदानन्दवांगमनसगोचरम्
आत्मानमखिलाधारमाश्रयेभीष्टसिद्धये।
अर्थतोप्यद्वयानन्दतीतद्वैतभानतः
गुस्नाराध्य वेदान्तसारं वक्ष्ये यथामतिः।।

सत् का अर्थ है त्रिकालवाधित पदार्थ जो कभी विकृत न हो ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तं है वह प्रत्येक अवस्था में विकारहीन तथा नित्य है, वह पूर्ण है, प्रबुद्ध है तथा ज्ञान वर्द्धक भी है। वेदान्त के अन्दर व्यवहारिक और परमार्थिक दो दृष्टियों से ब्रह्म पर विचार किया जाता है।

मुण्डक उपनिषद में एक कथा आती है- एक बार सुनक के पुत्र अंगिरस ऋषि के पास पहुचकर पूछे कि वह कौन सी वस्तु है जिसको जान लेने से सबकुद ज्ञात हो जायेगा। उन्होंने उत्तर दिया कि -ब्रह्म। द्वैतभावना का दूर होना अर्थात् आत्मा का दर्शन होना है। इस प्रकार सदानन्द योगीन्द्र ने ब्रह्म के विषय में अतिसूक्षम शब्दावली के माध्यम से असीमित अनुभूति और भावना को व्यक्त किया है।

2.3.2. अनुबन्ध-

थ्कसी भी ग्रन्थ को पढ़ने ओर जानने के लिए निम्न बाते महत्वपूर्ण होती है।

1. उस ग्रन्थ को पढ़ने का अधिकारी कौन है।

2.उस ग्रन्थ का विषय क्या है जो लिखा हुआ।

3. उसमें लिखित विषय एवं पुस्तक का क्या सम्बन्ध है।

4. इसके अध्ययन का प्रयोजन क्या है।

उपर्युक्त इन्हीं चार प्रश्नों के उत्तर को अनुबन्ध कहा जाता है तथा इन चारों के उत्तर को अनुबन्ध चतुष्टय कहा जाता है। बात भी सही है कोई भी ग्रन्थ को मैं पढ़ रहा हूॅ उसका विषय क्या है, इसमें क्या लिखा है, इसका सम्बन्ध किससे है और मैं पढ़ूगा तो क्या प्राप्त होगा, तब तक कोई उसमें प्रवृत नहीं हो सकता है। वाचस्पत्यम् में एक स्थान पर कहा गया है-

ज्ञातार्थ ज्ञात सम्बन्धं श्रोतंृ श्रोता प्रवर्त्तते।

ग्रन्थादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः।।अतः वह अनुबन्ध चार प्रकार का है-

क-अधिकारी स्वः विषय ग-सम्बन्ध घ-प्रयोजन। यहॉ पर क्रमशः वर्णन प्रस्तुत है।

2.3.2.1 अधिकारी-

वेदान्त नामक विषय का अधिकारी वही हो सकेगा जो विधिवत वेद वेदाड्गों का अध्ययन करके वेदार्थ ज्ञान में पारंगत हो। काम्य एवं शास्त्र ज्ञान करके निषिद्ध कर्मो का त्याग किया हो। इसके बाद जिस व्यक्ति का अन्तःकरण नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित् एवं उपासना कर्मो के द्वारा समस्त पापों से मुक्त हो गया हो। ऐसेचार साधनों से सम्पन्न प्रमाता ही अधिकारी कहलाता है। अधिकारी को इस जन्म या पूर्व जन्म में वेदार्थ ज्ञान परमाश्यक है। स्र्का प्राप्ति की कामना से किये जाने वाले ज्योतिष्तोम यज्ञादि काम्य कर्म है। नरकादि प्राप्ति कराने कराने वाले ब्रह्मतत्या आदि कर्मो को निषिद्ध कर्म कहते है। जिनके न करने से हानि होती है उन्हें नित्य कर्म कहा जाता है। पुत्रोपत्ति आदि के अवसर पर जो जातेष्टि आदि यज्ञ किये जाते है उन्हें नैमित्तिक कहा जाता है। मनुष्य अपने जीवन में जितने आपकर्मो

को करता है उनके शमन हेतु किये जाने वाले चान्द्रायाण व्रत आदि प्रायश्चित कर्म कहे जाते हैं। मानसिक वृत्ति पूर्णतः स्थिर हो इसके लिए सगुण ब्रह्म के विषय में जो कर्म किये जाते है वे उपासना कर्म होते हैं। इसप्रकार के सम्पन्न होने से व्यक्ति अधिकारी कहलाता है।

2.3.2.2 विषय-

यह अनुबन्ध चतुष्टय का एक महत्वपूर्ण भाग है इसके अन्तर्गत यह बताया जाता है कि जिस ग्रन्थ में जो भी वर्णित है वह सैद्धान्तिक रूप में किस विषय से सम्ब्न्धित है। अथवा वेदान्तसार का विषय जीव और ब्रह्म का एक होना बताया जाता है। वह विरूद्ध धर्मो से मुक्त होकर शद्ध चैतन्य का ज्ञान है। यही वेदान्त वाक्यों का चरम लक्ष्य भी है। जीव तथा ब्रह्म का आत्यन्तिक भेद निरूपण ही अद्वैतवाद का सारभूत है। जीवों की ब्रह्म से भिन्न अपनी अलग सत्ता ही विशिष्तवाद का सार है। जीव और ब्रह्म का स्वरूप शुद्ध चैतन्य की शुद्धता है। प्रमाणों से जाना जाने वाला विषय प्रमेय कहलाता है। कपिल तथा कणाद आदि दार्शनिकों ने वदान्त का तात्पर्य प्रधान के अस्तित्व को सिद्ध कराना माना गया है।

2.3.2.3 सम्बन्ध-

जीव तथा ब्रह्म दोनों के ऐक्य और उनके प्रतिपादक उपनिषद् वाक्यों का बोध्य बोधक भाव हो जाना वदोन्तसार में सम्बन्ध कहलाता है। जीव और ब्रह्म का ऐक्य ही विषय है तथा प्रतिवादक श्रुतिवाक्यों के जो बोध्यबोधक प्रभाव है वही सम्बन्ध है। यद्यपि

शुद्ध चैतन्य के अस्तित्व को प्रत्यक्ष रूप से प्रमाणित नहीं किया जा सकता और कोई प्रत्यक्ष व्याख्या भी नहीं की जा सकती है किन्तु अनुमान प्रमाण के सहारे से उसकी व्याख्या हो सकती है।

2.3.2.4. प्रयोजन-

जीव और ब्रह्म की जो एकता है उसकी जानकारी के बीच में अज्ञान की निवृत्ति हो जाने पर आत्मा के स्वरूपानन्द की प्राप्ति होती है। आत्मज्ञाता ही हमेशा शोक से तर जाता है। ''तरति शोकम् आत्मवित्'' और ब्रह्मविद्य ब्रह्मैव भवति'' आदि वाक्य ही वेदान्तसार के प्रयोजन है वैसे तो वेदान्तसार का प्रमुख प्रयोजन केवल अज्ञान का निवारण ही यदि किसी तत्वेत्ता को अच्छा गुरू प्राप्त हो जाय तो ''तत्वमसि'' आदि वाक्यों के कृपापूर्ण उपदेश से उसके अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है। आनन्द का असीमित सभुद्र साधक की झोली में लेता है। अतः इसी आनन्द की उपलब्धि करना ही वेदान्तसार का प्रमुख प्रयोजन है।

2.4 अध्यारोप एवं आवरण, विक्षेप शक्तियॉ

वेदान्तसार के सिद्धान्तों में अध्यारोप तथा अज्ञान की दो शक्तियों का वर्णन किया गया है जिन्हें आवरण तथा विक्षेप कहते है।

अध्यारोप-रस्सी में सर्प का आभास होने के समान किसी वस्तु में अन्य वस्तु के आरोप को अध्यारोप कहते है। यहॉ वस्तु का तात्पर्य अविनाशी ब्रह्म या आत्मा से है और अन्य वस्तु जो

अवस्तु कहलाती है उसकी किसी भी रूप में सत्ता नहीं होती है। वस्तु सच्चिदानन्दताद्वयं ब्रह्म। अज्ञानादिसकलजड़समूहोऽवस्तुः अज्ञान सत्व और असत्व दोनों से रहित होने के कारण अवर्णनीय होता है। यह त्रिगुणात्मक है और ज्ञान का विरोधी है मै अज्ञानी हूॅ इसका तात्पर्य ही ज्ञान की भावरूपात्मकता है। समष्टि और व्यष्टि दो अभिप्रायों के कारण अज्ञान कहीं एकरूपता में और कहीं बहुवचन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। वेदान्तसार में कहा गया है कि-आानस्य आवरणविक्षेप दो शक्तियॉ होती है।

आवरणशक्ति-

जिस प्रकार एक लघु मेघखण्ड अखण्ड विस्तृत सूर्य की आभा को दर्शकों की दृष्टि से विच्छिन्न कर देता है उसी प्रकार सीमित अज्ञान भी असीमित तथा असांसारिक आत्मा का आवृत् कर देता है। ऐसी शक्ति आवरण शक्ति कहलाती है। वेदान्तसार का एक उदाहरण है-

घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नचर्कं यथा मन्यतेनिष्पभ चातिमूढ़ः।

तथा बद्धवद्भाति या मूढ़ दृष्टेः स नितयोपलब्धिस्वरूपोंऽहमात्मा।।

अर्थात् जिस प्रकार मेघ से आच्छन्न दृष्टि वाला व्यक्ति मेघाच्छादित सूर्य को प्रकाशरहित समझता है। उसी तरह साधारण दृष्टि वाला मूढ़ लोगों को जन्म मरण वाला बन्धनों से बाधित प्रतीत होता है।

विक्षेपशक्ति- विक्षेप शक्ति तो उसे कहते हैं जो रस्सी निषयक अनाच्छादितं रस्सी में अपनी शक्ति से सर्पादिकी उद्भावना के समान अज्ञानावृत आत्मा में ही आकाशादि प्रपन्च की उद्भावना कराता है। विक्षेप शक्ति ही लिंग शरीर से लेखक ब्रह्माण्ड की रचना तक करती है। विक्षेप शक्ति की यहीं विशेषता है।

जिस प्रकार एक ही मकड़ी अपने तन्तु रूपी कार्य के प्रति चेतन प्रधानता के नाते निमित्त कारण होती है और अपने शरीर की प्रधानता के नाते निमित्त कारण होती है और अपने शरीर की प्रधानता के नाते उपादान कारण भी होती है। उसी प्रकार यह संसार है। अगर मकड़ी चेतन न हो तो केवल उसके शरीर से तन्तु नहीं बन सकता। किन्तु यदि शरीर न हो तो भी केवल चैतन्य से ही तन्तु नहीं बन सकता।अर्थात् जिस प्रकार मकड़ी जाल को बनाती हैं और उसे निगल लेती है, जिस प्रकार जीवित मनुष्य से रोम या केश उत्पन्न होते है वैसे ही अक्षर अविनाशी ब्रह्म से यह जगत उत्पन्न होता है।

2.5 सूक्ष्म शरीर-लिंग

शरीर ही सूक्ष्म शरीर कहा जाता है। इसके सत्रह(17) अवयव होते है- पॉच ज्ञानोन्द्रियॉ, बुद्धि एवं मन पॉच कर्मेन्द्रियॉ तथा पॉच वायु। श्रोत्र, त्वक, चक्षु जिहन्वा, घ्राण ये पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ है। ये पॉच

आकाशादि के सात्विक अंशों से अलग-अलग उत्पन्न होती है। निश्चत करने वाली अन्तः करण की वृत्ति को बुद्धि कहा जाता है। अन्तःकरण वृत्ति के दो रूप होते हैं-1-निश्चयात्मिका 2-संशयात्मिका।

संकल्प और विकल्प करने वाली अन्तःकरण की वृत्ति को मन अन्तर्भाव हो जाता है। चिन्त की वृत्ति अनुसन्धान कर्ता है। अभिमान का कार्य करने वाली अन्तकरण की वृत्ति को अहंकार करते है।

पांच ज्ञानेन्द्रिय तथा बुद्धि का संयुक्त रूप विज्ञानमय कोश कहलाता है। इसी संयुक्त होकर व्यवहार करने की अवस्था वाला कर्ता, उपभोक्ता, जीव कहलाता है।

मन और ज्ञानेन्द्रिय का संयुक्त रूप मनोमय कोश कहलाता है।

वाणी, हाथ, पैर, पायु और उपसथ ये सभी कर्मेन्दियॉ है। ये सभी आकाशादि के रजोगणांशों से अलग-अलग उत्पन्न होती है। प्राण, अपान व्यान उदान तथा समान ये पॉच वायु हैं।

नाक के अग्रभाग में रहने वाली वाणु प्राण है। निम्नगमन वाली गुदादि स्थल की वायु अपान है तथा सभी ओर जाने वाली सम्पूर्ण शरीर की वायु व्यान है। अपन की ओर जाने वाली वायलु उदान है और परिपाक करने वाली वायु समान वायु होती है।

वेदान्तसार में वर्णित इन्हीं तथ्यों के सम्पूर्ण सम्पृक्त होने से सूक्ष्म शरीर उत्पन्न होता है। इसके मौलिक और विस्तृत वर्णन आगे की इकाइयों में दिये गये है।

इस प्रकार विज्ञानमय कोश, प्राणमय कोश तथा मनोमय कोष को मिलाने से सूक्ष्म शरीर बन जाते हैं। ज्ञानेन्द्रियों 5 कार्मेन्द्रियॉ 5 वायुएं 5 तथा बुद्धि ओर मनस्।

2.6 पन्चीकरण

सृष्टि के विकासार्थ पॉच महानुतों का सम्मिश्रण ही पन्चीकरण कहलाता है। इस प्रक्रिया में पॉच भूतों के प्रत्येक के दो बराबर भाग करके अनके आधे-आधे भागों में अन्य-अन्य भूतो के आठवे भाग को मिला देने से पन्चीकृत महाभूत बनते है। अर्थात् पृथ्वी में केवल आधा भाग पृथ्वी का और अवशेष आधे में आकाश वायु तेज तथा जल का 1/8 भाग साधारणतः लिया जाता है। वेदान्तसार का कथन है-

द्विधा विधाय चैकैकं तचुर्धा प्रथमं पुनः।

स्वस्वेतरद्वितीयां शैर्योजनात्च्च पन्च ते।।

पन्चीकरण की इस प्रक्रिया की इस प्रकार व्यक्त किया गया है- आकाशादि पॉच महाभूतों में से प्रत्येक को समान दो भागों को पुनः चार बराबर भागों में बॉटकर 52 प्रत्येक को उन दस भागों में से

प्राधमिक पॉच भागों को पुनः चार बराबर भागों में प्रत्येक को विभक्त करके उनके 1/8 भागों को द्वितीयार्ध भाग को छोड़कर दूसरे भागों को मिलाने की प्रक्रिया पंचीकरण होती है। अतः पृथ्वी=1/2 पृथ्वी $1/8 जल$1/8 तेज$1/8 वायु $ 1/8 आकाश=पन्चीकरण ।।

शंकराचार्य का कथन है कि-पंचममहाभूतानामेकैकम् द्विधाविभज्य चतुर्धा कृत्वा स्वर्धभागं विहाय इतरेषु पन्चधा पन्चीकृतेषु पन्चीकरण भवति।।

अभ्यास प्रश्न-

निम्नलिखित के सही उत्तर चुनकर लिखिए

1. ब्रह्म शब्द के प्रयोग में वृह्धातु का क्या अर्ध है-

क. विशाल ख. विस्तृत ग. सीमित घ. वृद्धि

2. अनुबन्ध है-

क. ग्रन्थ ख. विषय ग. साधन घ. प्रत्याहार

3. निश्चयाम्मिका है-

क. अन्तःकरण की वृत्ति

ख. ब्राह्य प्रयत्न

ग. बुद्धि

घ. दिमाग की वृत्ति।।

4. अज्ञान की शक्ति है-

क. ज्ञान ख. अन्धकार ग. आवरण घ. अनावरण

5. शुद्ध शब्द है-

क. मन ख. मनम् ग. मनस् घ. मना

2. एक शब्द में उत्तर दीजिए-

1. रस्सी में सर्प के अभ्यास को क्या कहते है।

2. सूक्ष्म शरीर के कितने अवयव है।

3. लिंग शरीर को कहा जाता है।

4. पन्चीकरण की प्रक्रिया किस दर्शन में है।

5. मन और ज्ञानेन्द्रिय को मिलाने से बनता है? मनो0

6. अनुसन्धानात्मिक बृत्ति किसे कहते है। (चि0)

7. बुद्धि और ज्ञानेन्द्रिय को मिलाने से क्या बनता है। वि0 का0

8. संकल्प और विकल्प किसकी वृत्ति है।

2.7 सारांश-

वेदान्त दर्शन में ब्रहम, माया, जीव, जगत, तथा ईश्वर के बारे में प्रचुरता से वर्णन किये गये है। प्रत्येक ग्रन्थ में इन सभी के वर्णनों में यही आभास है। सदानन्द योगिन्द्र ने वेदान्तसार में अखण्ड ब्रह्म की स्तुति कर जगत की उत्पत्ति में कारण क्या क्या है इसे अच्छी तरह बताया है तथा ज्ञान और अज्ञान को विल्कुल अलग करके परिभाषित कर दिया है।

उन्होंने सूक्ष्म शरीर के निर्माण में सहायक तत्वों को अलग से बताते हुए कोशों के निर्माण में किसका योगदान है, यह भी स्पष्ट किया है। भूतोत्पत्ति प्रक्रिया का विस्तार से वर्णन कर भूतों के निर्माण में सहायक तत्वों की संख्या और उनके विभागों को भी बताया है। यदि दृष्टि पूर्वक विचार करें तो प्रतीत होता है कि वेदान्तसार वेदान्त के सैद्धान्तिक प्रश्नों की सरल और अत्यन्त स्पष्ट व्याख्या करता है। इतना ही नहीं इसमें कुछ नवीन समावेश भी दिखयी पड़ता हैं।

2.8 परिभाषिक शब्दावली-

1. अनुबन्ध-वेदान्त दर्शन में इसे चार प्रकार से बताया जाता है- अधिकारी, विषय, सम्बन्ध और प्रयोजन।।

2. सूक्ष्मशरीर-लिंग शरीर को सूक्ष्म शरीर कहते है।

3. पन्चमहाभूत-छिति, जल पावक, गगन, समीर।

4. ज्ञान्द्रियॉ-ज्ञानोन्द्रिय, कर्मोन्द्रिय और उभयात्मक

5. कोश-इन्द्रियों को मन तथा बुद्धि से मिलाकर बनता है।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क 2. ख 3. क 4. ग 5. ग

एक शब्द में उत्तर-

1. अध्यारोप 2. सत्रह 3. सूक्ष्मशरीर 4. वेदान्त में 5 मनोमयकोश 6. चित्त

7. विज्ञानमय कोश 8. मन

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. श्रीमदभगवद्गीता-हिन्दी अनुवाद सहित-गीाप्रेस

2. वेदान्त दर्शन- स्वामी राधाकृष्णन

3. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास-आचार्य बल देव उपाध्याय चौखम्भा प्रकाशन

2.11 सहायक ग्रन्थ

1. भारतीय दर्शन-दत्त एवं चटर्जी -चौखम्भा0 प्रका0

2. भारतीय दर्शन-सी0डी0 शर्मा-चौखम्भा0 प्रकाशन

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वेदान्त दर्शन को विस्तृत रूप से व्याख्यापित करें।

2. अनुबन्ध चतुष्टय को समझाइये।

3. अज्ञान की शक्तियों पर प्रकाश डालिए।

4. पन्चीकरण की प्रक्रिया पर प्रकाश डालिए।

इकाई -3 मंगलाचरण से अनुबन्ध चतुष्टय तक

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 मंगलाचरण से लेकर अनुबन्ध चतुष्टय तक
3.3.1 अधिकारी
3.3.2 विषय, सम्बन्ध एवं प्रयोजन
3.4 सारांश
3. 5 शब्दावली
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

वेदान्त दर्शन से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है,इस इकाई के अन्तर्गत आप ब्रह्म के स्वरूप को जानते हुए विषय, सम्बन्ध अधिकारी एवं प्रयोजन आदि का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

अखण्ड परमात्मा को वेदान्तसार में सच्चिदानन्द कहकर स्वरूपाभिव्यक्ति की गयी है।अनुबन्ध चतुष्टय के अन्तर्गत प्रथमतः अधिकारी तथा उसके बाद क्रमशःविषय सम्बन्ध और प्रयोजनों की व्याख्या की गयी है।इन वर्णनों में अनुबन्ध चतुष्टय की सविधि व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप ब्रह्म के स्वरूप को जानते हुए अनुबन्ध का अर्थ बताकर अधिकारी , विषय, सम्बन्ध एवं प्रयोजनों की व्याख्या विस्तार से बता सकेगे।

3.2 उद्देश्य

वेदान्तसार से सम्बन्धित इस इकाई केअध्ययन से आप व्याख्यायित कर सकेगे और बता सकेंगे कि-

- सत्,चित्,और आनन्द का स्वरूप क्या है।
- अखण्ड परमात्मा को सच्चिदानन्द क्यों कहा जाता है।
- अधिकारी का लक्षण एवं महत्व क्या है।
- विषय किसे कहते हैं,उसकी सम्यक विशेषता क्या है।
- सम्बन्ध एवं प्रयोजन को वेदान्तसार में किस प्रकार परिभाषित किया गया है।

3.3 मंगलाचरण से लेकर अनुबन्धचतुष्टय तक

अखण्डं सच्चिदानन्दमवाङ्मनसगोचरम्।

आत्मानमखिलाधारमाश्रयेऽभीष्टसिद्धये।।

अन्वय- अखण्डं, सच्चिदानन्दम् तथा विजातीय और अपनेपन के भेदभाव से रहित अर्थात् केवल एक सम्पूर्ण , अद्वितीय। ''अवाङ्मनसगोचरम्-वाणी तथा मन से परे, अर्थात् वाणी तथा मन से न जाने जा सकने वाला। अखिलाधारम्=आकाशादि पॉच महाभूत का आधार, अर्थात सृष्टि, पालन, विनाश का कारण। अभीष्टसिद्धये=निःश्रेयस (मोक्ष) की प्राप्ति के लिये।

अनुवाद-(मैं सदानन्द) आत्यन्तिक दुःख निवृत्तिरूप मोक्ष की प्राप्ति के लिए अथवा ग्रन्थ की समाप्ति

के लिये सर्वदा वर्तमान, चेतन एवं आनन्दस्वरूप, वाणी और मन की पहुँच से परे, सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गमरूप प्रपञ्च के आधारभूत, अखण्ड परमात्मा का आश्रय ग्रहण करता हूँ।

व्याख्या -1. आत्मा- यहॉ पर आत्मा परमात्मा के अर्थ में आया है आत्मा का योग वेदान्तसार में जीव-आत्मन् के लिये भी आया है, जो वस्तुतः ब्रह्म के साथ तदात्म्य रखता है।

2. **अखिलाधारम्**- 'यतो व इमानि भूतानि जायन्ते (तैत्तिरीय उपनिषद्) वह जिससे यह सभी पदार्थ (प्राणी आदि) विकसित हुए हैं, उत्पन्न हुए हैं। वस्तुतः सृष्टि, स्थिति और विनाश का कारण है। ब्रह्मसूत्र का 'जनमाद्यस्य यतः' सूत्र इसी अर्थ का बोधक है।

3. **अभीष्टसिद्धये-** लेखक की विशिष्ट कामना की पूर्ति के लिये अर्थात् शास्त्रसम्मत वेदान्तविषय के निरूपण के लिये। रामतीर्थ ने अभीष्ट से तीन प्रकार की अर्थ निवृत्ति मानी है। (1) शास्त्रीय अर्थ का बोध न होना, (2) अन्यथा बोध होना तथा (3) विरूद्ध बोध होना।

4. **ब्रह्म (आत्मा**)- मुण्डक उपनिषद् में यह कथा है-सुनक के पुत्र अङ्गिरम ऋषि के पास पहुॅचे और उनसे नम्रता से पूछा वह कौन सी वस्तु है जिसके जान लेने से सब कुछ ज्ञात हो जायेगा। ऋषि अङ्गिरस ने उत्तर दिया- 'ब्रह्म'। वेदान्त दर्शन और उपनिषद् कहते है कि यही भारतीय दार्शनिकों का लक्ष्य है। आगे के दार्शनिकों ने प्राचीनों के इस तथ्य को लेकर अत्यन्त सूक्ष्म से सूक्ष्म सिद्धान्त प्रस्तुत किये और वेदान्त दर्शन में पॉच सम्प्रदाय विकसित हुए हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण हिन्दू आस्तिक मस्तिष्क एवं जीवन को प्रभावित किया है।

5. **सत्**-वेदान्त दर्शन में तीन प्रकार की सत्तायें स्वीकार की गयी हैं-

(क) पारमार्थिक, (ख) व्यावहारिक तथा (ग) प्रतिभासिक। ब्रह्म पारमार्थिक सत्ता है, व्यावहारिक सत्ता में ईश्वर, जीवात्मा, स्वर्ग, नरक और सम्पूर्ण सृष्टि आती है। ये सब अज्ञान से कल्पित हैं और स्वप्न से अधिक स्थायित्व नहीं रखते किन्तु मनुष्य व्यवहार में उन्हें वास्तविक अस्तित्व वाला मानकर चलता है, अतः वह परम्परया एवं व्यवहारेण अस्तित्व वाले माने जाते हैं। प्रतिभासित सत्ता का आभासमात्र होती है जैसे सीपों में रजत का आभास और रस्सी में सर्प का। यह आभास अज्ञान के कारण होता है। यह सारा सत्ताओं का सिद्धान्त जगत् का निराकरण और ब्रह्म की व्याख्या करने के लिये प्रस्तुत हुआ है। इसे कहॉ तक सफलता मिली है, हम कह नहीं सकते।

6**. चित् अथवा चैतन्य**- यह ब्रह्म का प्रचलित प्रतीक है पर 'चित्' शब्द तैत्तिरीय उपनिषद् में ज्ञान के लिये भी आया है, किन्तु शङ्कर के अनुसार चित् बुद्धि का अर्थ नहीं रखता। निरपेक्षता और सत्यता से सम्बद्ध है।

7. **आनन्द**- सांख्य प्रवचनभाष्य में पूछा गया है कि क्या आत्मा आनन्द है? उत्तर में कहा गया कि

आत्मा को किसी प्रकार आनन्द कह सकते है।

8. **अखण्डम्**- नृसिंह सरस्वती ने अखण्डम् को समझाने में उदाहरण दिया है- जैसे- एक वृक्ष है उसमें स्वगत विविधतायें है जैसे, पत्तियॉ, फूल, फल। साथ ही वह कुछ ऐसी भी वस्तुयें रखता है जो दूसरे वृक्षों में भी हैं, साथ ही वह कुछ ऐसी भी वस्तुयें रखता है जो अन्य पदार्थो जैसे पाषण आदि में हैं, किन्तु ब्रहा्र ऐसा नहीं है वह निरपेक्ष और अपरिवर्तनशील है, वह यथार्थ सत् है। छान्दोग्य उपनिषद् में आया है 'सदेवसोम्य इदमग्र आसीद एकमेवाद्वितीयम्' विद्यारण्य ने भी पन्चदशी में वृक्ष के उदाहरण से ब्रहा्र को अखण्ड अर्थात् सजातीय, विजातीय और स्वगतभेदशून्य कहा है। अनेक स्थानों पर वेदान्त के ग्रन्थों में ब्रहा्र की अखण्डता की बोधक उक्तियॉ आई है। जिनमें ऐक्य, अवधारण तथा द्वैतनिषेध से त्रिविध भेद का निराकरण किया गया है। कहीं भी श्रुतियों में सत् वस्तु के अवयवों का वर्णन प्राप्त नहीं होता, क्योंकि सत् का विजातीय असत् होता है अर्थात् जिसकी सत्ता न हो तथा जिसमें सत्ता न हुई उसमें भेद भी न होगा। सत् का सजातीय कोई सत् ही हो सकता है, किन्तु श्रुति स्पष्ट रूप से सत् से विलक्षण वस्तु का निषेध करती है। रामतीर्थ आदि कुछ टीकाकारों ने अखण्ड शब्द का पर्याप्त अन्तर कहा है। जैसे कि विद्यारण्य भी कहते है-

न व्यापित्वात्, देशातोऽन्तो नित्यत्वान्नपि कालतः।

न वस्तुतोऽपि सर्वात्म्यादानन्त्य ब्रहर्ा्रण त्रिधा।। (पन्चदशी)

उपनिषत् में उस अखण्ड की लौकिक शब्दों से अभिव्यक्ति की गयी हैजो वस्तुतः अनिर्वचनीय है-

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवादशिष्यते।।

9. **सच्चिदानन्द**- अनेक शंकाओं का निराकरण करने के लिये ब्रहा्र को सत् चित् और आनन्द कहा गया है, क्योंकि अखण्ड, अनृत् और शून्य भी हो सकता है, इसलिये ब्रहा्र का सत् विशेषण दिया गया है, क्योंकि जगत् की सृष्टि निराधार नहीं हो सकती है। अतवए ब्रहा्र को सत् कहा गया है, वह अनृत् एवं शून्य नहीं है। इससे बौद्धों का शून्यवाद खण्डित हो जाता है। चित् कहने से ब्रहा्र को अन्धकार के समान जड़ता का निराकरण होता है अर्थात् वह ज्ञानस्वरूप है चैतन्य उसका गुण नहीं है। तैत्तिरीय उपनिषत् कहता है-'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रहा्र।' ज्ञान और ब्रहा्र का समानाधिकरण है,। वृहदारण्यक उपनिषद् में ब्रहा्र के सर्वगुणराहित्य का विस्तार के साथ प्रतिपादन हुआ है, वहॉ कहा गया है ज्ञान नित्य होता है और त्रिकालाबाधित सत्य होता है, साथ ही, ब्रह्म आनन्द हे यही सुखरूप है, वह सुखरूप न होता तो विचारशील लोगों की प्रवृत्ति भी उस ओर न होती। ब्रहा्र की आननदरूपता को सिद्ध करने वाली श्रुतियों में अनेक उक्तियॉ है-जैसे बृहदारण्यक कहता है-

'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म ।' तैत्तिरीयोपनिषद् कहता है-'आनन्दो ब्रह्मेति। मूण्डक उपनिषद् कहता है- आनन्दरूपं अमृतं युदिभाति।

10. **आवड्मनसगोचरम्-**अनेक श्रुतियों में आत्मा के वाणी और मन का तथा इन्द्रियों का विषय न होने का प्रतिपादन किया गया है जैसे तैत्तिरीय 2/9 , केन 1/3 माण्डूक्य 7, कठ ''नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यों न चक्षुषा'' इसी प्रकार केन 1/4, 5 और 2/2/15, मुण्डक 2/2/10 मे आत्मा को बुद्धि, मन प्राण और इन्द्रियों से अगम्य प्रतिपादित किया है।

2. **अर्थतोऽप्यद्वयानन्दानतीयद्वैतभानतः।**

गुरूनाराध्य वेदान्तसारं वक्ष्यों यथामतिः।।

अन्वयः-अतीतद्वैतभानतः, अर्थतः, अपि, अद्वयानन्दान् गुरून् आराध्य यथामति वेदान्तसारं वक्ष्ये।।

शब्दार्थ- अतीतद्वैतभानतः=द्वैत भावना से दूर हो जाने से अर्थात् आत्मा का दर्शन हो जाने से। अर्थतः =अर्थ की दृष्टि से। अद्वयानन्दान्=अद्वयानन्द नामक। आराध्य=आराधना करके। यथामति=अपनी बुद्धि के अनुसार। वक्ष्ये=वर्णन करूगा ।

अनुवाद-(मैं)समस्त भेदभाव से शून्य होने के कारण यथार्थतः अभेदानन्द युक्त अद्वयानन्द नामक गुरू की आराधना करके यथाबुद्धि देदान्तसार को कहूँगा।

व्याख्या -1. अद्वयानन्द-सदानन्द योगीन्द्र अपने गुरू अद्वयानन्द तथा ब्रहा्र दोनों को प्रस्तुत पद्य में प्रमाण करता है। इसके गुरू यथार्थनामा अर्थात् अद्वितीय आत्मतत्व में आनन्द पाने वाले थे उनका द्वैतभाव निरस्त हो चुका है और वे परम सत्ता का साक्षातकार करके सार्थक नाम हो गये है। अद्वयानन्द शब्द गुरू और ब्रहा्र दोनों का संकेत करता है।

2. **अतीतद्वैतभानतः**-विद्वन्मनोरन्जनीकार ने व्याख्या की है-दूर हो गया है द्वैत जिससे वह हुआ अतीतद्वैत (प्रत्यागात्मा)। उसका भान अर्थात् साक्षात्कार, 'अतीत' द्वैत यस्मात तत् अतीतद्वैत प्रत्यात्मतत्वं, तस्य भानम् साक्षात्कारः तस्मात् अतीतद्वैतभानतः। किन्तु सुबोधिनीकार ने इस प्रकार की व्याख्या की है-अतीत गतं द्वैतभान यतः तस्मात् निरस्तसमस्तभेदज्ञानत्वात् इत्यर्थः। अर्थात् समस्त भेद ज्ञान से परे होने से। वस्तुतः द्वैतप्रतीति से छुटकारा पा जाना ही आनन्द प्राप्त करना है। श्रुति कहती हे- 'तत्र कः मोहः कः शोकः, एकत्वमनुपश्यतः।'

सदानन्द के गुरू जीवमुक्त हो गये है- जीवन्मुक्त की दो दशायें होती है-

(1) जहॉ सांसारिक द्वैतप्रतीति-ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान-अद्वैत में विलीन हो जाते है। (2) जहॉ बाह्य भेद इन्द्रियों से प्रतीत तो होते हैं, पर उनसे अद्वैत में बाधा नहीं पड़ती।

3. यथामति-वेदोपनिषत् से प्रमाणित एवं निःसृत वेदान्तशास्त्र का जो अत्यन्त गम्भीर विषय है, उसे सीमित शक्ति रखने वाले मनुष्य के द्वारा विवेचित होना असम्भव है, अतः ग्रन्थकार कहता है कि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार व्याख्या में प्रवृत्त होऊँगा। जैसे-'अपि महति जलार्णवे निमग्नाः, सलिलमुपादयते मितं हि मीनाः।'

3. **वेदान्तो नामोत्पनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि शारीरकसूत्रादीनि च।।**

अनुवाद-उपनिषदों को प्रमाणस्वरूप मानकर चलने वाले शास्त्र वेदान्त हैं तथा तदनुसारी (उपनिषदों का अनुसरण करने वाले) शारीरिक (ब्रह्मा्र) सूत्र भी वेदान्त हैं।

व्याख्या 1. वेदान्त-'वेदान्त' शब्द की 'वेदानाम् अन्तः इति वेदान्त' इस वृत्ति के अनुसार वेदो का अन्त (अन्तिम भाग उपनिषत्) है। वेदान्त कई अर्थो में उपयुक्त है-

(क) वेदशब्वाच्य संहिता-ब्रह्मा्रण, आरण्यक तथा उपनिषद् ग्रन्थों में इसकी रचना सबसे अनत में (उपनिषदों से) हुई है।

(ख) इस काल तक वेदशब्दवाच्य सम्पूर्ण ग्रन्थ मौखिक रूप में ही थे उनका ज्ञान केवल गुरू से प्राप्त किया जा सकता था और गुरूजन भी वैदिक शिक्षाक्रम में इन्हें (वेदान्त) सबसे अन्त में पढ़ाते थे क्योंकि यज्ञादि के रहस्यों तथा दार्शनिक विचारों से युक्त होने के कारण ये अधिक जटिल एवं कठिन थे।

(ग) वेदों के स्वाध्याय क्रमानुसार उपनिषदों का अन्त में पाठ करना पुण्य समझाा जाता था।

(घ) आचार्यो के मतानुसार वेद (ज्ञान) उपनिषद् ग्रन्थों में अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त कर गया है। इनमें ज्ञान की चरम सीमा है।

2**. उपनिषत्**-'उपनिषत्' शब्द ज्ञानकाण्ड के उस विशाल दार्शनिक साहित्य को बोधित करता है जो वैदिक कर्मकाण्ड की प्रतिक्रिया से उत्पन्न हुआ। लेकिन इस शब्द के मूल अर्थ के विषय में कुछ मतभेद है। यह उप और नि उपसर्गपूर्वक सद् धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। 'षद्लृविशरणगत्यवसादनेषु' के अनुसार सार सद् धातु के विशरण (नष्ट होना), गति (जाना) तथा अवसादन (शिथिल करना) तीन अर्थ हैं। शड्कराचार्य अपने कठोपनिषद् भाष्य में इन तीनों अर्थो का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत करते है-

'अविद्यादेः संसारबीजस्य विशरणाद् विनार्शनाद्.....पर ब्रह्म वा गमयतीति ब्रह्मा्रगमयितृत्वेन योगाद्.....गर्भवासजन्मजराद्योपनिषत्' (विशरण) इसके पढ़ने से मोक्षेच्छुकों की संसारबीजरूपी अविद्या नष्ट हो जाती है। (गति) वह ब्रह्म की प्राप्ति कराती हैं। (अवसादन) तथा मनुष्य के गर्भवास, जन्म, मृत्यु आदि दुःख सर्वथा शिथिल हो जाते हैं।

शड्करराचार्य जी के कथनानुसार तो उपनिषद् का मुख्य अर्थ ब्रह्मविद्या और अप्रधान अर्थ है। ब्रह्मविद्याप्रतिपादक ग्रन्थविशेष-

तस्माद् विद्यायां मुख्यया वृत्या उपनिषच्छब्दो वर्तते ग्रन्थे तु भक्त्या.....।

नि पूर्वक सद् धातु का अर्थ बैठना भी होता है। 'उप' अपसर्ग समीप का सूचक है। इस भाँति उपनिषद् शब्द से समीप में बैठने का भाव ध्वनित होता है। विभिन्न विद्वानों ने 'समीप में बैठने' के कारण की व्याख्या अनेक प्रकार से की है। वस्तुतः उपनिषत् का मूल और प्राचीनतम भाव था- किसी गुप्त ज्ञान की उपलब्धि के लिये शिष्य का गुरू के समीप बैठना। विकास की दूसरी अवस्था में इसका अर्थ हुआ-वह गोपनीय सिद्धान्त या ज्ञान जो ऐसी गुप्त स्थिति में दिया जाय। इसी से उपनिषदों के लिये 'रहस्यम्' पर्याय शब्द प्रयुक्त होता है।

3.**शारीरकसूत्रादीनि**-विद्वन्मनोरन्जिनी में शारीरकसूत्र शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार बताई गई है- 'शरीरमेव शरीरकं तत्र भवो जीवः शारीरकः से सूत्र्यते याथातथ्येन निरूप्यते यैस्तानि शारीरकसूत्राणि अथातो ब्रह्मजिज्ञासेत्यादीनि।' अर्थात् कुत्सार्थक का प्रत्यय शरीर शब्द से लगकर शरीरक बनकर- 'तत्र भवः' से अण् प्रत्यय जुड़कर शारीरक शब्द व्युत्पन्न होकर अर्थ होगा-कुत्सित शरीर में रहने वाला जीवात्मा। उसे जीवात्मा का यथार्थ रूवरूप (ब्रह्मत्व का विचार) का निरूपण जिनसूत्रों द्वारा होता है, वे शारीरक सूत्र कहलाते है। शारीरक सूत्रों के रचयिता व्यास महर्षि हैं। आदि षब्द श्रीमद्भगवद्गीता तथा इसी भाँति के अन्य ग्रन्थों का ग्राहक है। इन में से शारीरक सूत्र ही ग्रन्थ का मूल नाम प्रतीत होता है।

4. अस्य वेदान्तप्रकरणत्वात् तदीयैः एव अनुबन्धैः यद्वत्तासिद्धेः, न ते पृथगालोचनीयाः।।

अनुवाद-यह वेदान्तसार वेदान्त का ही अड़ग है अतः उसी वेदान्त के अनुबन्धों से ही अनुबन्धवत्ता सिद्ध होने के कारण उनका पृथक् निर्देश करने की अपेक्षा नहीं।

व्याख्या -1. प्रकरण-पुराण आदि के वचनानुसार 'प्रकरण' शब्द की परिभाषा इस प्रकार है-

शास्त्रैकदेशसम्बद्धं शास्त्रकार्यान्तरे स्थितम्।

आहुः प्रकरणं नाम ग्रन्थभेदं विपश्चितः।।

विद्वान् लोग एक शास्त्र के एक भाग के प्रतिपादक तथा प्रयोजनवश अन्य शास्त्रों के भी उपयुक्त अंशों को ग्रहण करने वाले (विषय प्रतिपादन की दृष्टि से सम्बन्ध रखने वाले) ग्रन्थान्तर भी प्रकरण कहे जाते है। यथा प्रस्तुत ग्रन्थ 'वेदान्तसार' वेदान्त दर्शन का प्रकरण है।

2. **अनुबन्ध**-किसी भी ग्रन्थ का पठनारम्भ करते समय-

(क) इसे पढ़ने का अधिकारी कौन है? (ख) इसमें कौन सा विषय निबद्ध है? (ग) इसमें लिखित विषय तथा पुस्तक का क्या सम्बन्ध है? तथा (घ) इसे पढ़ने का क्या प्रयोजन है? इन चार प्रश्नों के प्रत्येक उत्तर को अनुबन्ध तथा चारों को मिलाकर अनुबन्धचतुष्टय कहा जाता है। जब तक कोई यह नहीं जानेगा कि यह ग्रन्थ किस विषय का है, मैं इसे समझ सकता हूँ कि नहीं, इसके पढ़ने से मुझे लाभ होगा अथवा नहीं, तब पढ़ने में प्रवृत्ति नहीं हो सकता। इसी से 'वाचस्पत्यम्' में कहा गया हे-

ज्ञातार्थ ज्ञातसम्बन्धं श्रोता प्रवर्तते।

ग्रन्थादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः।।

5. तत्र अनुबन्धों नाम अधिकारिविषय सम्बन्धप्रयोजनानि।।

अनुवाद-उनमें अधिकारी, वर्ण्य-विषय, प्रस्तुत पुस्तक तथा मूल ग्रन्थ का परस्पर सम्बन्ध तथा (अध्ययन का) प्रयोजन। ये अनुबन्ध कहे जाते हैं।

व्याख्या -1. तत्र-इस 'तत्र' का संकेत विद्वन्मनोरन्जिनी में वेदान्तशास्त्र अर्थ किया गया हैं, लेकिन सभी संस्कृत भाषा के ग्रन्थों में अनुबन्धों का वर्णन (पूर्व में) होने से वेदान्तशास्त्र अर्थ अधिक उचित नहीं हो सका। यहॉ 'अनुबन्धों में' यह शब्दार्थ अधिक उचित हैं। अब वेदान्तसार के रचयिता सदानन्दयोगीन्द्र क्रमशः अनुबन्धचतुष्टय का विशद विवेचन करते हैं। सर्वप्रथम वे अधिकारी को लेते हैं।

3.3.1 अधिकारी

6. अधिकारी तु विधिवदधीतवेदाङ्गत्वेनापाततोऽधिगताखिलवेदार्थोऽस्मिन् जन्मनि जन्मान्तरे वा काम्यनिषिद्धवर्जनपुरःसरं नित्यनमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनानुष्ठानेन निर्गतनिखिलकल्मषतया नितान्तनिर्मलस्वान्तः साधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता।

अनुवाद-अधिकारी तो वही हो सकता है, जिसने इस जन्म या पूर्व जन्म में पहले विधिपूर्वक वेद-वेदाङ्गो का अध्ययन करके सम्पूर्ण वेदों का अर्थज्ञान उपलब्ध करके काम्य कर्म तथा शास्त्रों के द्वारा निषिद्ध कर्मो का त्याग किया हो, तत्पश्चात् सम्पूर्ण पापों से मुक्त तथा अत्यधिक स्वच्छ हो गया हो, ऐसा चार साधनों से सम्पन्न प्रमाता ही (अधिकारी है)।

व्याख्या -1. विधिवदवधीतवेदाङ्गत्वेनापाततोऽधिगताखीलवेदार्थः-नित्यादि कर्मो का अनुष्ठान शास्त्रीय विधि के अनुसार किया जाने के कारण इन कर्मो को करने की योग्यता उपलब्ध करने के लिये वेद वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प निरूक्त, छन्द; व्याकरण और ज्योतिष) का अध्ययन करके उनके अर्थ को समझना जरूरी है। इसी को यहॉ उपर्यूक्त वाक्य के द्वारा बताया गया है। क्योंकि इस प्रकार भली-भॉति अध्ययन करने से स्वयं ही वेदों तथा वेदाङ्गों का अर्थज्ञान हो जाता है।

2. **अस्मिन् जन्मनि जन्मानतरे वा**-कुछ लोग वेदादि का स्वाध्याय तथा नित्यादि कर्मो के अनुष्ठान के बिना ही शुद्धचित वाले (तत्वदर्शी) हो जाते हैं तो सवाध्याय और कर्मानुष्ठान का आवश्यक होना क्यों बताया गया है? इस शंका का समाधान करने के लिये ग्रन्थकर्ता ने प्रस्तुत वाक्य सम्मिलित किया है। महात्मा विदुर तो शूद्र दासी के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण वेदादि के स्वाध्याय तथा नितयादि कर्मो के अनुष्ठान के अधिकारी न थे, तथापि महाभारतादि ग्रन्थों में तत्वदर्शी ज्ञानी महापुरूष के रूप में उनका उल्लेख हुआ है। तब वहॉ वेदस्वाध्याय तथा नितयादिकर्मानुष्ठान आवश्यक नहीं है, इसका निराकरण प्रसतुत वाक्य के द्वारा ही होता है। अन्तःकरण के निर्मल होने के लिये केवल एक ही जन्म की साधना पर्याप्त नहीं अपितु अनादि जन्मों की कल्मषतारूपी पत्तों को अन्तःकरण रूपी दर्पण से दूर करने के लिये सहाध्यवसाय, प्रयत्न तथा धैर्य की आवश्यकता है। गीता भी इसी का समर्थन करती है-

'तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पोर्वदेहिकम्।

यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुयनन्दन।।

प्रयत्नात्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्विषः।

अनेकजनमसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।।' (गीता)

अतः महात्मा विदुर के तत्त्वज्ञान की हेतुरूपा साधना पूर्वजन्मों में निष्पादित हुई होगी।

3. **काम्यनिषिद्धवर्जनपुरः सरं नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनानुष्ठानेन**-प्रसतुत अंश के द्वारा समस्त काल्मषों को दूर करने का हेतु बताया गया है। कामवासना से किये जाने वाले (कामवासना शक्ति की साक्षात् बाधिका है) काम्य कर्म तथा अन्तःकरण की शुद्धिबाधक अभक्ष्य भक्षण आदि निषिद्ध कर्मो का परित्याग किये बिना रागादि धासनाओं की कल्मषता का निवारण नहीं हो सकता तथा नित्य नैमित्तिक, प्रायश्चित तथा उपासना कर्मो का अनुष्ठान इन कल्मषों की निवृत्तयर्थ आवश्यक है,। अतः काम्य एवं निषिद्ध कर्मो को छोड़कर नित्यादि कर्मो को करना चाहिये।

4. **नीर्गतनिखिलकल्मषतया-निर्गतानि निखिलानि कल्मषानि यस्य सः निर्गतनिखिलकल्मषः तस्य भावः (तल् प्रत्यय) निर्गतनिखिलकल्मषता तथा।**' इस वृत्ति के अनुसार इस शब्द के द्वारा यह बताया गया है कि अन्तःकरण स समस्त रागद्वेष आदि वासनात्मक कल्मषों के निकल जाने पर अन्तःकरण शुद्ध होता हे।

5. **साधनचतुष्टयसम्पन्नः**- साधनानो चतुष्टयं इति साधनचतुष्टयं, तेन सम्पन्नः' इस वृत्यानुसार आगे कहे जाने वाले नित्यानित्यवस्तुविवेक, इहामुत्रार्थफलभोगविराग, शमादि छः सम्पत्तियॉ, तथा मुमुक्षुत्व इन चार साधनों से सम्पन्न होना ब्रह्म विद्या (वेदान्त) में अधिकार प्राप्त करने के लिये

आवश्यक होने से इनके बिना (साधनचतुष्टय के बिना) वेदान्त का अधिकारी होना असम्भव है।

6. **प्रमाता-**प्रमाणों के द्वारा जो लौकिक तथा वैदिक दोनों ही प्रकार के युक्त होकर वेदान्त का 'प्रमाता' अधिकारी हो सकता है।

7. **विधिवत** -ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित छात्र शास्त्रानुसार जो अध्ययन करता है, वह विधिवत् अध्ययन कहलाता है।

8.वेदांड्ग ये छः है-

शिक्षा कल्पो व्याकरण निरूक्तं ज्योतिषां गतिः।

छन्दसां लक्षणं चैव षडड्गों वेद उच्यते।। (बृहत्संहिता)

9. आचार्य शड्कर विशेष रूप से यह आवश्यक समझते हैं कि ज्ञान-प्राप्ति के लिये गुरू अत्यन्त आवश्यक है। वे कहते हैं-'सर्वज्ञोऽपि स्वातन्त्रयेण ब्रहा्रज्ञानान्शेषणं न कुर्यात्।' पन्चदशी .....4/39-41 भी स्पष्ट रूप से गुरू को आवश्यकता को प्रतिपादित करती है।

10 . **जन्मजन्मान्तर**-पुनर्जन्मवाद का सिद्धान्त भारत, सीलोन, बर्मा तिब्बत एवं चीन में स्वीकृत रहा है। इससे हम कह सकते हैं कि मानव जाति का अधिकांश इसे स्वीकार करता है। यदि हम इसकी उत्पत्ति एवं विकास को ठीक से खोज पाते तो अत्यन्त सन्तोष का विषय होता। प्रारम्भ में आर्य जाति और भारत में प्रारम्भिक बसने वाले आर्य इस सिद्धान्त को नहीं मानते थे। वे तो आत्म के सातत्य को स्वीकार करते थे। । सर्वप्रथम इस पुनर्जन्मवाद के सिद्धान्त का ज्ञान द्वान्दोग्य और वृहदारण्यक उपनिषद् से होता है। गौतम बुद्ध ने कर्म के स्थानान्तरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था।

अभ्यास प्रश्न-1

1-तैतिरीय उपनिषद् में चित् शब्द प्रयुक्त है-

क- ज्ञान के लिए ख- चेतन के लिए

ग- अनन्त के लिए घ-शुद्ध के लिए

2-अनृत शब्द से तात्पर्य है-

क- असत्य ख-सत्यासत्य

ग-परम सत्य घ- लोक सत्य

3-वेदान्त से तात्पर्य है-

क-वैदिक ख- वेद

ग-वेद का अन्तिम घ- वेदशून्य

4-वेदान्तसार के रचयिता हैं-

क-शंकराचार्य ख-रामानुज

ग-सदानन्द योगीन्द्र घ-दिवाकर

5- विधिवत कहलाता है -

क. ब्रहमचर्य में स्थित होकर शास्त्रानुसार अध्ययन

ख . ब्रहमचर्य का पालन

ग . केवल अध्ययन

घ . विधान से

6- जन्मान्तर का अर्थ होता है -

क . इस जन्म में

ख . जन्म के बाद

ग . जन्म से पहले

घ . अगले जन्म में

7- विज्ञानमानन्दं ब्रह्म यह कथन किस उपनिषद् का है

क . बृहदारण्यक

ख . कठ्

ग . मुण्डक

घ . तैत्तिरीय

8- आनन्दों ब्रह्मेति यह कथन है -

क . मुण्डक

ख . माण्डुक्य

ग . ऐतरेय
घ . तैत्तिरीय

खट्वाङ्गो नाम राजर्षिज्ञात्वेयत्तामिहायुषः

मुहूर्त्तात्सर्वमुत्सृज्य गतवानभयं हरिम्।

7**. काम्यानि-स्वर्गादीष्टसाधनानि ज्योतिष्टोमादीनि।**

अनुवाद-स्वर्गप्रपप्त्यादि कामनाओं से किये जाने वाले ज्योतिष्टीम यज्ञादि काम्य कर्म है।

व्याख्या -1. काम्य- जो कर्म किसी फल के उद्देश्य से किये जाते हैं, वे काम्य कर्म कहलाते हैं। कहा भी गया है-

'फलाद्देशेन विधियमाननानि कर्माणि काम्यानि'

स्वर्ग आदि की उपलब्धि इनका (काम्य कर्म का) फल है।

2. **ज्योतिष्टोम**-शब्दार्थ है अग्निसतुति में कथित मन्त्र किनतु यहॉ (प्रस्तुत अंश में) अग्निष्टोम योग से तात्पर्य है। ''ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामों यजेत' इसी श्रुति पर जौ वैदिक आदेश आधारित है, वह अग्निष्टोम यहॉ अभिप्रेत है। यद्यपि ज्योतिष्टोमादि धर्म के साधन एवं पुण्य देने वाले अच्छे कर्म होते हुए भी जन्म-मरण का हेतु है, क्योंकि अच्छे कर्म करने से भी उनका फल भोगने के लिये जन्म लेना ही पड़ेगा, चाहे वह किसी सम्पन्न घर के हों इस भॉति अच्छे कर्म भी उनका बन्धन होने से वेदान्ताधिकारी होने में वर्ण्य हैं। डॉ0 हॉग के अनुसार अनेक स्थानों में ज्योतिष्टोम तथा अग्निष्टोम एक ही अर्थ में आये हैं। ज्योतिष्टोम एक दिन का होता था, अग्निष्टोम पॉच दिन का होता था, पॉचवे दिन सोमदान किया जाता था। ये सभी सोमयज्ञ थे।

8. **निषिद्धानि-नरकाद्यनिष्टसाधनानि ब्राहा्रणहननादीनि।।**

अनुवाद- नरक जैसी अनिष्ट वस्तुओं को प्राप्त कराने वाले ब्रहा्रहत्या आदि निषिद्ध कर्म हैं।

व्याख्या 1.निषिद्ध-मनुष्य भ्रमवश जिन अनिष्टकारक कर्मो को अपने अभीष्ट का साधन मानकर करता है तथा वेदों में 'ब्राहा्रणों ने हन्तव्यः' इत्यादि श्रुतियों द्वारा जिनका निषेध किया है वे निषिद्ध कर्म कहे जाते हैं। विद्वन्मनोरन्जिनी के अनुसार निषिद्ध कर्म कहे जाते हैं। -

''भ्रमावगतेष्टसाधनतानिषेधकनन्पदयोगिवाक्यगम्यानि निषिद्धानि''।

2. **ब्राह्मणहनन**- 'ब्राह्मणों न हन्तव्यः' आदि श्रुति निषेधद्वारा ब्रह्महत्या (ब्राह्मण की हत्या) निषिद्ध की गई है। इस भॉति गोहत्या का भी शास्त्रों में निषेध किया गया है। धमशास्त्रों में महापातक निम्नलिखित कहे गये है-

''ब्रह्महत्यासुरापानं''

मनुस्मृति 4/1/165,166,7/380,381, 11/72 आदि में ब्रह्महत्या को महान् पाप कहा गया है।

9. **नित्यानि-अकरणे प्रत्यवायसाध्नानि सन्ध्यावन्दनादीनि**।।

अनुवाद- जिनके न करने से हानि हो, वे नित्य कर्म कहलाते हैं उदाहरणार्थ सन्ध्यावन्दन आदि।

व्याख्या - 1. नित्य- जिन कर्मो को रोकने से कोई विशेष पुण्य नहीं होता किन्तु न करने से पाप बढऋ जाता है, नित्य कर्म कहे जाते हैं।

2. **सन्ध्यावन्दनादि**- जैसे प्रतिदिन स्नान तथा दन्तमार्जन से कोई पुण्य नहीं होता लेकिन यदि किया जाय तो शरीर में मल इकठ्टा हो जाने से स्वस्थ्य विकृत हो जाता है, उसी भॉति जाने अनजाने ही जो छोटे-मोटे पाप उत्पन्न हो जाते हैं, उन्हें एकत्रित होने से बचने के लिये सन्ध्यावन्दन आदि कार्य किये जाते हैं तथा नित्य कर्म कहे जाते है। कोलब्रुक कहते हैं-प्रातः, दोपहर और सायंकालीन सन्ध्यास्नान की विशिष्ट प्रतिभा आज भी माध, फाल्गुन और कार्तिक स्नानों में प्राप्त होती है। प्रायः पवित्र नदियों में स्नान करते हैं। स्नान के साथ गायत्री का जप सन्ध्या की विशेषता है।-'तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।' पन्चमहायज्ञ भी नित्यकर्मो में स्वीकार किये जाते हैं- ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, नृयज्ञ तथा पितृयज्ञ। (क) वेदान्तियों के अनुसार सन्ध्यादि न करने पर कोई नया पातक नहीं होता किन्तु करने पर नये पाप का अवरोध होता है, (ख) मीमांसकों के अनुसार सन्ध्यादि का न करना नया पाप उत्पन्न करता है। अतः वेदान्ती सन्ध्या को अनिवार्य नहीं मानते हैं।

10 नैमित्तिकानि-पुत्रजन्माद्यनुबन्धीनि जातेष्यादीनि।।

अनुवाद-पुत्रोत्पत्ति आदि के अवसर पर (शास्त्रों में निर्दिष्ट) ज्ञातेष्टि यज्ञ आदि नैमित्तिक कर्म कहे जाते हैं-

व्याख्या -1. **नैमित्तिक**- किसी निमित्त को उपलब्ध कर अवश्य कर्त्तव्यता होने के कारण से जो श्रुतियों द्वारा अभिहित किये गये हैं, वे नैमित्तिक कर्म कहलाते हैं। विद्वन्मनोरन्जिनी भी कहती है-

'निमित्तमात्रमासाद्यावश्यकर्त्तव्यतया विहितानि नैमित्तिकानि''

2. जातेष्टि-पुत्र उत्पन्न होते ही शास्त्रों द्वारा विहित विधि के अनुसार पिता जो यज्ञादि के द्वारा

जातकर्म संस्कार करता है उसे ही 'जातेष्टि' कहा जाता है। श्रुतिवाक्य इस प्रकार है-
''वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत् पुत्रे जाते।''

11. प्रायश्चित्तानि-पापक्षयसाधनानि चान्द्रायणादीनि।।

अनुवाद-पापक्षालनार्थ किये जाने वाले चान्द्रायण आदि व्रत प्रायश्चित कर्म कहे जाते हैं।

व्याख्या - 1. प्रायश्चित-शास्त्रों में विहित कर्म को न करने से तथा षास्त्रों द्वारा निषिद्ध कर्मो को न रोकने से जो पाप उत्पनन होता है उसके निवारणार्थ जो कर्म किये जाते हैं, उन्हें प्रायश्चित कर्म कहते हैं।

'विहिताकरणप्रतिनिषिद्धसेवारूपनिमित्तविशेषानुबन्धीनि प्रायश्चितानि।'

2.चन्द्रायण-मनुस्मृति में चान्द्रायण चार प्रकार का कहा गया है- पिपीलिकामध्य, यवमध्य, गति और शिशु एक प्रकार का लोकविख्यात प्रायश्चित व्रत है। इसमें चन्द्रमा के बढ़ने और घटने के अनुसार ही आहार (ग्रास) बढ़ाया और घटाया जाता है। मनुस्वमृति इसके अनुष्ठान की विधि निम्न प्रकार से कहती है-

''एकैकं ह्रासयेत् पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत्।
डपसपृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम्।''

अर्थात् पूर्णिमा को पन्द्रह ग्रास खकर कृष्णपक्ष में क्रमशः एक-एक ग्रास घटाते-घटाते चतुदर्शी को एक ग्रास खाकर अमावसया को पूर्ण व्रत समय में प्रतिदिन तीन बार प्रातः मध्याह्न तथा सायं सवन (स्नान) करना चाहिये।

12. उपासनानि-सगुणब्रह्मविषयमानसव्यापाररूपाणि शाण्डिल्यविद्यादीनि।।

अनुवाद- सगुण ब्रह्मविषयक मनोवृत्ति के स्थिरीकरण के लिये किये जाने वाले कर्म उपासना कहे जाते है। जैसे-शाण्डिल्यविद्या आदि।

व्याख्या - 1**. उपासनानि**- चराचर जगत् को ब्रह्म का रूप जानकर उसमें आदरपूर्वक चिरकाल पर्यन्त अपनी मोनवृत्ति को स्थिर करने के लिये जिन कर्मो को किया जाता है, उपासना कर्म कहते है। उपासना और ज्ञान दो पृथक्-पृथक् वस्तुयें हैं । ज्ञान में ज्ञाता तथा ज्ञेय एक-एक हो जाते है तथा आराध्य और आराधक पृथक-पृथक हो जाते हैं।

2. **शाण्डिलयविद्यादि**- शाण्डिल्य ऋषि ने सर्व खल्विदं ब्रह्म' से लेकर 'स क्रतुं कुवीत मनोमयः प्राणशरीरे भारूपः' यहॉ छान्दोग्य उपनिषद् में कहा है कि संसार और आत्मा की ब्रह्मरूप में उपासना करनी चाहिये इसीलिये इसे शाण्डिल्य विद्या कहा गया है; 'आदि' शब्द से शतपथ ब्राह्माण मे कथित 'सेआत्मनमुपासीत, मनोमयम्' आदि विद्याये अभिप्रेत हैं।

3. **सगुण ब्रह्म**- ब्रह्म जो कि उत्पत्ति पालन एवं विनाशादि युक्त है, सगुण कहलाता है। उपासना पद्धति में परम सत्ता की जिस रूप में साधना की जाती है वह सगुण रूप में साधना की जाती है वह सगुण रूप में ही होती है।

13. **एतेषां नित्यादीनां बुद्धिशुद्धिः परं प्रयोजनमुपासनानां तु चित्तैकाग्रयम्। ''तमेतमात्मानं**

वेदानुवचनेन ब्राह्मण विविदिषन्ति यज्ञेन'', इत्यादिश्रुतेः ''तपसा कल्मषं हनित'' इत्यांदिस्मृतेश्च।।

अनुवाद- इनमें (इन कर्मो में) से नित्य कर्मो के अनुष्ठान का परम प्रयोजन बुद्धि कि शुद्धि तथा उनासनकर्मो का चित्त को एकाग्र करना है।

व्याख्या -1 परंप्रयोजनम्- इसे यहॉ परम कहना अन्य सांसारिक प्रयोजनों की अपेक्षा इसे अधिक महत्व देना ही है। वस्तुतः बन्धन से मोक्ष ही परम प्रयोजन है। मुक्ति का विचार वेदों और ब्राह्मणों में नहीं पाया जाता है, सर्वप्रथम यह श्वेताश्वतरोपनिषद् में पूर्ण विकसित रूप से उपलब्ध होता है।

2. **उपासनानं तु चित्तैकाग्रयम्**- पितृलोकप्राप्ति तथा सत्यलोकोपलब्धि चित्त को एकाग्र करने के साधनों का अवानतर फल है। मुख्य फल चित्त को एकाग्र करना ही है।

3. **विविदिषन्ति-** शड्करचार्य के कथनानुसार कर्मकाण्ड मुक्ति का साधन साक्षात् रूप से नहीं। वेदान्त के पाठकों के लिये ऋतेः ज्ञानान्न मुक्तिः यह सदाचार प्रक्रिया मोक्ष न होकर (मोक्ष के) साधन ज्ञान तक पहुॅचाने वाली है। इसलिये ज्ञान कर्म का एकत्रीकरण का सिद्धान्त यहॉ माना नहीं है।

4**. नित्यादीनाम्**-नैमित्तिक और प्रायश्चित्तादि कर्म इसमें सम्मिलित हैं। स्मृति कहती है- **''नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितच्क्षयम्।''**

गीता भी कहती है-

''**स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः**।(18/45)

नैष्कर्म्य सिद्धि में भी नित्य कर्म को सर्वोच्च ाान के साधन के रूप् में स्वीकार किया है। वस्तुतः निर्मल म नही ब्रहा्र का अनुभव कर सकता है। नित्यादि कर्मो से बुद्धि में निर्मलता आती है।

14. **नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनानां त्ववान्तरफलं पितृलोकसत्यलोकप्राप्तिः कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः'' इत्यादिश्रुते।।**

अनुवाद-नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित एवं उपासना कर्मो का गौण फल तो उनसे पितृलोक तथा सत्यलोक की उपलब्धि है। कर्म के द्वारा पितृलोक तथा विा के द्वारा सत्यलोक (देवलोक) की प्राप्ति होती है।' श्रुतिवचन इसमें प्रमाण है।

व्याख्या -1. अवान्तरफलम्-जिस भॉति वृक्षारोपण का प्रधान फल, फलों को प्राप्त करना है तथा आनुषड्गिके फल छाया तथा गन्धादि प्राप्त करना है, उसी भॉति नित्य नैमित्तिक कर्मो का प्रधान फल चित्त की शुद्धि तथा समाधि तथा अवान्तर फल सत्यलोक की उपलब्धि है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र

आम्रवृक्ष का रूपक प्रस्तुत करता है-

'आम्रेफलार्थे निमित्ते छायागन्धावुत्पद्येते।'

2**. सत्यलोक**-ऊपर के सात लोकों में सबसे ऊपर स्थित समझा जाने वाले ब्रहा्रलोक ही सत्यलोक है। सत्यलोक से यहॉ मोक्ष अभिप्रेत नहीं है।

3**. विद्यया**-विद्या शब्द का तात्पर्य यहॉ उपासना से है न कि मोक्ष के साधनरूप यथार्थ ज्ञान का फल मोक्ष है किसी भी लोक की प्राप्ति नहीं। यहॉ तो विद्या से देवलोक की प्राप्ति बताई गई है अतः यहॉ विद्या से तात्पर्य उपासना है।

4. **नित्यनैमित्तिक**-इसमें प्रायश्चित कर्मो को छोड़ दिया गया है क्योकि वे मृत्यु के बाद कोई परिणाम उत्पन्न नहीं करते है।

5.**पितृलोक**-यह भुवः लोक से सम्बन्ध रखता है।

6. ब्रह्म सूत्रभाष्य में शड्करचार्य ने लिखा है-'तत्र कानिच्त् ब्रह्मणः उपासनानि अभ्युदयार्थानि, कानिचित् क्रममुक्त्यर्थानि, कानिचित् कर्मसमृद्धयर्थानि।'

छान्दोग्य उपनिषद् भाष्य में उनका मत है ''उपासनं तु यथाशास्त्रसमर्थितं किन्चिदालम्बनमुपादाय तसिमन् समानचित्तवृत्ति सन्तानकरणं तद् विलक्षणप्रत्यानन्तरितमिति।''

आचार्य शड्कर तथा सदानन्द योगीन्द्र के उपासना सम्बन्धी विचारों में कुछ थोड़ा अन्तर है। नैष्कर्म्यसिद्धि 1/52 में जिस प्रकार विशद् विवेचन किया गया है उससे सभी विचारों का समन्वय हो जाता है।

15.साधनानिनित्यानितयवस्तुविवेकेहामुत्रार्थफलभोगविरागशमादिषट्कसम्पत्तिमुमुक्षत्वानि।

अनुवाद-नित्य तथा अनित्य वस्तु का विवके, ऐहलौकि तथा पारलौकि फल के भोग से अनासक्ति, शमादि छः सम्पत्तियॉ तथा मोक्षप्राप्ति की कामना-ये (चार) साधन है।

व्याख्या - साधनानि-प्रतिपादित साधनों में से क्रमशः पूर्व-पूर्व उत्तरोत्तर की उपलब्धि का साधन है। प्रथम नित्यानितय वस्तु के विवके के बिना फलभोगों से विराग नहीं उत्पन्न हो सकता तथा वैराग्य के बिना शम, दम, उपरति, तितिक्षा श्रद्धा, समाधानादि छः सम्पत्तियॉ नहीं प्राप्त हो सकती और इन छः सम्पत्तियों को उपलब्ध किये गये बिना मोक्ष की इच्छा नहीं होती, अतः क्रमशः पूर्व-पूर्व साधन

उत्तरोत्तर को प्राप्त करने में साधनभूत हैं।

16. नित्यानित्यवस्तुविवेकस्तावद्ब्रह्मैव नित्य वस्तुतोऽन्यदखिलमनित्यमिति विवेचनम्।।

अनुवाद-केवल ब्रह्म ही नित्य वस्तु है, उसके अतिरिक्त सम्पूर्ण जगत् अनित्य है ऐसा विवेचन नित्यवस्तुविवेक है।

व्याख्या -1. नित्यानित्यस्तुविवेक-काल, स्थान आदि की सीमा जिस वस्तु को बद्ध नहीं कर सकती वह वस्तु नित्य है, इसके विपरीत काल की सीमा से बँधने वाली वस्तु अनित्य है। संसार की सभी वस्तुएॅ काल सीमा से बद्ध हैं अतः अनित्य हैं और ब्रह्म तीनों कालों से बाधित न होने के कारण नित्य है। ब्रह्म का नित्य होना श्रुतियों के वचनों द्वारा निम्न रूपों से सिद्ध है-

(क) **नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम्।**

(ख) **अजो नित्यः शाश्वतः।**

(ग) **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।**

(घ) **आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः।**

ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य सब कुछ अनित्य है, इसमें निम्न श्रुतिवाक्य प्रमाण है-

(अ) **यो वै भूमा तदमृतम्, यदल्पं तन्मर्त्यम्।**

(आ) **नेह नानास्ति किन्चन।**

(इ) **आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् नान्यत् किन्चनामिषत्।**

2. **नित्यानित्यवस्तुविवेक- यह प्रथम साधना है।**

17.ऐहिकानां स्रक्चन्दनवनितादिविषयभोगानां कर्मजन्यतयानित्यतववदामुमिष्काणामप्यमृतादिविषयभोगानामनित्यतया तेभ्यो नितरां विरतिः- इहामुत्रार्थफलभोगविरागः।।

अनुवाद-इस लोक के माला, चन्दन, स्त्री आदि विषयों के भोग तो कर्मजन्य होने के कारण अनित्य हैं, उसी प्रकार उस लोक (परलोक) के अमृतादि विषयों के भोग भी (कर्मजन्य होने के कारण) अनित्य होंगे ऐसा निश्चय करके ऐहलौकि और पारलौकिक उन वस्तुओ से उदासीन होने को इहामुत्रार्थफलभोगविराग कहते है।

व्याख्या -कर्मजन्यतया- 'यत्-यत् कर्मजन्यम् तत् तत् कार्यम्' और यत् यत् कार्य तत्-तत्

अनित्यम्' अर्थात् जो कर्म से उत्पन्न होता है वह कार्य है और जो कार्य है वह अनित्य होता है।

2. **इहामुत्रार्थफलभोगविरागः**-'इह अमुत्र अर्था एव फलं तस्य भोगः तस्मात् विरागः' इस वृत्ति के अनुसार इस लोक में तथा परलोक में प्राप्त होने वाले सुन्दर पदार्थ ही कर्म से उत्पन्न होने के कारण फल हैं, उन फलों का भोग करने के प्रति विरक्तियुक्त बुद्धि का न होना ही इहामुत्रार्थफलभोगविराग है। विरागोत्पत्ति के लिये यहॉ पर जो युक्ति बताई गयी हैं, वह निम्न श्रुतिवचन का अनुवाद स्वरूप है-

''तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते।''

3. **अमृतादि**-अमृतादि विषय स्वर्ग से प्राप्त होते हैं जिनका उपभोग जब तक पुण्य रहते हैं होता है तथा पुण्य क्षीण होने पर जीवात्मा को पुनः मर्त्यलोक में आना पड़ता है और नया जन्म ग्रहण करना होता है।

4. **अनित्यता**-छान्दोग्य उपनिषद् स्पष्ट करता है'' यत् तथा इह कर्मजितः लोक क्षीयते एवमेव अमुत्रपुण्यजितः लोकः **क्षीयते।''**

5. विराग-यह साधना का द्वितीय पग है।

6. **ऐहिकानां**-पन्चभौतिक शरीर से सम्बन्धित।

18. शमादयस्तु-शमदमोपरतितिक्षासमाधानश्रद्धाख्याः।।

अनुवाद-शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा आदि शमादि षट्य सम्पत्ति है।

व्याख्या -1. शमादि-जिस प्रकार भूख प्यास शान्त करने के लिये जल-अन्न है,और भूखे तथा प्यासे प्राणी का चित्त बार-बार पानी की ओर दौड़ा करता है, उसी भॉति तत्वज्ञान के साधन श्रवण, मनन इत्यादि हैं यहॉ 'आदि' शब्द से 'शम' की भॉति दम, उपरति आदि अभिप्रेत हैं।

इन गुणों के अभाव में मुमुक्षु मोक्ष की अत्यन्त अपेक्षा की अनुभूति नही करता है। बिना व्रती मुमुक्ष् के मोक्ष की प्राप्ति दुस्तर ही रहती।

19. **शमस्तावत्-श्रवणादिव्यतिरिक्तविषयेभ्यो मनसो निग्रहः।।**

अनुवाद-उनमें से श्रवण आदि के अतिरिक्त सांसारिक विषयों से (उस ओर अप्रवृत्ति होने वाले) मन को रोकनेवाली वृत्ति शम कहलाती है।

व्याख्या -1. शम-श्रवण-मनन आदि को छोड़कर अन्य सांसारिक विषयों में बार-बार दौड़कर जाते हुए मन को एक विशिष्ट प्रकार की अन्तःकरण की वृत्ति रोकती है। इसी मनोनियन्त्रणकत्रीं वृत्ति को शम कहते हैं।

2. **निग्रह**- शम मन का वह विशिष्ट वृत्ति अथवा व्यापार है, जो मन को भौतिक विषयसुखों के पीछे

भागने से रोकता है।

3. **श्रवणादि**- वेदशास्त्रों का अध्ययन, श्रवण, चिन्तन और आचारण।

4. भगवान् श्रीकृष्ण ने भी 'शम' को ब्रह्मज्ञान के लिये अत्यावश्यक कहा है। यथा-''योगारूढ़स्य शमः कारणमुच्यते।'' (गीता 6/3)

20. दमः-बाह्येन्द्रियाणां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यो निवर्तनम्।।

अनुवाद-उन (वेदाध्ययनादि विषयों) से अतिरिक्त विषयों बहिरिन्द्रियों को रोकने को दम कहते है।

व्याख्या -1 दमः-ब्रह्म के साक्षात्कार के साधन रूप श्रवण मनन आदि से अतिरिक्त विषयों से नेत्र, कर्ण आदि बाहिरिन्द्रियों को हटा लेना ही दम कहा जाता है। दम को श्रीकृष्ण ने गीता में ब्रह्मज्ञान का हेतु कहा है-

यथा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

2.**बाह्येन्द्रिय**-ये दो प्रकार की होती है-कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय।

पॉच कर्मेन्द्रिय- पाणि, पाद, पायु, उपस्थ तथा मुख एवं-

पॉच ज्ञानेन्द्रिय- चक्षु, श्रोत्र,त्वक् घ्राण एवं रसना अन्तरिन्द्रिय हैं, दम का अर्थ है मन का वह कार्य जो बाह्येन्द्रिय को उनके विषयों से लौटाता है।

21. निवर्तितानामेतेषां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यो उपरमणमुपरतिस्थवाविहितानांकर्मणां विधिना परित्यागः।।

अनुवाद-इन (बाहार् विषयों) से नियन्त्रित की गई इन्द्रियों को (बहारतिरिक्त) विषयों से निरोध उपरति है अथवा शास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट कर्मो का शास्त्रोक्त विधि के अनुसार त्याग उपरति कहलाता है।

व्याख्या -1. **विहितानां कर्मणां विधिना परित्यागः**-वेदविहित कर्मो को संन्यास लेते समय अश्रद्धा के कारण मनमाने ढंग से त्याग नहीं किया जाता, अपितु शास्त्रोक्त विधि से परित्याग किया जाता है। इसका कारण है कि कर्मो के परित्याग की विधि श्रुतियों तथा स्मृतियों में कही गई है। मनुस्मृति कहती है-

प्रजापत्यां निरूप्येष्टि सर्ववेदसदक्षिणाम्।

आत्मन्यग्नीय् समारोप्य ब्राह्मणो प्रवजेद् गृहात्।।

उपरति-शमादिकों की भॉति सन्यास भी आत्मज्ञान का अन्तरङ्ग साधन होने से सुमुक्षु के लिये यह भी आवश्यक है। इस विषय में 'नैष्कर्म्यसिद्धि परमा सन्यासेनाधिगच्छति' गीता वाक्य तथा 'न कर्मणा न प्रजया घनेन त्यागेनैके अमृत्वमानशुः' इत्यादि श्रुति प्रमाण है। यज्ञादि कर्मो में विक्षिप्त मन रहने से तथा ब्राह्मणतव, क्षात्रियत्व इत्यादि विपरीत भावनाओं के बने रहने तक भली प्रकार वेदान्त के अर्थ का विचार न हो पाने से श्रुतिस्मृति के वचनानुसार कर्त्तव्यरूप आत्मज्ञान के अङ्गभूत संन्यास को उपरति कहते हैं । वस्तुतः उपरति मन का वह कार्य है, जो दमित इन्द्रियों को उनके विषयों में पुनः जाने से रोकता है। वस्तुतः उपरति शम का दम से उत्यल्प अन्तर रखती है।

3. **परित्याग**-श्रुतियों तथा स्मृतियों में सन्यास का समर्थन है-

(1) **सन्याससंयोगात् यत् यः शुद्धसत्वः।** **(मुण्डकोपनिषद्)।**

(2) त्वम्पदार्थविचाराय सन्यासः सर्वकर्मणाम्।
(उपदंशसाहस्री)।

(3) प्रवृत्तिलक्षणो योगः ज्ञानं सन्यासलक्षणम्।

तस्माज्ज्ञांन पुरस्कृत्य सन्यसेदिह बुद्धिमान्।।

(4) **यत् अहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्।** (जाबाल0)।

22. तितिक्षा-शीतोष्णादिद्वन्द्वसहिष्णुता।।

अनुवाद-सर्दी-गर्मी आदि को (शरीर धर्म समझकर) सहना तितिक्षा है।

व्याख्या -1. तितिक्षा-सर्दी-गर्मी, मान-अपमान तथा सुख-दःख आदि और इसी भॉति अन्य द्वन्द सबको यह समझ कर कि यह तो शरीर के धर्म है, आत्मा को यह सर्दी-गर्मी कुछ नहीं। इस प्रकार के ज्ञान से सबको सहन कर लेना तितिक्षा कहलाती है।

क्योंकि शीतोष्णादि शरीर से सम्बन्ध रखते हैं, आत्मा से नहीं आत्मा इन सबसे स्वतन्त्र है। विवेकचूड़ामणि कहती है

''सहनं सर्वदुःखानामप्रतिकारपूर्वक।

चिन्ताविलापर हितं सा तितिक्षा नगद्यते।।''

गीता 2/14 कहती है-

''मात्रा स्पर्शस्तु कौन्तेयः शीतोष्णसुखदुःखदाः।

आगमापायिनोऽनित्यास्तान् तितक्षिस्व भारत।।''

वस्तुतः विवेकरूपी दीपक से मिथ्या होने पर भी भासित होने वाले द्वन्दों का मर्षण ही तितिक्षा है।

23. निगृहीतस्य मनः श्रवणादौ तदनुगुणविषये च समाधिः समाधानम्।।

अनुवाद-वशीभूत मन को श्रवणादि एवं उसके अनुरूप विषयों में लगाने को समाधि कहते हैं।

व्याख्या -1. **तदनुगुणविषये**-उसके अनुरूप बताये गये विषय में अर्थात् गुयभक्ति अथवा विनय के

आचरण में सदा चिन्तन करना समाधान है।

2. **समाधान-**मन के वश में हो जाने पर उसे श्रवण-मनन तथा निदिध्यासन से एकाग्र कर देना अर्थात् अनवरत रूप से नित्य इन्हीं का चिन्तन करना समाधान है। गीता में श्रीकृष्ण कहते भी हैं-

'मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशय।'

3**. श्रवणादौ**- गुरू-सेवा, वेदान्त-ग्रन्थों का अध्ययन तथा उनका रक्षण। नृसिंहसरस्वती ने 'अभिमान का 'अभाव' आदि को ग्रहण किया है। गीता में सात्विक सम्पत्ति का ग्यारहवें अध्याय में बड़ा सुन्दर वर्णन है। समाधन के लिये अपरिग्रह अत्यन्त आवश्यक है। श्रुति कहती है-

''दण्डं आच्छादनं कोपीनं परिगृहेत् शेषं विसृजेत।''

24. गुरूपदिष्टवेदान्तवाक्येषु विश्वासः-श्रद्धा।।

अनुवाद-आचार्य के द्वारा उपदेश में दिये गये वेदान्त के वाक्यों में विश्वास करना श्रद्धा है।

व्याख्या -श्रद्धा- गुरू द्वारा कहे हुये वाक्यों में विश्वास करना श्रद्धा है। इसके बिना तत्वज्ञान प्राप्त होना असम्भव है। गीता भी कहती है-

''श्रद्धावाल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।''

श्रद्धा सारे पाप से छुड़ाने वाली है-

''अश्रद्धया परमं पापं श्रद्धा पापप्रमोचनी।'' (महाभारत)

वस्तुतः श्रद्धा के विषय में महाभारत तथा गीता में अनेक स्थलों पर कहा गया है, बिना श्रद्धा के वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति में अत्यनत कठिनाई है-

''श्रद्धामयोऽयं पुरूषः यो यत् श्रद्धः स एव सः।'' (गीता 17/3)

श्रद्धा के बिना या, दान, तप आदि भी असत् कहलाते हैं। यथा-

''अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् असदित्युच्यते पार्थ0।'' (गीता 17/28)

25. मुमुक्षुत्वं-मोक्षेच्छा।।

अनुवाद-मोक्ष की कामना ही मुमुक्षुत्व है।

व्याख्या - **मुमुक्षुत्वम्**- जब मुमुखु उपरिलिखित तीन साधनों से मुक्त हो जाता है त बवह मोक्ष की

अत्यन्त प्रचल इच्छा रखता है तथा वह आपने आध्याम्मिक गुरू से निरपेक्ष सत्य का ज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी बनता है। वृहदारण्यक उपनिषद् कहता है-

''यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा यस्य हृदिस्थिताः।

अथ मर्त्योऽमृतो भवत्वत्र ब्रह्र् समश्नुते।।''

आगे बृहदारण्यक पुनः कहता है-

''अथाकामयमानों योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामः।''

वस्तुतः आत्मकाम पूर्ण निष्काम होने से सभी कामनाओं से विमुक्त ही माना जायेगा।

26. एवम्भूतः प्रमाताधिकारी ''शान्तो दान्त'' इत्यादि श्रुतेः। उक्तन्च- ''प्रशान्तचित्ताय जितेन्द्रियाय च प्रहीणदोषाय यथोक्तकारिणे।

गुणान्विताय‌ानुगताय सर्वदा प्रदेयमेतत् सततं मुमुक्षुवे ।।इति।

अन्वय-प्रशानतचित्तय, जितेन्द्रियाय, प्रहीणदोषाय, यथोक्तकारिणे, गुणान्विताय, अनुगताय, च मुमुक्षुवे एतत् सकलं सर्वदा प्रदेयम्।

शब्दार्थ-प्रशान्तचित्ताय-शान्त चित्त वाले के लिये। **जितेन्द्रियाय**-ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रियों को अपने वंश में करने वाले के लिये अर्थात् इन्द्रियों को वशीभूत (जीतने)करने के लिए। प्रहीणदोषाय-जनम जन्मान्तरों में किये हुए पापों से रहित व्यक्ति के लिये, अर्थात् जिसके पाप-समूह नष्ट हो गये हों, उसके लिये अतः निर्मल अन्तःकरण वाले के लिये। **यथोक्तकारिणे**-वेद तथा शास्त्रों में कथित नियमों के अनुसार आचरण करने वाले के लिये। यथोक्तकारिणे-वेद तथा शास्त्रों में कथित नियमों के अनुसार आचरण करने वाले के लिये। **गुणान्विताय**-दया दाक्षिण्य, विवके, वैराग्य, उपरति, तितिक्षा आदि गुणों से युक्त व्यक्ति के लिये अनुगताय-श्रद्धायुक्त के लिये। **मुमुक्षुवे**- मोक्ष प्राप्ति की इच्छा रखने वाले के लिए। **एतत् सकलम्**-यह समसत आत्म सम्बन्धी ज्ञान। प्रदेयम्-देना चाहिये अथवा देने योग्य हैं।

अनुवाद-इस प्रकार का प्रमाता ही अधिकारी है। श्रुति के अनुसार 'शान्त दान्त हो।' जैसा कि कहा गया है- प्रशान्त चित्त वाले, वशी, निर्दोष, (काव्यादि) निदिष्ट कर्मो को करने वाले विवेकादिगुणसम्पन्न, आचार्यानुगामी, मोक्षप्राप्ति की कामना वाले व्यक्ति की यह (आत्मज्ञान) सदा ही देना चाहिये।

व्याख्या -1. **एवम्भूतः**-इस प्रकार का शम-दम आदि गुणों और नित्या नित्यविवके,

इहामुत्रार्थफलभोगविराग, षटक सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व आदि चार साधनों से सम्पन्न व्यक्ति (इस वेदान्तसार को पढ़ने का अधिकारी है)।

2. **शान्तो दान्त**-ये श्रुति शमादि षटक सम्पत्ति को शास्त्रसम्मत प्रमाणित करने के लिए उद्धृत की गई है तथा काण्व माध्यन्दिन शाखाओं में अलग-अलग रूप में प्राप्त होती है। काण्व शाखा वृह0 उप0 में इस प्रकार का पाठ है- 'शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षः समाहितो भूत्वस' के स्थान पर माध्यन्दिन शाखा में 'श्रद्धावित्तो भूत्वा' यह पाठ प्राप्त होता है। वेदान्तसार कर्ता ने दोनों का समन्वय कर दिया है और शमादिषट्कसम्पत्ति कहा है।

3. **प्रशान्तचित्ताय**-जिसका चित्तलौकिक तथा वैदिक व्यवहारों में सर्वथा भ्रमरहित होकर शान्त हो गया हो, वह प्रशान्तचित्त जीव (वेदान्तसार का अधिकारी है)।

4. **यथोक्तकारणे**-शास्त्रों द्वारा विहिन कर्मो को शास्त्रों के कथानानुसार ही करने वाला तथा शास्त्रों में वर्ज्य कहे गये (काम्य एवं निषिद्ध) कर्मो को शास्त्र निषेध होने से उन्हें न करने वाला जीव यथोक्तकारी है (उसे ही यह आत्मज्ञान देना चाहिये)।

5. **अधिकार**-वेदान्तसार के एक व्याख्याकार के अनुसार केवल सन्यासी ही वेदान्त ज्ञान के अधिकारी हो सकते हैं क्योंकि गृहस्थ का जीवन विविध-कर्त्तव्य कर्मो में व्याप्त रहने से उसके पास वेदान्त-ज्ञान के लिये आवश्यक पर्याप्त समय नहीं रहता है क्योंकि मुमुक्षु के लिये एक दीर्घ साधना का विस्तृत वर्णन सर्वत्र किया गया है।

6. **गुणान्विताय**-सद्सद् विवके, त्याग और क्षमा।

7. **प्रशान्तचित्ताय-** यह पद उपदेशसहस्री से उद्धृत है जो आचार्य शंड्कर द्वारा लिखित कही जाती है।

3.3.2 विषय, सम्बन्ध एवं प्रयोजन

विषयः-जीवब्रह्रैक्यं शुद्धचैतन्यं प्रमेय तत्र एव वेदान्तानां तात्पर्यात्।।

अनुवाद-(इस वेदान्तसार का) विषय-जीव और ब्रहा्र का एक होना (सर्वज्ञत्व और अल्पज्ञत्वादि) विरूद्ध धर्मो से विमुक्त शुद्ध चैतन्य का ज्ञान है। वही वेदान्त वाक्यों का लक्ष्य है।

व्याख्या 1. **जीवब्रह्मैक्यम** -जीव और ब्रहा्र का आत्यन्तिक भेद ही अदैतवाद का सार है।

विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार माया द्वारा आरोपित है, वास्तविक नहीं है। उपाधियों के कारण

प्रतिभासित होने वाले मिथ्या अभिन्नत्व को हटा देने पर केवल चैतन्यांश शेष रहता है, वही

पारमार्थिक है तथा ईश्वर और जीव में अभिन्नत्व (ऐक्य) है इसीलिए दोनों में अभेद है।

2.**शुद्ध चैतन्यम्**-जीव और ब्रह्म् का स्वरूप शुद्ध चैतन्य है। चैतन्य की शुद्धता सब धर्मो से अतीत होना और एक रूप होना है। प्रतीत होने वाले धर्म आरोपित होने से मिथ्या है। दूध और पानी मिल जाने पर भी यान्त्रिक उपायों से दोनों को अलग-अलग किया जा सकता है लेकिन ब्रह्म् तथा जीव में शुद्ध चैतन्यरूप होने के कारण तत्वतः एक्य है। उनमें प्रतीयमान भेद औपाधिक होने के कारण मिथ्या है। अज्ञान की उपाधि नष्ट हो जाने पर जीवत्व नष्ट हो जाता है, वह ब्रह्म् ही हो जाता है-'ब्रह्म्विद् ब्रहैव भवति।'

3.**प्रमेय**-प्रमा का आधार प्रमाणों से जाना जाने वला विषय प्रमेय है; किन्तु प्रमाण केवल भौतिक विषय के ही साधन हैं। ब्रह्म् अभौतिक होने से प्रमाण साध्य नहीं हो सकता तथा प्रमाणसाध्य नहोन से वह प्रमेय भी नहीं हो सकता। अतः स्वामी रामतीर्थ ब्रह्म् को ज्ञातव्य कहकर ज्ञान का विषय मानते है जो वेदान्त परिभाषा के अनुसार उचित है। 'अज्ञातं ब्रह्म्विषयः ज्ञातं ब्रह्म्प्रयोजनम्। प्रस्तुत वेदान्त परिभाषा में कहा गया है।

4. **विषय**-ये दूसरा अनुबन्ध है।

5. **वेदान्ततात्पर्य**-कपिल और कणाद आदि दार्शनिकों ने वेदानत का तात्पर्य प्रधान के अस्तित्व को सिद्ध करना स्वीकार किया है, किन्तु वेदान्त स्पष्ट रूप से सर्वाङ्गण विचार करने पर प्रतीत होता है कि वह ब्रह्म् को पारमार्थिक सत् सिद्ध करता है। कठोपनिषद् कहता है-

''सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति।''

6.वस्तुतः समस्त वेदान्तवाक्यों में 'ग्रीवास्थग्रैवेयक' न्याय से जीव और ब्रह्म की आत्यन्तिक एकता ही प्रतिपाद्य है। गीता भी कहती है-

''वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः।''

7.वृहदारण्यकोपनिषद् कहता है-

''आत्मा वा अरे दृष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः।।''

सम्बन्धस्तु-तदैक्यप्रमेयस्य तत्प्रतपादकोपनिषत्प्रमाणस्य च बोध्यबोधकभावः।।

अनुवाद-उन दोनों (जीव और ब्रह्म) का ऐक्य और उनके प्रतिपादक उपनिषत् वाक्य का

बोध्यबोधकभाव है।

व्याख्या -सम्बन्ध -जीव तथा ब्रह्म का अभेद (ऐक्य) ही यहॉ विषय है तथा उन दोनों के प्रतिपादक श्रुतिवाक्यों का जो बोध्यबोधकप्रभाव है, वह सम्बन्ध है । जीवब्रह्म का अभेद यहॉ बोध्य है तथा 'तत्वमसि ' आदि बोधक वाक्य हैं।

2**. तदैक्यप्रमेयस्य**- यद्यपि शुद्ध चैतन्य के अस्तित्व को प्रत्यक्ष प्रमाणित नहीं किया जा सकता है और उसकी व्याख्या की जा सकती है, केवल अप्रत्यक्ष रीति से उसे प्रमाणित किया जा सकता है और उसकी व्याख्या भी की जा सकती है अर्थात् अनुमान प्रमाण का आधार लेना होता है।

प्रयोजनंतु -तदक्यप्रमेयगताज्ञाननिवृत्तिः, स्वरूपानन्दावाप्तिश्च ''तरति शोकम् आत्मवित्'' इत्यादि श्रुतेः ''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'' इत्यादि श्रुतेश्च।।

अनुवाद-प्रयोजन तो उस (जीव ब्रह्म) के ऐक्य के ज्ञान के मध्य अज्ञाननिवृत्तिपूर्वक आत्मा के स्वरूपानन्द की प्राप्ति है। ''आत्मज्ञाता शोक से तर जाता है'' इत्यादि तथा 'ब्रह्माज्ञाता ब्रह्मा ही हो जाता है' इत्यादि श्रुतिवचन इसमें प्रमाण हैं।

व्याख्या -1**. प्रयोजन**- आत्मगत अज्ञान तथा उस अज्ञानजन्य सम्पूर्णप्रपन्च का निवृत्तिपूर्वक स्वरूप ज्ञान हो जाने पर जो अखण्डानन्द ब्रह्म की उपलब्धि होती है उसे प्राप्त करना ही इस वेदान्तसार (आत्मज्ञान) को पढ़ने का प्रयोजन है।

2**. स्वरूपानन्दावाप्ति** -वेदानतसार का मुख्य प्रयोजन अज्ञान का निवारण ही नहीं है, अपितु अपने स्वरूपानन्द की उपलब्धि भी इसका मुख्य प्रयोजन है। यदि सौभाग्य से कोई तत्ववेत्ता अच्छा गुरू प्राप्त हो जाता है तथा कृपापूर्वक 'तत्वमसि' आदि वाक्यों के द्वारा उपदेश देते हैं तो अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है तथा आनन्द का असीम सागर लहराता हुआ दृष्टिगोचर होता है इसलिये नित्य प्राप्त होने पर भी उसी अखण्डानन्द के स्वरूप की उपलब्धि करना वेदान्तसार का मुख्य प्रयोजन है।

एक लौकिक उदाहरण में इसे समझा जा सकता है जैसे एक मनुष्य, अपने गले में पहने हुए आभूषण को विस्मृत कर बैठता है, और दुखित एवं व्यथित होता है कि आभूषण खो गया है, किन्तु ज बवह किसी के द्वारा निर्देशित यह ज्ञान करता है कि वह तो उसके कण्ठ में हैं, इसी प्रकार का मानव अज्ञान होता है।

अयमधिकारी जन्ममरणादिवंसारानलतप्तोदीप्तशिराजलराशिमिवोपहारपाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं गुरूमुपसृत्य तमनुसरति 'समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' इत्यादि श्रुतेः।

अनुवाद- भीषण गर्मी से अत्यन्त सन्तप्त मनुष्य जिस प्रकार अपनी (तपनरूप) व्याकुलता को दूर

करने के लिये सरोवर के समीप जाता है उसी प्रकार यह (वेदाङ्ग ब्रह्मज्ञान ज्ञान का) अधिकरी जन्म, अवसान, बृद्धावस्था तथा रोगादि सांसारिक कष्टों से पीड़ित होकर, हाथ में भेंट लेकर ब्रह्म में

निष्ठावान् वेद अध्येता आचार्य के सामीप्य को प्राप्त कर उनका अनुयायी बनता है, जैसा कि 'समिधा हाथ में लेकर ब्रह्म में निष्ठायुक्त वेदाध्यायी (के समीप जाता है)' इत्यादि श्रुतिवचन से स्पष्ट है।

व्याख्या 1. वेदों तथा वेदाङ्गो में में पारङ्गत व्यक्ति को श्रोत्रिय कहते है। '**श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते**' (अष्ठाध्यायी) सूत्र से 'छन्दस् शब्द से 'अध्येता' अर्थ में घन् (घ=इय) प्रत्यय होकर तथा 'छन्दस' को 'श्रोत्र' आदेश निपातन से होकर श्रोत्रिय शब्द निष्पन्न होता है। वृहदारण्यक के निम्न वचनानुसार श्रोत्रिय पापहीन तथा निष्काम होना भी ईप्सित है-**'यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहत'**। छान्दोग्य उपनिषद् भी कहता हैः- 'आचार्यवान् पुरूषों वेद। श्रोत्रिय के विषय में स्मृति कहती है-

''जन्मना जायेते शूदः संस्काराद्विज उच्यते।

विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते।।''

2. **उपहारपाणि**-राजा, देवता और गुरू के पास कभी रिक्त हाथ नहीं जाना चाहिये, जैसा कि कहा भी है-

''रिक्तपाणिर्न सेवेत राजानं देवतां गुरूम्''

गुरू के समक्ष यथाशक्ति फल-फूल आदि कोई न कोई भेंट लेकर ही जाना चाहिये। महाभारत में भी उपहार सहित गुरू के पास जाने का निर्देश है- रिक्त पाणिनं सेवेत राजानं ब्राह्मणं गुरूम्।

3. **समित्पाणि**- समित् पाणौ यस्य सः अर्थात् पाणि में समिधा लेकर जाना चाहिये। यहॉ समिधा शब्द भेंट के लिये उपलक्षणमात्र है। अत्यधिक अर्थाभाव होने पर कुछ देने की सामर्थ्य न होने से केवल समिधायेंही ले जा सकते है।

4**. ब्रह्मनिष्ठ** – ब्रह्मणि निष्ठा यस्य तम्=ब्रह्म में निष्ठा रखने वाले (गुरू के पास अधिकारी को जाना चाहिये)। उपनिषद् ग्रन्थों में जिसका वर्णन किया गया है उस ब्रह्मात्मैक्यविज्ञान से जो अन्तः बाह्य सर्वत्र संयुक्त है, वह ब्रह्मनिष्ठ है-जैसे कि विद्वन्मनोरन्जिनी टीमा भी कहती है- 'औपनिषद्ब्रह्मात्मविज्ञानपूर्णम्।' आचार्य शङ्कर ने ब्रह्मनिष्ठ को जपनिष्ठ और तपोनिष्ठ की भॉति व्याख्यात किया है। उनका कथन है कि ब्रह्मनिष्ठ वह है जिसने सभी प्रकार के कर्म का परित्याग कर दिया है और सभी समय ब्रह्म में स्थित रहता है।

5. **अनुसरति**- यहॉ अनुसरण से तात्पर्य केवल पश्चात् गमन ही नहीं है अपितु मन से, वाणी से तथा कर्म से गुरू की सेवा करना और प्रगढ़ श्रद्धाभक्ति से गुरू के उपदिष्ट साधन को यथोचित रीति से कार्यान्वित करना है।

6. **अयमधिकारी**-पूर्वकथित चार प्रकार के साधन चतुष्टय सम्पत्ति से सम्पन्न।

7. **जन्ममरणादि**-रोग तथा अन्य भौतिक कष्ट आदि भी गणित है।

सः गुरू परमकृप्या 'अध्यारोपापवाद' न्यायेनैनमुपदिशति 'तस्मै सः विद्वानुपसन्नाय प्राह'' इत्यादि श्रुतेः।

अनुवाद-यह (आचार्य) परम दयालु होकर 'अध्यारो' और 'अपवाद' न्याय से उसे (ब्रह्मरूप रहस्य का) उपदेश देता है जैसा कि 'उस आये हुए ब्रह्मज्ञान के इच्छुक को विद्वान उपदेश देता है' श्रुतिवचन भी है।

व्याख्या -1. **अध्यारोपापवादन्यायेन**- सीपो में भ्रमण जैसे चॉदी भासित होने लगी है अथवा रस्सी में सॉप की प्रतीति होने लगती है, उसी भॉति अद्वैत आत्मतत्व पर अज्ञान के कारण संसार भ्रमात्मक प्रतीति हो रही है, वही अध्यारोप लक्षण दिया है। दीपक के द्वारा प्रकाश न होने पर रस्सी में मिथ्या सर्प का' निश्चय हो जाने के समान तथा केवल आधाररूप रस्सी शेष रह जाने के समान श्रवणमननादि का लम्बे अरसे तक निरन्तर अभ्यास करते-करते ज्ञानोदय होने पर समस्त मिथ्या सांसारिक सृष्टि का निश्चय हो जाता है और सबका आश्रयभूत सच्चिदानन्द ब्रह्म ही शेष रह जाता है यही अपवाद कहलाता है। इसी अध्यारोप तथा-अपवाद की क्रमयुक्त प्रक्रिया से आचार्य अपने शिष्य को आत्मज्ञान का उपदेश देता है। इसलिये कहा भी है-

अध्यारापापवादाभ्यं निष्प्रपन्चं प्रपन्चयते।

शिष्याणां बोधसिद्धयर्थं तत्वज्ञैः कल्पितः क्रमः।।

विवेकचूड़ामणि में अध्यारोप और अभ्यास का बड़ा सुन्दर विवेचन किया गया है7

''अतस्मिस्तद् बुद्धिः प्रभवति विमूढ़स्य तमसा।

विवेकाभावाद् वै स्फुरित भुज्ड्गे रज्जुधिष्णा।।

ततोऽनर्थवातो निपतति समादातुरधिकस्ततो।।

योऽसद्ग्राहः स हि भवति बन्धः श्रुणु सखे।।''

2. **प्ररमकृपया** - अतिशय रहस्यमयी आत्माज्ञान की विद्या को उपदिष्ट करने में संकोच भाव न होने के कारण करूणा है। शरणागत जन के क्लेशों का अवलोकन कर ब्रह्मज्ञानोपदेष्टा आचार्य का कोमल चित्त द्रवीभूत हो उनका निवारण करने के लिये से आच्छादित बुद्धि को ज्ञानरूपप्रकाश से शनैः-शनैः प्रकाशित करके विकसित करता है। संक्षेपशारीरक में आया है कि गुरू कृपालुता से शिष्य को

शिक्षित करता है-

''एतदेव हि दयालुलक्षणं यत् विनेयजनबुद्धिविवर्धनम्।''

3. एनमुपदिशति-गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं-

''तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवाया।

डपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः।।''

अर्थात् ज्ञान तत्वदर्शी से सीखना चाहिये, विनम्रता से, सेवा और निश्छल होकर अत्यन्त सरलता से पूछने पर दयालु ज्ञानी सत्य का उपदेश करते हैं।

3.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने तत्व ज्ञान के मार्ग में कितने तथ्यों की जानकारी आवश्यक है इसका अध्ययन करते हुए गुरू की ज्ञानदायिनी शक्ति का अवलोकन कर यज्ञादि के विषय में अध्ययन किया है। किसी भी ग्रन्थ के पढने से क्या लाभ होता है इसका अध्ययन आपने अनुबन्ध चतुष्टय के अर्न्तगत किया है। अधिकारी ब्रहमचर्य का पालन करते हुए शास्त्रोपदेश के अनुसार गुरू के समीप बैठकर अध्ययन करते हैं। जिसे वेदान्त सार में विधिवत कहा गया है। काम्य एवं निषिद्व कर्मो के वर्गीकृत ज्ञान से भी आप परिचित हो गये हैं। साधन चतुस्य को बताकर वेदान्सार में वेदान्त के प्रयोजन को पूरी तरह सिद्व किया गया है तथा ज्योतिष्टोमादि यज्ञो एवं प्रायश्चित कर्मो की विधियॉ इस इकाई के अर्न्तगत प्रख्यापित की गयी है। अत : आप इनका ज्ञान प्राप्त कर अध्यारोपापवाद न्याय को जानते हुए सम्पूर्ण अनुबन्ध चतुष्य को समझा सकेंगे।

3. 5 शब्दावली

शरणागत – रक्षा हेतु आये हुए को शरणागत कहते हैं।

ब्रह्मज्ञानोपदेष्टा – ब्रह्म के ज्ञान का उपदेश करने वाला

आश्रयभूत – आश्रय में ही रहने वाला

अध्येता – अध्ययन करने वाला

बोध्यबोधकप्रभाव – बोध और बोधक का प्रभाव

आत्यन्तिक – विल्कुल सटीक

अज्ञानान्धकार – अज्ञान से प्राप्त अन्धकार

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.ख 2.क 3.ग 4.ग 5.क 6.घ 7.क 8.घ

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- उपनिषद्; भगवद्गीता; गौडपादकारिका; ब्रह्मसूत्र;
- उपनिषद्गीता और ब्रह्मसूत्र पर सांप्रदायिक भाष्य;
- राधाकृष्णन् : इंडियन फिलासफी, भाग 1-2;
- दासगुप्त : हिस्टरी ऑव इंडियन फिलासफी, भाग1
- वेदान्तसार – सदानन्द योगीन्द्र चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी

3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- उपनिषद्; भगवद्गीता; गौडपादकारिका; ब्रह्मसूत्र;
- उपनिषद्गीता और ब्रह्मसूत्र पर सांप्रदायिक भाष्य;

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

- वेदान्तसार के मंगलाचरण की व्यख्या कीजिए
- अधिकारी के स्वरूप की विवेचना कीजिए
- प्रयोजन को स्पष्ट कीजिए
- अनुबन्ध चतुष्टय पर एक निबन्ध लिखिए

इकाई 4 - आवरण एवं विक्षेप शक्ति

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 अज्ञान का स्वरूप
4.4 आवरण एवं विक्षेप शक्ति
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.7 अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर
4.8 सन्दर्भग्रन्थसूची
4.9 निबन्धात्मकप्रश्न

4.1 प्रस्तावना

वेदान्तसार के अध्ययन से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है इसके पूर्व की इकाईयो मे आपको वेदान्त दर्शन की ऐतिहासिकता तथा आचार्य परम्परा एवं सैद्धान्तिक पक्षो का अध्ययन कराया गया है। इसके अतिरिक्त इसके पूर्व की इकाई अनुबन्ध चतुष्टय की है। प्रस्तुत इकाई में आपको अज्ञान के विषय में बताते हुए इसकी शक्तियो का अध्ययन कराया जायेगा।

वेदान्त दर्शन की परम्परा आचार्य शंकर से पूर्व भी थी और आज भी प्रचलित है। विभिन्न ग्रन्थो मे ब्र ह्म ,माया ,जीव,जगत, ईश्वर और मनुष्य के करणिय तथा अकरणीय कर्मो एवं यज्ञादि के बारे में बताया गया है। उपनिषदो पर आधारित दर्शन वेदान्त कहलाता है। आवरण तथा विक्ष ेाप शक्ति का ज्ञान इस इकाई में प्रस्तुत है

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकेंगे कि जगत् की उत्पत्ति किस प्रकार होती है तथा जीव माया से आक्षादित जगत् को किस तरह समझता है।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेंगे कि –

- अज्ञान की परिभाषा क्या हैं।
- आवरण शक्ति किसे कहते है।
- आवरण शक्ति के कार्य क्या हैं।
- विक्षेप शक्ति की परिभाषा क्या है।
- विक्षेप शक्ति के कार्य क्या हैं।
- इन शक्तियो की व्याख्याये किस प्रकार की जा सकती हैं।

4.3 अज्ञान का स्वरूप

34. **अज्ञानं तु सदसद्भ्यामनिर्वचनीय त्रिगुणत्मकं ज्ञानविरोधी भावरूपं यत्किन्चिदिति वदन्त्यहमज्ञ इत्याद्यनुभवात् ''देवात्मशक्ति स्वगुणे र्निगूढ़ाम इत्यादि श्रुतेश्च।।**

अनुवाद-अज्ञान तो सत्व और असत्व दोनों के रहित होने के कारण अवर्णनीय है, (यह) (सत्वरजस्तम) त्रिगुणात्मक है, ज्ञान का विरोधी तथा भावरूप है ('यह ऐसा है' इत्यादि निश्चित सीमा के द्वारा अज्ञापक होने के कारण) यत्किन्चित् है-यह वेदान्तियों का कथन है। 'मै आ (अज्ञानी) हूॅ'

इत्यादि अनुभवों का प्रत्यक्ष आभास ही अज्ञान के भाव रूप होने में प्रमाण है-श्रुतिवाक्य भी है- 'वेदात्मा की शक्ति अपने गुणों से आवृत्त है।'

व्याख्या 1. **त्रिगुणात्मकम्**- यदि अज्ञान अनिर्वचनीय है और किसी भी प्रकार जाना ही नहीं जा सकता तो उसका अस्तित्व ही नहीं होगा। इस संशय का निवारण करने के लिये उसका 'त्रिगुणात्मक' विशेषण प्रयुक्त हुआ है। अजामेकां लोहितशुक्ल-कृष्णं बह्वीः प्रजा सृजनानां सरूपाः । इस श्रतिवचन से ही प्रमाणित है कि वह सत्व रजस् तमस् त्रिगुणात्मक है। जब कार्य लोहित शुक्ल तथा कृष्ण तीन गुणों वाला है तो उसका कारण से अपृथक् अज्ञान भी त्रिगुणात्मक होगा । सांख्य दर्शन में तीनों गुणों का सिद्धान्त पूर्णतया विकसित किया गया है और प्रकृति की व्याख्या में उसका उपयोग किया है।

2. **सदसद्भ्यामनिर्वचनीयम्**-यदि अज्ञान को सत् कहा जाता है तो उसे चिदात्मा (ब्रहा्र) के समान त्रिकालाबाधित होना चाहिये लेकिन उसे तत्वज्ञान से बाधित देखा जाता है, उसे असत् कहे तो बन्ध्या के पुत्र (अस$भव) के समान प्रतीयमान नहीं होना चाहिए, लेकिन वह संसार के बन्धन में जटिलबद्ध प्राणी को मैं अज्ञान हूँ इस भॉति प्रतीत हेाती है, अतः उसे सद्रूप तथा असद्रूप दोनों ही नहीं कहा जा सकता है। इसलिये वह सदसद्भ्याम् अनिर्वचनीय है। कि शड्करााचार्य का भी कथन है-

'सन्नाप्यसन्नात्युभयात्मिका नो' भिन्नाप्यभित्राप्युभयातिमका नो। साड्गाप्यनड्गाप्युभ्यातिमका नो' महदाद्भुतानिर्वचनीयरूपा।।'

3. **ज्ञानविरोधी**- ज्ञाननिवत्यं ही अज्ञान का लक्षण है।अज्ञान का ज्ञान के द्वारा बाधित होना वेद तथा लोक में सर्वविख्यात है। प्रपन्च अज्ञानजन्य होने के कारण अज्ञान से अभिन्न है अतः ब्रहा्रात्मैकत्व विज्ञान से निवृत्त होन वाले संसाररूप चिदात्मा का अज्ञान से सम्बन्ध होना पूर्णरूपेण अज्ञानाधीन है अतः अज्ञानात्मा का सम्बन्ध भी अज्ञानरूप ही सिद्ध हो जाता है। अज्ञानाधनी है अतः अज्ञाननिवर्त्यभूत लक्षण का सम्बन्ध भी अज्ञानरूप ही सिद्ध हो जात है। अज्ञान के इस ज्ञाननिवर्त्यभूत लक्षण में अव्याति, और असम्भव दोष की तो शड्का ही उत्पन्न नहीं होती । इस प्रकार यह लक्षण अव्याप्ति, अतिव्याप्ति तथा असम्भव तीनों ही दोषों से युक्त है। अज्ञान ज्ञान का विरोधी है, आत्मसाक्षात्कार (ज्ञान) होने पर विनष्ट हो जात है।

4. **यत्किन्चित्**- अज्ञान की सद्रूपता, असद्रूपता से निरूपित नहीं की सकती, अतः उसे यत्किन्चित् कहा गया है। अन्धे पुरूष के द्वारा सूर्य में अन्धकार-कल्पना के सदृश ही अज्ञान है। अज्ञान का यथार्थ स्वरूप जानना, असम्भव होने पर भी उसकी सत्ता में अनुभूति तथा श्रुतिवचन दोनों प्रमाण हैं। सत्य को खोजने का प्रयत्न करने से हमस त्य के विषय में अज्ञान को मानते हैं यह अज्ञान हमारी अनुभूति है, इसी से शास्त्रों में ये साक्षिभाष्य कहे गये हैं। बृहदारण्यक वार्तिक में आया है।

''अविद्याया अविद्यात्वं इदमेव तु लक्षणम् प्रमाणासहिष्णुत्वमन्यथावस्तु सा भवेत्।।

5. **भावरूपम्**- अज्ञान को यदि भावरूप कहा जाये तो इसकी निवृत्ति न हो सकने के कारण अभावरूप मानना होगा अतः उसको तभी तक भावरूप माना जाय, जब तक आत्मा का ज्ञान (साक्षात्कार) न हो- ज्ञान रूप साक्षात्कार होने पर अज्ञान विनष्ट हो जाता है।

6. **अहमज्ञः**- सत्य वस्तु के विषय में, जो स्वयं प्रतीत होने में जड़ा होने से अशक्त है, अतः 'अहम्' आदि के साक्ष्य से चैतन्य भासित हो सकता है।

7. **देवात्मशक्तिम्**-इस श्रुति से तथा उस पर शाङ्करभाष्य से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अज्ञान परमात्मा की शक्ति है, इसलिये द्वैत (भेद) की सम्भावना का भी निराकरण हो जाता है, क्योंकि शक्ति और शक्तिशाली में एंक्य (अभेद) माना जाता है (होता है)।

8.वेदान्त दर्शन में वस्तुतः अज्ञान का विवेचन अत्यन्त कठिन है। न्यायदर्शन कहता है कि ज्ञान का अभाव अज्ञान है इसलिये यह भावरूप नहीं हो सकता है किन्तु वेदान्त दर्शन का कथन है कि यह भावरूप भी होता है। वेदान्त प्रश्न करता है कि वह ज्ञान कैसा है- जिसका अभाव कहा जा सकता है? हम ज्ञान को तीन रूपों में समझते हैं-(1)साक्षिचेता (श्वेताश्वतरोपनिषद्)। ज्ञान शाश्वत होता है अतः उसे अभाव की स्थिति के साथ नहीं जोड़ा जा सकता। (2) विज्ञानेन व ऋग्वेदं विजानाति (छान्दोग्य उपनिषद्) इससे ज्ञात होता है कि मस्तिष्क (मन) का विशिष्ट व्यापार ज्ञान है। यहॉ पर ज्ञान का प्रयोग अप्रत्यक्ष ज्ञान के रूप में है। जब तक आत्मा साथ में न हो तब तक मस्तिष्क (मन) का कोई व्यापार किसी वस्तु को प्रकाशित नहीं सकात। नेत्र ,कान इत्यादि अपने व्यापारों को तभी कर पाते हैं जब आत्मा से चेतना पाते हैं, जैसे कि ऐतरेयोपनिषद् भी कहता है-

सर्व तत्वप्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रों लोकः प्रज्ञाप्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म।''

किसी स्थिति में ज्ञान अभाव की दशा वाला नहीं हो सकता है(3) अज्ञान को किसी भी व्याख्या के ज्ञान का अभाव नहीं हो सकता चाहे सामान्य रूप से अथवा विशिष्ट रूप से विचार किया जाये। यदि कोई व्यक्ति कहता है कि 'मैं अज्ञानी हूँ ' मैं कुछ नहीं जानता हॅू। इस स्थिति में वह अनुभव को पूर्णतया नहीं खो देता है यद्यपि वह विशिष्ट वस्तु को नहीं जान पाता फिर भी वह जानता है।

नैष्कर्म्यसिद्धि में लिखा है-

''सेयं भ्रान्तिर्निरालम्बा सर्वन्यायविरोधिनी।

स्हते न विचारं सा तमेदयवत् दिवाकरम्''

9. देवात्मशक्तिम्-श्वेताश्वतर उषनिषद्' के श्रुति के समर्थन में और भी श्रुतियॉ मिलती है जैसे गीता 5/15-

''अज्ञाने ना वृतं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।'' तथा

''नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।'' गीता 3/25

वस्तुतः देखने पर यह स्पष्ट होता है कि प्रारम्भिक उपनिषदों में परिणामवाद् का सिद्धान्त स्वीकृत रहा है, मायावाद और विवतवाद का नहीं। तब प्रश्न होता है कि सम्पूर्ण संसार की असत्यता का सिद्धान्त वेदान्त में कहॉ से आया? इसका उत्तर जैकब के अनुसार है बौद्धों से। इस तथ्य को सांख्य दर्शन के व्याख्याकार विज्ञानभिक्षु ने प्रसतुत किया है। पद्यपुराण तथा विष्णुपुराण भी विज्ञानभिक्षु का समर्थन करते है।

3.5 इदमज्ञानं समष्टिव्यष्ट्यंभिप्रायेणैकमनेकमित्ति च व्यवह्रियते।।

अनुवाद-'यह अज्ञान समष्टि और व्यष्टि दो अभिप्रायों के कारण कही एक रूप में, कहीं बहुवचन में पुयुक्त किया जाता है।

व्याख्या - 1. समष्टि- 'अजामेकाम्, आदि श्रुतिवचनों से अज्ञान का एकत्व सिद्ध होता है, यही समष्टि रूप से एक है। सम् उपसर्गपूर्वक अश् धातु से क्तिन् प्रत्यय लगाकर समष्टि शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ सबको व्याप्त करने वाली। यहॉ पर समष्टि शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ सबको व्याप्त करने वाली। यहॉ पर समष्टि शब्द का प्रयोग समुदाय, समूह, सामान्य अथवा संघात के अर्थ में हुआ है। निखिलानन्द स्वामी रामतीर्थ ने व्यष्टि तथा समष्टि को क्रमशः विशेष और सामान्य का वाचक माना है। वस्तुतः दोनों में अभेद है केवल व्यवहार के लिये ही भेद कल्पना है। अज्ञान का श्रुतियों में इसी प्रकार उल्लेख है। वेदान्त में अज्ञान की समष्टि के लिये माया तथा व्यष्टि के लिए अविद्या शब्द आया है (पन्चदशी 1/16)

2. **व्यष्टि**- 'इन्द्रो मायाभिः पुरूरूप ईयते' आदि श्रुतिवचनों से अज्ञान की अनेकता भी सिद्ध होती है यही व्यष्टि रूप से अनेक है। विपूर्वक अश् धातु से क्तिन् प्रत्यय होकर व्यक्ति शब्द व्युत्पन्न होता है जिसका तात्पर्य है सीमित को व्याप्त करने वाला। यहॉ पर व्यष्टि शब्द एक व्यक्ति अथवा विशेष का वाचक है।

3**. एकमनेकमिति**- यह वेद एवं उपनिषद् वचनों में प्रयुक्त माया (अज्ञान) परक उदाहरणों से कभी एकत्व सूचक तथा कभी बहुवचनान्त होने के कारण कहा गया है-

''अज्ञामेकां लोकहितशुक्लकृष्णां वह्वीः प्रजाः सुजमानां सरूपाः।

अजोह्येकोजुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।।''

यह श्रुतिवचन अज्ञान से एकत्व का सूचक है तथा 'इन्दो मायाभिः पुरूरूप ईयते' यह वाक्य अज्ञान (माता) के अनेकत्व का बोधक है। इसी से अज्ञान शब्द का एक तथा अनेक के अभिप्राय से समष्अि तथा व्यष्टि से व्यापार होता है।

36. तथाहि यथा वृक्षाणां समष्टयभिप्रायेण वनमित्येकत्वव्यपदेशो यथा वा जलानां समष्टयभिप्रायेण जलाशय इति तथा नानात्वेन प्रतिभासमानानां जीवगताज्ञानानां समष्टयभिप्रायेण तदेकत्वव्यपदेशः अजामेकाम् इत्यादिश्रुतेः।

अनुवाद- जिस प्रकार वृक्षों को समष्टि (समुदाय) के दृष्किोण से 'वन' इस प्रकार एकसंख्यासुचक व्यवहार होता हे अथवा जिस प्रकार जलों के (जलकणों के)समूह को समष्टि की विवक्षा से 'जलाशय' इस प्रकार कहा जाता है, उसी भॉति अनेक संख्या में प्रतीमान जीवस्थित अज्ञानों के समूह को समष्टि की आकाड़्क्षा से उन सबके एक होने का सूचक प्रयोग होता है 'अजन्मा एक' यह श्रुतिकथन भी समष्टि से एकत्वसूचक है।

व्याख्या -1. समष्टि- समष्टि शब्द की विवृत्ति पूर्वलिखित है वहीं पर देखें।

2.**नानात्वेन**- प्रत्येक जीव के अज्ञान की सत्ता पृथक-पृथक है। जो जीव के द्वारा भाषित होती है। जीव अनेक हैं अतः अज्ञान भी अनेकत्व (नानात्व) से सम्पन्न है।

3. **अजामेकाम्**-यहा अज्ञान का एक होना 'एकाम्' पद से विवक्षित हैं श्रुतियों में इसी अज्ञान को प्रकृति, अविद्याा, तम, माया, अजा तथा अव्याकृत आदि प्रदों द्वारा व्यवहृत किया गया है।

4. वेदान्त दर्शन में अज्ञान की उपाधि से युक्त आत्मा की तीन अवस्थायें कही गई हैं- 1. सुषुप्ति इसमें कारण शरीर उपाधि होता है (आनन्दमय कोष)।

2. **स्वप्न**- इसमें कारण शरीर सूक्ष्म उपाधि होता है (विज्ञानमय कोष मनोमय कोप। प्राणमय कोष =सूक्ष्म शरीर)। 3. जागरण- इस अवस्था में कारण शरीरसूक्ष्म शरीर=स्थूल शरीर उपाधि होता है। स्थूल शरीर को अन्नमय कोष भी कहते है।

5. ईश्वर और जीव दोनों ही अज्ञान की उपाधि से युक्त हैं अतः दोनों की उपर्युक्त तीनों अवस्थायें होती है। ईश्वर स्वप्नावस्था में हिरण्यगर्भ, सूत्रात्मा तथा ब्रहा्रा कहलाता है तथा जागरणवस्था में विराट् एवं वैश्वानर कहलाता है। जीव सुषुप्तिकाल में प्राज्ञ, स्वप्न में तैजस् तथा जागरण में विश्व कहलाता है। माण्डूक्य0 में इसका विवेचन है।

37. इयं समष्टिरूत्कृष्टोपाधितया विशुद्धसत्वप्रधाना।।

अनुवाद-यह समष्टि (व्यष्टि की अपेक्षा) उन्नत उपाधि वाली होने के कारण रागादिदोषशून्य शुद्ध सत्व गुण प्रधान हैं।

व्याख्या . 1. उत्कृष्टोपाधितया- जब कोई वस्तु से भिन्न रूप में प्रकाशित हो, तो भासित होने का जो प्रयोजक हेतु होता है, वह उपाधि कहलाती है। वाचस्पत्यम् में उपाधि का लक्षण है-

'अन्यथास्थितस्य वस्तुनः अन्यथाप्रकाशनरूपे'। तर्कभाषा में उपाधि की परिभाषा है- 'प्रयोजकश्चोपाधिः इत्युच्यते ' प्रस्तुत पूरे पद का अर्थ है उत्कृष्ट उपाधि होने के कारण। इसका दो प्रकार से अर्थ किया जा सकता है। प्रथम-समष्टिगत अज्ञान व्यष्टिगत अज्ञान की अपेक्षा उत्कृष्ट है, सम्पूर्ण संसार में व्याप्त होने से इसमें आधारभूत अज्ञान की एकता पर आवरण नहीं पड़ने पाता, किन्तु व्यष्टिगत अज्ञान में आधारस्वरूप एकता तिरोहित हो जाती है। द्वितीय अर्थ-आगे वर्णित किये जाने वाले (प्राज्ञ) जीव की अपेक्षा ईश्वर के उत्कृष्ट होने के कारण है-वह समष्टिगत अज्ञान का स्वामी होता है और वह अप्रतिहत ज्ञानवान् होता है लेकिन जीव व्यष्टिगत अज्ञान की आधीन तथा अल्पज्ञ होता है।

2.**विशुद्धसत्वप्रधाना-**यहॉ विशुद्धसत्वप्रधान से तात्पर्य है- ईश्वर स्थित माया(अज्ञान) में सत्व गुण की प्रधानता होती है, उस विशुद्ध सत्व का समक्ष रजस् तथा तमस् गुण बिल्कुल नहीं रहता। प्रसतुत पद का अर्थ है सत्वगुण समष्टि (ईश्वर) में स्थित अज्ञान में रजस् तथा तमस् को अभिभूत किये रहता है स्वयं पराभूत नहीं होता। जैस विद्वन्मनोरन्जिनी टीका भी कहती है-

'विशुद्ध रजस्तमोभ्यामनभिभूतं सत्वं प्रधानं यस्याः सा।'

38. एतदुपहितं चैतन्यं सर्वज्ञत्वसर्वेश्वरत्वसर्वनियन्तृत्वादिगुणकमव्यक्तमन्तर्यामी जगत्कारणमीश्वर इति च व्यपदिश्यते सकलाज्ञानीवभासकत्वात्'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' इति श्रुतेः।।

अनुवाद-इस (उत्कृष्ट) उपाधि से युक्त चैतन्य को सर्वज्ञाता, सबका ईश्वर तथा सर्वनियन्ता आदि गुणों वाला, अव्यक्त, अन्तर्यामी, संसार का कारणरूप तथा ईश्वर आदि (नामों से) व्यवहृत किया जाता है। जो सर्वज्ञाता, सर्ववित् है' इत्यादि श्रुत्यनुसार यह सम्पूर्ण अज्ञान का प्रकाशयिता है।

व्याख्या -1. उपहितम्-(त्वरूप प्रकाशित होने में प्रयोजक हेतु) उपाधि से आरोपित प्रस्तुत पद का वाच्यर्थ है। यहॉ समष्टिगत अज्ञान के उत्कृष्ट उपाधि युक्त परमात्मा (सर्वज्ञ) के लिये यह विशेषण प्रयुक्त हुआ है।

2. सर्वनियन्तृ तथा अन्तर्यामी-ईश्वर के सर्वनियन्तृत्व (सबको नियनित्रत करने वाला) प्रमाणित करने के लिये निम्न श्रुति ग्राहा्र है-

'एष सेतुर्विधरणः।

''एष त आत्मान्र्याम्यगृतः'' श्रुतिवचन परमात्मा के अन्तर्यामी (भीतर नियमन करने वाला) होने को प्रमाणित करती है।

3 . ईश्वर के सर्वज्ञत्व का प्रतिपादन मुण्डक0 करता है-

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः।

तस्मादेतद् ब्रह्मनाम रूपमन्नं च जायेते।।

39. ईष्वस्येयं समष्टिरखिलकारणत्वात् कारणशरीरमानन्दप्रयुरत्वात् कोशवदाच्छादकत्वाच्चानन्दमयकोशः सर्वोपरमत्वात् सुषुप्तिरत एव सथूलसूक्ष्मप्रपन्चयस्थानमिति चोच्यते।।

अनुवाद-ईश्वर की यह समष्टि (समूहोपाधि) सबका मूलभूत कारण होने के कारण कारणशरीर, आनन्द का प्राचुर्य होने के कारण समष्टिभूत अज्ञानात्मा को कोश के तुल्य आवश्यक होने के कारण 'आनन्दमय कोश' तथा सूक्ष्म व स्थूल जगत्प्रपन्च के लयस्थान होन के कारण 'सुषुप्ति' कहलाती है।

व्याख्या -1. कारणशरीरम्-सांख्यादि दार्शनिक विचारानुसार केवल सुक्ष्म व स्थूल दो शरीर माने गये हैं, सांख्यमतानुसार यह प्रकृति की त्रिगुणात्मक साम्यावस्था मानी गई है।

2. **आनन्दमयकोशः**-आनन्दमय, मनोमय, विाानमय, प्राणमय तथा अन्नमय ये पॉच कोश वेदान्ती मानते हैं। इस अज्ञान (माया) के प्रथम अवतरण में ईश्वर ही आनन्द प्रचुर कहा गया है, जो ब्रह्म के अज्ञानोपाधि से आरोपित स्वरूप को स्पष्ट अभिव्यक्त करता हे। उपाधिविहीन निर्गुण ब्रह्म तो आनन्द ही है। समष्टि अज्ञान को सुषुप्ति तथा प्रलय भी कहते है।

3. **सर्वोपरमत्वात् तथा आनन्दप्रचुरत्वात्**-सर्वोपरमत्वात् का अर्थ है व्यष्टिगत सम्पूर्ण सृष्टि के विलीन हो जाने का कारण । आनन्दप्रचुरत्वात् का अर्थ है जाग्रद् अवस्था की अपेक्षा अधिक आनन्द होने के कारण।

40. **यथा वनस्य व्यष्टयभिप्रायेण वृक्षा इत्यनेकत्वहदेशो यथा वा जलाश्यस्य व्यष्टयभिप्रायेण जलानीति, तथाज्ञानस्य व्यष्टयभिप्रयेण तदनेकत्वव्यपदेशः**

अनुवाद-जैसे वन के वृक्षों का व्यष्टि (पार्थक्य की विवक्षा की 'वृक्ष' यह अनेकत्वज्ञापक व्यवहार होता है अथवा जैसे जलाशय स्थित जल को व्यक्तिगत (पृथकता के) अभिप्राय से उसे 'अनेक जल' यह प्रयोग होता है, उसी प्रकार अज्ञान को व्यष्टिरूप में 'अनेक अज्ञान' इस प्रकार बहुत्व का व्यवहार होता है। यही बात (आत्मा) इन्द्र अज्ञानों के कारण बहुयपवान् प्रतीत होता है' इत्यादि श्रुति में कही गई है।

व्याख्या 1. यथा वनस्य व्यष्टियभिप्रायेण वृक्षा इत्यनेकत्वव्यपदेशो यथा वा जलाश्यस्य वयष्टयभिप्रायेण 'जलानीति तथाज्ञानस्य व्यष्टयभिप्रायेण तदनेकत्वव्यपदेशः- यहॉ वन और वृक्ष का तथा जलाश्य और जल का समष्टि और व्यष्टि का अभिप्राय समझने के लिये दो दृष्टान्तों को देने का प्रयोजन इस प्रकार है-चिदात्मा द्वारा अज्ञानाज्ञान कार्योपाधियुक्त होकर जीवभाव तथा ईश्वरभाव की

प्राप्ति होने पर उसका इन उपाधियों से सम्बन्ध होता है, उस सम्बन्ध का स्वरूप जानने की जिज्ञासा स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती है। इसकी कल्पना दो रूपो में की जा सकती है। पहली-चिदात्मा अज्ञान तथा उसके कार्यो से अवच्छेदपूर्ण है। दूसरी-उनमें प्रतिबिम्बित है। अवच्छिन्न मानने पर 'बन वृक्ष' का ताि ा प्रतिविम्बित मानते परे 'जलाशय-जल' का दृष्टान्त है। इसी कारण से इस प्रकार में सर्वत्र दो दृष्टान्त प्रस्तुत किये गये हैं।

2.**इन्द्रोमायाभि**:-'तमिन्द्रं मित्रं वरूणं अग्निमाहुरथो सुपर्णा' आदि वचन से सभी ईश्वरवाचक शब्द होने से इन्द्र भी ईश्वरवाचक हैं। माया उसकी शक्ति है, जिसे वेदान्ती अज्ञान कहते हैं, पुरू अर्थात् बहुत रूपों वाली प्रतीत होती है। ईश्वर एक ही है किन्तु संसार के बहुत से जीवों में स्थित अज्ञान के रूप में अनेक रूपों में प्रतिभासित हो रहा है।

4.1 **अत्र वयस्तसमसतव्यापित्वेन व्यष्टिसमष्टिताव्यपदेश**:।।

अनुवाद-ऐसे स्थल पर व्यक्तिगत तथा समुदायगत व्यापकभाव के कारण ही व्यष्टि (अनेकता) तथा समष्टि (एकता) का व्याहार किया जाता है।

व्याख्या -1. **समष्टिरूप अज्ञान**- संसार के समस्त जीवों के अज्ञान को एक ज्ञान का विषय मानकर समष्टि रूप में देखना।

2. **व्यष्टिरूप अज्ञान**- समस्त अज्ञान के भिन्न-अभिन्न रूप को भिन्न-भिन्न ज्ञान का विषय मानकर, भिन्न-भिन्न रूप में देखना।

42. इयं व्यष्टिर्निकृष्टोपाधितया मलिनसत्वप्रधाना।।

अनुवाद-(अज्ञान की) यह व्यष्टि (समष्टि की अपेक्षा) निकृष्ट उपाधिभूत होने के कारण मलिन सत्वगुण प्रधान है।

व्याख्या -1. मलिनसत्वप्रधान-निकृष्ट जीव की उपाधि व्यष्टि रूप अज्ञान है, इसलिये उसमें स्थित सत्वगुण रजस् तथा तमस् से पराभूत होने के कारण मलिन होता है, जैसे स्वच्छ शीशे पर धूलि आदि पड़ जाने पर प्रतिबिम्बग्रहण की शक्ति घट जाती है वैसे ही सत्वगुण रजस् और तमस् के द्वारा पराभूत कर मलिन कर देने पर उसमें चिदात्मा का सुव्यक्त प्रतिबिम्ब प्रतिबिम्बित नहीं होता है। यही जीव के अल्पज्ञत्व का हेतु है।

2. **निकृष्टोपाधितया**-इसका अर्थ दो प्रकार से किया जा सकता है। प्रथम व्यष्टि अज्ञान को समष्टि अज्ञान की अपेक्षा निकृष्ट उपाधि से आरोपित कहने के तीन हेतु है-(अ) उसमें आधाररूप एकत्व अन्तर्हित हो जाता है। (आ) इसमें अहङ्कार स्थित रहता है। (इ) साथ ही आत्मातिरिक्त वस्तुओं का अध्याय इसी कारण से होता है। द्वितीय अर्थ-जीव ईश्वर की अपेक्षा अधिक निकृष्ट है। जबकि ईश्वर

उपाधियुक्त अज्ञान का स्वामी होने के कारण सर्वज्ञ सर्वशक्तिसम्पन्न आदि कहा जाता है, किन्तु जीव अपनी उपाधिभूत (अज्ञान) माया के अधीन होने से अल्पज्ञ अल्पसामर्यिवान् आदि कहा जाता है। जीव के ज्ञान पर प्रतिबन्धकर्ता अविद्या का पर्दा डल जाने से जीव निकृष्ट होता है। जीव के ज्ञान पर प्रतिबन्धकर्ता अविद्या का पर्दा डल जाने से जीव निकृष्ट होता है अपनी निकृष्ट उपाधि के कारण। स्वामी रामतीर्थ के अनुसार-

'ज्ञानप्रतिबन्धकावरणवान् जीवो निकृष्टस्तसयोपाधितया।'

ईश्वर और जीव के भेद को विशेष रूप से स्पष्ट करते हुये विद्यारण्य स्वामी लिखते है-

मायाबिम्वो वशीकृत्य तां स्यात् सर्वज्ञ ईश्वरः।

अविद्यावशगस्त्वन्यस्तद् वैचित्र्यादनेकधा।।

43. एतदुपहितं चैतन्यमल्पज्ञत्वानीश्वरत्वादिगुणयुक्तः प्राज्ञ इत्युच्यते, एकाज्ञानावभासकत्वात्।।

अनुवाद-इस (निकृष्ट) उपाधि से उपहित चैतन्य को अल्पज्ञता, अनीश्वरत्व आदि गुणयुक्त होने के कारण तथा केवल (व्यकितगत)एक ही अज्ञान का प्रकाशयिता होने के कारण प्राज्ञ कहा जाता है।

व्याख्या -1. एकाज्ञानायभासकत्यात्-समष्टिगत (एक) अज्ञान के एक अंश को (एक व्यष्टि रूप अज्ञान को) प्रकाशित करने के कारण।

2.प्राज्ञ-स्वामी रामतीर्थ के अनुसार प्रस्तुत शब्द का अर्थ है प्रयोग अज्ञः के अनुसार अज्ञानी। वैसे प्रकर्षेण जानाति इति प्रज्ञः=प्रज्ञः एवं प्राज्ञः व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ है बहुत ज्ञानवान् अर्थात् प्रकृष्टं ज्ञान से युक्त। लेकिन यहॉ (प्रस्तुत प्रकरण में) उसके अल्पज्ञत्व के साथ प्राज्ञ शब्द की यह व्युत्पत्ति उचित नहीं मेल खाती, अतः अज्ञानी अर्थ ही ठीक है। शंकर ने वृहद0 और माण्डूकय0के भाष्य में प्राज्ञ की दो व्याख्यायें लिखी हैं-1. भूत भविष्यत ज्ञातृत्वं सर्वविषयज्ञानत्वम् अस्यैव इति प्राज्ञः। 2. प्राप्तिमात्रमस्येवासाधारणं रूपम् इति प्राज्ञः।

44. अस्य प्रात्वमस्पष्टोपाधितयाऽनप्रतिप्रकाशकत्वात्।।

अनुवाद- अस्पष्ट उपाधि से युक्त होने से एक से अधिक (अनेक) का प्रकाशक ने होने के कारण इसे प्राज्ञ कहा जाता है।

व्याख्या -अस्पष्टोपाधितया अनतिप्रकाशकत्वात्-धुलादि से अस्वच्छ दर्पण के समान प्राज्ञ की उपधिरूपा अज्ञानव्यष्टि, रजस् तमस् के द्वारा सत्वगुण के पराभूत हो जाने से स्पष्ट है। उपाधि से मलिन

हो जाने में उसमें अस्पष्ट रूप से चिदात्मा रूपी सूर्य का बिम्ब सांसारिक विषयों का प्रकाशित नहीं करत, अतः प्राज्ञः कहलाता है। उपाधिभूत अज्ञान के मलिन हो जाने पर उसमें प्रतिबिम्बित होन वाला चिदात्मा का प्रतिबिम्ब स्पष्ट हो ही नहीं सकता। यही वेदान्त में चिदाभास कहलाता है। यही सांसारिक वस्तुओं का प्रकाशक है। चिदाभास के अस्पष्ट होने पर संसार की चीजों को अधिक प्रकाशित न कर सकने के कारण यत्किन्चित ही प्रकाश प्रदान कर पाता हे। यही प्राज्ञ के अल्पज्ञत्व का रहस्य है। यथा-उपाधिभूत अज्ञान दर्पण है, सत्वगुण स्वच्छता है, रजस् धूलि आदि है, चिदात्मा सूर्य है। स्वच्छ दर्पण में सूर्य स्पष्ट प्रतिबिम्बित हेाता है। सूर्य-प्रतिबिम्बित दर्पण अन्धेरे में स्थित पदार्थो को भी प्रकाशित करता हे किन्तु यदि दर्पण स्वस्छ नहीं है तो न तो सूर्य ही इसमें स्पष्ट प्रतिबिम्बित होगा तथा न ही वह अन्धेरे में स्थित पदार्थो को प्रकाशित करेगा।

45.अस्यापीयमहङ्कारादिकारणत्वात् काररणशरीरमानन्दप्रचतत्वात्कोशवदा-च्छादकत्वाच्चानन्दमयकोषः सर्वोपरमत्वात्सुषुप्तिरत एवं स्थूलसूक्ष्मशरीरप्रपन्चलयस्थानमिति चोच्यते।।

अनुवाद- इस (व्यष्टि-जीव) की भी यह उपाधि अहंकार आदि का कारण होने के 'कारण शरीर' आनन्दाधिक्य तथा शुद्ध चैतन्य को कोश के समान ढक लेने के कारण 'आनन्दमय कोश', सबका उपरमण होने से सुषुप्ति तथा स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर प्रपन्च के लीन होने का आधार से लयस्थान कहलाती है।

व्याख्या -1. **सुषुप्ति**-आत्मा की अज्ञानोपाधियुक्त दो अवस्थायें मानी गई है-एक सुषुप्ति दूसरी जाग्रत। आत्मा के और जगत् के सृष्टिविकास की तीन दशाओं में भिन्न-भिन्न रूप होते हैं, वेदान्ती लोग तीन-अवस्था, तीन शरीर तथा पॉच कोषों से अभिहित करते हैं। -सुषुप्ति अवस्था में या, कारण शरीर में आनन्दमय कोश, स्वप्नावस्था या सूक्ष्म शरीर में विज्ञानमय कोश, मनोमय कोश तथा प्राणमय कोश तथा जाग्रत या सूक्ष्म शरीर में विज्ञानमय कोश, मनोमय कोश तथा प्राणमय कोश तथा जाग्रत अवस्था में स्थूल शरीर में अन्नमय कोश।

2. **अहङ्कारादिकारणत्वात्**-अहंङ्कार शब्द से यहॉ अन्तःकरण अभिप्रेत है। अन्तःकरण सुषुप्ति अवस्था में अज्ञान में लय हो जाता है तथा स्वप्न और, जागरण में प्रविष्ट होते समय अज्ञान से ही उत्पन्न होता हे। इसी से अज्ञान को अहङ्कार से उपलक्षित अन्तःकरणादि का हेतु बताया है। जैसा कि विद्वन्मनोरन्जिनी टीका भी कहती है-

'अहङ्कारदेः सुषुप्त्याद्यवस्थायां संस्कारावशेषेण स्थितस्यकारणत्वात्।'

3. आनन्दप्रचुरत्वात्-जागरण तथा स्वप्न में आनन्द के साथ दुःख का भी अनुभव होता है किन्तु सुषुप्ति में केवल सुख का ही अनुभव होता है। कैवल्य उपनिषद् कहता है-'सुषुप्तिकाले सकले

विनीनेतेमोऽभिभूतः सुखरूपमेति।' अर्थात् सुषुप्तिकाल में जागरण और स्वप्नप्रपन्च के विलीन हो जाने पर सुख का अनुभव करता है।

46. तदानीमेतामीश्वरंप्रज्ञौ चैतनयप्रदीप्ताभिरतिसूक्ष्माभिरज्ञानवृत्तिभिरानन्दमनुभवत आनन्दभुक्चेतोमुखः प्राज्ञः' इति श्रुते। सुखमहमस्वाप्सं न किन्चदवेदिषमि' त्युत्थितस्य परामर्शोपपत्तेश्च।।

अनुवाद-उस काल में (प्रलय या सुषुप्तिकाल में) ईश्वर और प्राज्ञ दोनों चैतन्य से प्रदीप्त अत्यधिक सूक्ष्म अनावृत्तियों से स्वरूपानन्द का अनुभव करते हैं। 'चेतोमुखी प्राज्ञ आनन्द को भोगता है' इत्यादि तथा 'मै ऐसा सुख से सोया कि कुछ जान नहीं सका' आदि वाक्यों द्वारा अचेत पुरूष सोकर उठने के उपरान्त अपने पूर्वानुभव सुख को प्रकट करता है।

व्याख्या -1. चैतन्यप्रदीप्ताभिः-समष्टि तथा व्यष्टि चैतन्य से प्रदीप्त अज्ञानवृत्तियों से स्वप्न एवं जाग्रदवस्था में अन्तःकरण में रूप विकसित होने वाली ये अज्ञानवृत्तियॉ ही होती है। ये चिदात्मा से प्रतिबिम्बित होकर इनमें आनन्दानुभूति कराने की क्षमता आती हैं। ये चिदात्मा के चैतन्य से प्रकाशित होती हैं।

2.**अज्ञानवृत्तिभिः**-अन्तःकरण की वृत्तियों से अनुभूति तथा भोग स्वप्न और जाग्रत अवस्था में न होकर सुषुप्ति में अन्तःकरण अज्ञान में विलीन हो जाता है अतः सुषुप्ति दशा में अन्तःकरण वृत्तियों में आनन्द की अनुभूति हो ही नहीं सकती।

3**. आनन्दभुक्चेतोमुखः**-चेतोमुखः का अर्थ शाड्करभाष्य के अनुसार 'स्वप्न आदि अवस्था में अज्ञानरूप चेतना के प्रति द्वारस्वरूप होने के कारण चेतोमुख कहा है।' जबकि प्रस्तुत प्रकरणानुकूल बनाने के लिये रामतीर्थ ने विद्वन्मनोरन्जिनी टीका में 'चैतन्य से प्रदीप्त होने वाली अज्ञानवृत्तियों को ही मुख्य रूप से आत्मीय बनाने वाला कहा है'-'चैतन्यदीप्ति अज्ञानवृत्तिप्रधानः।

47. अनयोः समष्टिव्यष्टयोर्वनवृक्षयोरिव जलाशयजलयोरिव वाऽभेदः।।

अनुवाद-वन और वृक्ष अथवा जल और सरोवर के समान इन समष्टि और व्यष्टिरूप अज्ञानोपाधियों का ऐक्य है (अभेद) है।

व्याख्या - इन उपर्युक्त दोनों स्वरूपों में अज्ञानावच्छिन्न चैतन्य (ईश्वर और प्राज्ञ) में वास्तविक भेद नहीं है। भेद है केवल उपाधि के तारतम्य के कारण। जैसे स्थूल जलाशय उपाधि से अविच्छिन्न आकाश और तद्गत प्रतिबिम्बाकाश में वास्तविक भेद नहीं है। उपाधियों से हट जाने पर एक निरवच्छिन्न आकाश रह जाता है।

48.एतदुपहितयोरीश्वरप्राज्ञयोरपि बनवृक्षवच्छिन्नाकाशयोरिव जलाशय जलगतप्रतिबिम्बाकाशयोरिव वाऽभेदः 'एष सर्वेश्वर' इत्यादिश्रुतेः।।

अनुवाद-इन अज्ञानोपाधियों से उपहित ईश्वर और प्राज्ञ भी एक ही हैं जैसे वन में वर्तमान और वृक्षों में वर्तमान आकाश अथवा जल और सरोवर में प्रतिबिम्बित आकाश एक ही है। श्रुतिवचन भी साक्षी हैं-'यह (आत्मा) सबका ईश्वर है'

व्याख्या -1. ईश्वरप्राज्ञयोः अभेदः-ऐसा समझा जाता है कि वेदान्ती लोग ईश्वर तथा जीव में वह अभेद नहीं मानते जो अभेद सामान्यता एकता माना जाता है। यदि ऐसा होता तो अद्वैत वेदान्तियों का -

''जीव ईशविशद्धचित्तया जीवेशयोर्भिदा।

अविद्या तच्चितोर्योगः षड़स्माकमनादयः।।''

यह सिद्धान्त भंग हो जायेगा। अतः ईश्वर और प्राज (जीव) के अभेद को स्वरूपगत ऐक्य ही मानना चाहिये अर्थात् विशेष्य चैतन्य एक रूप् हे और विशेषण ईश्वर एवंज ीव दोनों भिन्न-भिन्न हैं। इस प्रकार के उपाधिगत काल्पनिक भेद से ही ईश्वर और प्राज्ञ में भेद है इसके विपरीत दोनों में अभेद है।

2. **एष सर्वेश्वर**-माण्डूक्य में यह वाक्य इस प्रकार है-एषः सर्वज्ञः एषः अन्तर्यामि एष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् हि भूतानाम् अर्थात् यह प्राज्ञ ही सर्वेश्वर हे, यह सर्वज्ञ है, यह अन्तर्यामि है और सब जीवों की उत्पत्ति तथा प्रलय का स्थान है तथा सबका कारण भी है।

49. ननवृक्षतदवच्छिन्नाकाशयोर्जलाशयजलतद् गतप्रतिबिम्बाकाशयोर्वाऽऽ धारभूतानुपहिताकाशवदनयोरज्ञानतदुपहितचैतन्ययोराधारभूत यदनुपहित चैतन्यं तत्तुरीयमित्युच्यते 'शिवमद्वैतं चतुर्थ' मन्यते इत्यादि द्युतेः।।

अनुवाद- वन और वृक्ष में वर्तमान आकाश तथा जल और सरोवर में प्रतिबिम्बत आकाश का आधार उपाधि से रहित महाकाश के समान इन दोनों समुदायगत तथा व्यक्तिगत अज्ञान तथा इन उपाधियें से उपहित दो चैतन्यों (ईश्वर तथा प्राज्ञ) का आधार निरूपाधि शुद्ध चैतन्य है, उसे ही तुरीय नाम से अभिहित किया जात है। श्रुतिवचन से भी स्पष्ट है 'अद्वैत ब्रहा्र को ही चतुर्थ मानते है।

व्याख्या - 1. **आधारभूतानुपहिताकाशवद्**-अनुपहिताकाशवद् का अर्थ है घटाकाश, जलाशयाकाश आदि उपाधियों से रहित आकाश के समान। इसके लिये आधारभूत इसलिये कहा गया है कि-यद्यपि आकाश न तो जल जलाशयों का और न ही वृक्षों का आश्रय है फिर भी आकाश के बिना इन सब (जलाशय-वन) की स्थिति हो नहीं हो सकती।

2. -'**चतुरश्छयताब्रद्यक्षरलोपश्च**' वार्तिक से चतुर शब्द से 'तुरीय' शब्द निष्पन्न होकर 'चतुर्थ' अर्थ देता है। प्राज्ञ-तैजस् तथा विश्व की अपेक्षा तचुर्थ होने के कारण विशद्ध चैतन्य तुरीय कहलाता है। किसी-किसी मत के अनुसार तीन अवस्थाओं सुषुप्ति, स्वप्न तथा जाग्रत की अपेक्षा चतुर्थ होने से

तुरीय कहलाया हे और आपदेव के अनुसार अविद्या-ईश्वर एवं प्राज्ञ की अपेक्षा चतुर्थ होने से तुरीय है। क्योंकि प्रस्तुत ग्रन्थ में इन्ही तीनों का निरूपण किया गया है। शड्करचार्य ने भी प्राज्ञ, तैजस् और विश्व की अपेक्षा से अनुपहि चैतन्य को चतुर्थ प्रतिपादित किया है-'प्रतीयमानपादत्रय रूपवैलक्षण्यात्।'

3. **शिवम्-त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद् भवेद्।**

तेभ्यों विलक्षणा साक्षी चिन्मात्रोऽहम् सदाशिवः।। कैवल्य उप0

आनन्दगिरि-''परिशुद्धं परमानन्दबोधरूपम् इति।।''

4. अद्वैतम्-भेदविकल्परहितम्-शड्करचार्य।

50. इदमेव तुरीयं शुद्धचैतन्यमज्ञानादितदुपहितचैतन्याभ्या तप्तायः पिण्डवदविविक्त सन्महावाकयस्य वाच्यं विविक्त' विविक्त सल्लक्ष्यमिति चौच्यते।।

अनुवाद-लोगों द्वारा जलते हुए लोहे के टुकड़े को आग ही कहने के समान यही चतुर्थ उपाधिरहित शुद्ध चैतन्य, अज्ञानादि एवं उनके उपाधियुक्त दो चैतन्यों के साथ एकत्व व्यबहृत होता है और ये इस अवस्था में अद्वैतप्रतिपादक महावाक्य के वाक्यार्थ होता है, लेकिन व्यष्टि विवक्षा होने पर भी महावाक्यों द्वारा प्रतिपावित एकत्व को लक्षणाश्रय पर लक्ष्यार्थ कहना चाहिये।

व्याख्या तुरीयम्-इसके द्वारा अध्यारोप के विवेचन चित्त के तन्मय हो जाने से कहीं प्रकरण का मुख्य विषय विस्मृत न हो जाय, इसलिये प्रसड्गवश उसको स्मरण दिला रहे हैं। वेदान्त का मुख्य ध्येय है जीव ब्रहा्र की एकता। कहा गया है-**'विषयों जीवब्रहा्रैक्यं शुद्धचैतन्यं प्रमेयं तत्रैव वेदान्तानां तात्पर्यात्।'**

2.**वाच्यलक्ष्यम्**-साहत्यदर्पण में अर्थ को पूर्ण रूप से जानने के लिये तीन शब्दशक्तियॉ है-वे हैं-अभिधा(वाच्य), लक्षणा(लक्ष्यम्) और व्यन्जना। अभिधा से वाकय का अर्थ सीधा सादा अर्थ गम्यमान होने के कारण वाच्य कहलाता है। तथा वाच्य का अर्थ, सीधे अन्वय से ठीक नहीं बैठता तब लक्षणा का आश्रय लेते हैं। जैसा हि साहित्यदर्पण में लक्षणा की परिभाषा बताई गई है-

'मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो यथान्योऽर्थः प्रतीयते।

रूढ़ेः प्रयोजनाद्वासौ लक्षणाशक्तिरर्पिता।'

अभिधा प्रतीयमान अर्थ का बोध होकर, रूढ़ि के कारण मुख्यार्थ से सम्बन्धित अन्य की प्रतीति जिससे होती है, वह लक्षण है जो लक्ष्यार्थ कही जाती है। तप्तायः पिण्डवत् में दाहकता अग्नि का धर्म

है वह लौहपिण्ड में संक्रमण कर गई है अतः अया पिण्ड अपने से सम्बद्ध अग्नि का लक्षणा से बोध कराता है। तप्त अयः पिण्ड का वाच्यार्थ होगा-अयः पिण्ड का अग्नि से अभिन्न प्रतीत होना लक्ष्यार्थ होगा-अग्नि का अयः पिण्ड से भिन्न प्रतीत होना'तत्वमसि' का इस प्रकार वाच्यार्थ होगा-अज्ञानोपहित चैतन्य तथा तुरीय चैतन्य की अभिन्नता। लक्ष्यार्थ होगा अज्ञानोपहित चैतन्य का शुद्ध चैतन्य से भिन्न प्रतीत होना।

4.4 आवरण एवं विक्षेप शक्ति

51. अज्ञानस्यावरणविक्षेपनामकमस्ति शक्तिद्वयम्।।

अनुवाद-इस अज्ञान की आवरण और विक्षेप नामक दो शक्तियॉ है।

व्याख्या -1. आयरणशक्तिःप्रमाता जीव की दृष्टि से सामने पर्दा डालकर सत् चित् तथा आनन्दस्वरूप आत्मा को आवृत्त करने वाली शक्ति को आवरणशक्ति कहते है। जैसा कि सुबोधिनी टीका भी कहती है-

सच्चिदानन्दस्वरूपमावृणोतीत्यावरणशक्तिः।

2. **विक्षेपश**क्तिः-ब्रहा्र से लेकर स्थावर प्राणियों तक सम्पूर्ण नामरूपतामक संसार का (जल में बुलबुले के सदृश) पैदा करने वाली शक्ति विक्षेप शक्ति कहलाती है। सुबोधिनी टीका भी इसी का समर्थन करती है-

'ब्रहा्रादिस्थावरान्त जगत् जलबुछबुदत् नामरूपात्मकं विक्षिपत्ति सृजतीति विक्षेपशक्तिः।

52. आवरणशक्तिस्तावदल्पोऽपि में घोऽनेकयोजनायतमादित्यमण्डलमक्लोक-यितृनयनपथपिधायकतया यथाच्छादयतीव तथाज्ञानं परिच्छिन्नामप्यत्मानमपरिक्ष्छिन्नमससारिणमवलोकयितृबुद्धिपिधायकतयाच्छज्ञयतीवतादृशं सामर्थ्यम्। तदुक्तम्

'घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नचर्कं यथा मन्यते निष्प्रभं चातिमूढ़ः। तथा बद्धवद्भाति यो मूढ़दृष्टेः स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा' इति।

अन्वय -यथा अतिमूढ़ः घनच्छन्नदृष्टिः (सन्)अर्क घनच्छन्मं, निष्प्रभं च मन्यते, था मूढ़ः दृष्टे यः (आत्मा) वद्धवत् भाति, सः नित्योपलब्धिस्वरूपः आत्मा (एब) अहम् (अस्मि)।

अनुवाद-जैसे लघु मेघ खण्ड अनेक योजन तक विस्तृत सूर्य को दर्शक के नयनों के आगे से ढककर उसकी दृष्टि को परिच्छिन्न कर देता है उसी प्रकार सीमित अज्ञान की असीमित, अजन्मा और

असांसारिक आत्मा को आवृत कर देता है, ऐसी (यह) शक्ति है,यही आवरण शक्ति कहलाती हैं। इसीलिये कहा गया है-

'जिस प्रकार मेघ से आच्छन्न दृष्टि वाला मूर्ख व्यक्ति मेघाच्छादित सूर्य को प्रकाश रहित समझता है, उसी भॉति जो मूढ़ साधारण दृष्टिवान् लोगों को जन्ममरणादि बन्धनों से बद्ध प्रतीत होता है, ऐसा वह नित्य उपलब्धिस्वरूप अहम् या आत्मा है।''

व्याख्या -1. आच्छादयतीव- इसका अर्थ है मानो ढक लेता है अर्थात् सत्यरूप में ढ़कता नहीं किन्तु ऐसा आभास होता है ि◌कवह आवृत्त है। यह उद्धरण अद्वैतवेदान्तियों का आत्मा के बन्धन और मोक्ष दशा की अयथार्थता प्रदर्शनार्थ बहुत ही लोकविख्यात है।

2. बद्धवद्भाति-बॅधा हुआ-सा प्रतीत होता है अर्थात् वेदान्तियों की दृष्टि में बन्धन और मोक्ष केवल प्रतीतिमात्र हैं वस्तुतः आत्मा बन्धन और मोक्ष से परे है।

53. **अनवैवावरणशक्त्यावच्छिन्नस्यात्मयः कर्तृत्भोक्तृत्वसुखदुःखमोहात्मकतुच्दसंसारभावनापि सम्भाव्यते यथा स्वाज्ञानावृत्तयां रज्ज्वां सर्पत्वस्म्भावना।।**

अनुवाद- इसी आवरण शक्ति से आच्छन्न आत्मा की कर्तृता, भोक्तृता सांसारिक सुखदुःखत्मक मोहात्मक तुच्छ भावनायें भी अज्ञानावृत्त रस्सी में सर्प होने की सम्भावना में तुल्य आरोपित होती हैं।

व्याख्या -तुच्छ-तुच्छ का शाब्दिक अर्थ 'शून्य' है, लेकिन वेदान्ती लोग संसार को ऐसा (शून्य) नहीं समझते वे उसे सुख-दुःख रूप से प्रतीयमान संसार की दृष्टि से सत् तथा युक्तिपूर्वक विचारकों की दृष्टि से असत् और तत्वविदों की दृष्टि में तुच्छ बताते है।

54. विक्षेपशक्तिस्तु तथा रज्ज्वज्ञानं स्वावृतरज्जौ स्वशक्त्या सर्पादिकमुद्भावयत्येवमज्ञानमपि स्वावृतात्मनि विक्षेपशक्तयाकाशादिप्रपन्चादिमुदभावयति तादृश सामर्थ्यम्। तदुक्तम्-

'विक्षेपशक्तिर्ल्लड्गादिब्रह्राण्डान्तं जगत्सृजेदिति'।।

अनुवाद-विक्षेप शक्ति तो वह है-जो रस्सी विषयक अज्ञानाच्छादिक रस्सी में स्वशक्ति से सर्पादि को उद्भावना के समान अज्ञानावृत्त आत्मा में ही आकाशादि प्रपन्च की उद्भावना कराता हे यह ऐसी शक्ति है। अतः कहा गया है-

विक्षेप शक्ति ही लिड्ग (सूक्ष्म दृष्टि) से लेकर ब्रह्राण्डपर्यन्त संसार की रचना करती है।

व्याख्या - वक्षेपशक्तिर्ल्लड्गाद ब्रह्राण्डान्तं जगत्सृजेत्-इस वाक्य का निर्देश विक्षेप शक्ति तथा आवरण शक्ति दोनों का निर्देश करने के लिये 'दृग्दृश्यविवके' से इस प्रकार किया गया है-

शक्तिद्वयं हि मायया विक्षेपावृत्तिरूपकम्।
विक्षेपशक्तिर्लिङ्गादिब्रह्राण्डान्तं जगत्सृजेत्।।
अन्तदृश्ययोर्भेद बहिश्च ब्रह्रसर्गयोः।
आवृणोत्यपरा शक्तिः सा संसारस्य कारणम्।।

55. शक्तिद्वयवदज्ञानोपपहितं चैतन्य स्वप्रधानतया निमित्तं स्वोपाधिप्रधानतयोपादानं च भवति।।

अनुवाद-दो शक्तियो की अज्ञानोपाधि से युक्त चैतन्य अपने प्रधान अपने प्राधान्य से निमित्त कारण तथा अपनी उपाधि के प्राधान्य से उपादान कारण होता है।

व्याख्या - शक्तिद्वयवद्.....भवति- जिस भॉति एक ही मकड़ी अपने तन्तुरूप कार्य के प्रति चैतन्य प्रधानता के कारण निमित्त कारण होनी है तथा अपने शरीर के प्राधान्य के कारण उपादान कारण भी है। यदि मकड़ी चेतन न हो तो केवल शरीर से तन्तु नहीं बन सकता यदि शरीर न हो तो केवल चैतन्य से ही तन्तु बन सकता। इस प्रकार जालरूपी कार्य मकड़ी की चेतनता तथा उसका (विशिष्ट) शरीर दोनों ही कारण है। लेकिन चेतनांश के प्राधान्य के कारण शरीर निमित्त (कारण) है और वही मकड़ी शरीरप्राधान्य के कारण उपादान कारण भी है क्योंकि शरीर का साक्षात् सम्बन्ध है। इसी प्रकार चैतन्य (ईश्वर) भी अपने चैतन्य प्रधानता के कारण चराचर संसार का निमित्त कारण है तथा अज्ञान रूप उपाधि की प्रधानता के कारण उपादान कारण भी है संसार अज्ञानोत्पन्न है अतः अज्ञान (माया) संसार का उपादान है। अज्ञान आत्मा भी है। अतः मायावी चैतन्य (ईश्वर) को परम्परया संसार का उपादान कारण कह सकते हैं, क्योकि मकड़ी की भॉति ईश्वर भी सृष्टि से पूर्व एक, बिना किस साधन के ही अपनी माया के द्वारा सूक्ष्म शरीर भी लेकर ब्रह्राण्ड तक स्थल जगत् की सृष्टि कर देता है। अतः ईश्वर उपादान कारण है तथा इसके प्रधान कारण अज्ञान की अपेक्षा परम्परा से सम्बन्धित ब्रह्रा के उपादान कारण होने पर इसकमें 'ब्रह्रा' के चैतनयत्व नित्यत्व गुण नहीं रह सकते। चैतन्यांश से वह निमित्त कारण है।

56. यथा लूता तन्तुकार्य प्रति स्वप्रधानतया निमित्त स्वशरीरप्रधानतयोंपादानं च भवति।।

अनुवाद-जिस प्रकार एक ही मकड़ी जालरूप कार्य के प्रति चैतन्य प्राधान्य के कारण निमित्त कारण है तथा अपने शरीर के प्राधान्य के कारण उपादान कारण भी है, उसी भॉति अज्ञानोपाधि युक्त आत्मा चैतन्य प्रधानता के कारण समस्त प्रपन्च का निमित्त कारण तथा अज्ञान प्राधान्य के कारण उपादान कारण है।

व्याख्या -यथा.....भवति-यह मकड़ी का उदाहरण उपनिषदों में मूल रूप से इस प्रकार है-

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णाते च।

यथा पृथिव्यामोषध्यः सम्भवन्ति ।।

यथा सतः पुरूषोत्केशलोमानि।

तथाक्षरात्संभवती विश्वम्।।

अर्थात जिस भॉति मकड़ी जाल को बनाती है तथा फिर उसे ग्रहण कर लेती है (निगल जाती है)। जिस प्रकार पृथिवी में औषधियॉ (वनस्पतियॉ) उत्न्पन होती हैं तथा रोम उत्पन्न होते हैं वैसे अक्षर (अविनाशी) ब्रहा्र से यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है।

57. तमः प्रधानविक्षेपशक्तिमदज्ञानोपहितचैतन्यादाकाश आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवी चोत्पद्यते 'तस्माद्वा एतसमादात्मन आकाशः सम्भूत' इत्यादिश्रुतेः।।

अनुवाद-तमोगुण प्रधान विक्षेप शक्तियुक्त अज्ञानोपाधि से उपहित चैतन्य से आकाश, आकाश से वायु से अग्नि, अग्नि स ेजल और जल से पृथिवी उत्पन्न हुई। 'उस आत्मा से आकाश से आकाश उत्पन्न हुआ' यह श्रुतिकथन भी प्रमाण है।

व्याख्या -1. तम;प्रधान- आकाशा आदि तत्वों का कारणभूत अज्ञान में तमोगुण प्रधान होता है। इसका तात्पर्य है कि उसमें सत्व एवं रजस् गुण भी अन्य मात्रा में स्थित रहते है, किन्तु तमोगुण अन्य दोनों गुणों को अभिभूत किये रहता है। इसी से (तमोगुण की अन्य की अपेक्षा प्रधानता होने से) मत;प्रधान कहा जाता है।

2.**आकाश**- वेदान्ती लोग अन्य दार्शनिकों की भॉति आकाशादि को नित्य नहीं मानते अपितु 'उत्पद्यते' के ,द्वारा उत्पन्न होने वाला मानते हैं। यद्यपि इस विषय में 'नन्वाकाशं नात्पद्यते' निरवयवद्रव्यत्वादात्मवदिति' इस वैशेषिक दर्शन के अनुसार, आकाश उत्पन्न नहीं हेा सकता' आक्षेप उठता है किन्तु 'आत्मनः आकाशः सम्भूतः' इस श्रुति से प्रस्तुत आपेख का निराकरण हो जाता है, क्योकि पृथिवी आदि के सद्शः' आकाश भी महत्वयुक्त होने पर भूत है, इसलिये उत्पन्न होता हें, जैसा कि कहा भी है-'आकाशमुत्पद्यते महत्वे सति भूतवान्महापुथिव्यादिवदिति'।

3.**तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाश सम्भूतः**- इसके प्रामाण्य से वैशेषिकों का सिद्धान्त आकाश तथा अन्य चार भूतों को नित्य मानने का आक्षेप बाधित होता हैं तथा साख्य का प्रकृति कारणवाद भी खण्डित हो जाता है। नैयायिकों का परमाणुकारणवाद भी निरस्त है।

4**. अज्ञानोपहितचैतन्यात्**-अशेषविश्व ब्रहा्र से विकसित हुआ है-

(क) 'पुरूष एवं इदं सर्वम्- ऋग्वेद, दशम् मण्डल।

(ख) यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येनं जातानि जीवन्ति0। तै0 उ0

(ग) अहम् सर्वस्य प्रभवः मत्तः सर्वम् प्रवर्तते। गीता 10/8

58. तेषु जाडयाधिक्यदर्शनात्तमःप्राधान्यं तत्कारणस्य। तदानीं सत्वरजसतमांसि कारणगुणप्रक्रमेण तेष्वाकाशादिषूत्पद्यन्ते।

अनुवाद-उसमें जड़ता अधिक दिखाई देने के कारण तमोगुणप्रधान विक्षेपशक्तियुक्त चैतन्य ही उसका कारण है। उस समय उन्ही आकाशादि पन्चभूतों में अपने-अपने साक्षात्कारों के गणधार पर सत्व, रजस् और तम की उत्पत्ति होती है।

व्याख्या -1. **सत्वरजस्तमांसि कारणगुणप्रक्रमेण**-उपादान कारण के सत्वरजस् तथा तमस् तीनों गुण कार्य में विद्यमान रहते हैं, अतः 'जाडयाधिक्यदर्शनात्' अर्थात् जड़ता अधिक होने के कारण कहा गया है। 'जैसे कारण होता है वैसा ही कार्य होता है' इस भारतीय दार्शनिक सिद्धान्त के अनुसार कारणस्थित सूक्ष्म गुण कार्य में अधिक ठोसतर और कठोर होकर अभिव्यक्त होते हैं। विद्वन्मनोरन्जिनी के अनुसार-

कारणस्याव्याकृतस्य ये गुणाः सत्वादयस्तेषां प्रक्रमेण, तान् गुणान् आरभ्य यथाकार्यक्रमं सत्वादिगुणाः सहैव कार्यस्तेषुत्पद्यन्त इत्यर्थः। जैसे-जैसे कार्य उत्पन्न होते जाते है वैसे-वैसे उनके कारणों में रहने वाले सत्व, रजस् तथा तमस् गुण उन कार्यो में उनकी उत्पत्ति के साथ ही उद्भूत हो जाते है। तर्कभाषा में 'कारणगुणप्रकरेण' की व्याख्या इस प्रकार है 'कारणगुणा हि कार्यगुणानारभन्ते।' इस वैशेषिक दर्शन के मत के वाक्य का जो तात्पर्य है वह वेदान्तियों के मत से संगत नहीं बैठता, क्योकि वेदान्त में आकाश आदि उत्पन्न होते है नित्य नहीं होते। वेदान्त के अनुसार 'कारणगुणा हि कार्यगुणानारभनते' का अर्थ 'कारण ही भिन्न-भिन्न कार्यो की आकृति में स्थित होता है, इसलिये कारण स्थित गुण कार्य में भी अनुविद्यमान रहते हैं। होगा।

सांख्य तथा वेदान्त सत्कार्यवाद में आस्था रखते हैं जबकि वैशेषिक तथा न्याय दर्शन आरम्भवाद तथा असत्कार्यवाद में आस्था रखते हैं। वेदान्त के अनुसार कारण ही कार्य के आकार में स्थित होता है।

2.**तेषु जाडयाधिक्यदर्शनात्**-उन (आकाश आदि पन्चमहाभूतो) में जाडय (जड़ता-अचैतन्य) की अधिकता साक्षात् दीख पडती है, अतः उनके कारणस्वरूप अज्ञान में भी जडता होना स्वाभाविक है। जड़ता तमोगुण का धर्म होन के कारण जैसा कि सांख्यकारिका कहती है (गुरू वरणकमेव तमः)अज्ञान तमोगुणप्रधान होता है। रामतीर्थ के कथनानुसार 'अधिक्य' पद भूतो (आकाश आदि)

और उनके कार्यो में चैतन्य की भी अल्पोपस्थिति को सूचित करता है। वाक्यसुधा ' स्पष्ट कहती है-

'अस्ति भाति प्रियम् रूपम् नाम चेत्यंशपन्चकम्।

अद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो ,द्वयम्।।

अभ्यास प्रश्न :

एक शब्द मे उत्तर दिजिए

1- अज्ञान की कितनी शक्तिया होती है।
2- सद् और असद् से अनिर्वचनीय है।

3- अज्ञान आदि सकल जड समूह को क्या कहते है।-

4- चैतन्य को क्या कहते है। - सर्वज्ञ

5- उपहित को कहा जाता है। - उपाधि आरोपित

6- वेदान्तसार मे कोश कितने प्रकार के होते है।
7- सतचित और आनंद किसे कहा गया है।

8- लूता किसे कहते है।
9- तम का अर्थ क्या होता है।

10- आवरण शक्ति का अर्थ क्या है।

4.5 सारांश

रस्सी मे सर्प का आभास जो अज्ञान है वह अज्ञान समष्टि और व्यष्टि दो तात्पर्यो से कहीं एक रूप में और कहीं बहुबचन के रूप मे प्रयुक्त किया जाता है वृक्षो को समुदाय के दृष्टिकोण से बन कहा जाता है उसी प्रकार जल तरंगो के समूह को जलाशय कहा जाता है। ठीक इसी तरह अनेक संख्या मे प्रतीत होने वाला जीव अज्ञानो से युक्त होकर समूह वाला होता हुआ समष्टि की इच्छा से एक होता है। अज्ञान की दो शक्तिया होती है – आवरण तथा विक्षेप। आवरण शक्ति जीव के समक्ष पर्दा डालकर आनन्द स्वरूप आत्मा को ढक देती है इसीलिए इसे आवरण कहा जाता है। ब्रह्म से लेकर चरचर जगत् के प्राणियो तक समस्त नाम रूपात्मक संसार को पैदा करने वाली शक्ति को विक्षेप शक्ति कहते है। जिस प्रकार मेघ से आच्छादित सूर्य को अज्ञान सम्पन्न जीव प्रकाशहीन बतलाता है उसी प्रकार सीमित अज्ञान से असिमित ब्रहम ज्ञान को जीव परिछिन्न कर झूठा बतला देता है। अत: साधारण दृष्टि वाला जीव लोगो को जन्म मरण के बन्धन से भी इसी प्रकार प्रतीत होने लगता है इस प्रकार वह नित्य उपलब्ध होता हुआ अहम है या आत्मा है वेदान्तियो की जो दृष्टि है उसमे आत्मा

बन्धन एवं मोक्ष से परे है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप अज्ञान के स्वरूप क अध्ययन कर आत्मा के विशुद्व स्वरूप के निर्णय को समझा सकते है।

4.6 शब्दावली

अज्ञानावच्छिन्न – अज्ञान से अवच्छिन्न न होने वाला

समष्टि – समुदाय

उपहित – उपाधि द्वारा आरोपित

विशुद्वसत्वप्रधान – ईश्वर मे स्थित माया का स्त्वगुण प्रधान होना। इसका तात्पर्य यह है कि वेदान्त मे सत्वगुण समष्टि ईश्वर मे स्थित अज्ञान के अन्दर रजस एवं तमस् को अभिभूत करके रखता है।

व्यष्टि – श्रुति बचनो मे अज्ञान का अनेक रूप सिद्व होता है इसका अर्थ है वि उपसर्ग पूर्वक अश् धातू से क्तिन् प्रत्यय होने पर ब्यक्ति शब्द बनता है

आनन्द प्रचुरता –जागते और सोते दोना समय सुख और दूख दोनो का अनुभव होता है किन्तु आत्म ज्ञान से परिपूर्ण हो जाने पर जीव को हर समय आनन्द की ही अनुभूति होती है।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 – दो

2 – ब्रहम

3 –अवस्तु

4 – सर्वज्ञ

5 – उपाधि आरोपित

6 – पॉच

7 – ब्रह्म

8 – मकडी

9- अंधकार

10 – ढकना

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- उपनिषद्; भगवद्गीता; गौडपादकारिका; ब्रह्मसूत्र;
- उपनिषद्गीता और ब्रह्मसूत्र पर सांप्रदायिक भाष्य;
- राधाकृष्णन् : इंडियन फिलासफी, भाग 1-2;
- दासगुप्त : हिस्टरी ऑव इंडियन फिलासफी, भाग1
- वेदान्तसार – सदानन्द योगीन्द्र चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी

4.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- उपनिषद्; भगवद्गीता; गौडपादकारिका; ब्रह्मसूत्र;
- उपनिषद्गीता और ब्रह्मसूत्र पर सांप्रदायिक भाष्य;

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1- अज्ञान के स्वरूप को व्याख्यायित कीजिए

2- अज्ञान के स्वरूप पर एक निवंध लिखिए

3- आवरण शक्ति को परिभाषित कर अज्ञान की व्याख्या कीजिए

4- विक्षेप शक्ति के साथ अज्ञान को परिभाषित कीजिए

5- आवरण और विक्षेप शक्ति की समीक्षा कीजिए

इकाई – 5 सूक्ष्म शरीर एवं पंचीकरण

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 सूक्ष्म शरीरोत्पत्ति
5.4 पंचीकरण की प्रक्रिया
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

वेदान्तसार के ग्रन्थावलोकन से सम्बन्धित यह पॉचवी इकाई है। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने वेदान्त की ऐतिहासिकता जानकर मंगलाचरण से लेकर अनुवंध का ज्ञान प्राप्त करते हुए अज्ञान की आवरण एवं विक्षेप शक्तियो का सम्यक अध्ययन किया है। यद्यपि वेदान्तसार पुस्तक में सूक्ष्म शरीर के वर्णन के बाद पंचीकरण का प्रसंग आता है तथापि प्रस्तुत इकाई में पंचीकरण का सक्षिप्त विवरण आपके अध्यनार्थ प्रस्तुत है।

भारतीय दर्शन में अनेक विधाओं मे सृष्टि की प्रक्रिया के अनेक प्रकार से वर्णन किए गये है। आचार्य शंकर की परम्परा से लेकर सदानन्द योगेन्द्र तक जितने वर्णन किए गये उनमें पंचीकरण का स्पष्ट निदर्शन केवल वेदान्त सार मे प्राप्त है। इस ग्रन्थ में पंचीकरण की विधा को अत्यंत तार्किक रूप से प्रस्तुत करते हुए परिभाषित किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप पंचभौतिक जगत् की उत्पत्ति की प्रक्रिया को सम्यक रूप से जानकर विश्लेषित कर सकेंगे साथ ही पंचमहाभूतो की उत्तपत्ति आदि को भली भॉति समझा सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

पंचीकरण की प्रक्रिया से समबंधित इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकेंगे कि

- पंचीकरण का अर्थ क्या है।
- पंचीकरण की परिभाषा क्या है।
- वेदान्तसार में पंचीकरण द्वारा उत्पत्ति की प्रक्रिया क्या है।
- आकाशादि पंचमहाभूतो की उत्पत्ति कैसे होती है।
- महाभूतो का सम्मिश्रण किस प्रकार होता है।

5.3 सूक्ष्म शरीरोत्पत्ति

59. एतान्येव सूक्ष्मभूतानि तन्मात्राण्यपन्चीकृतानि चोच्यन्ते।।

अनुवाद-ये ही सूक्ष्मभूत तन्मात्रा और अपन्चीकृत कहे जाते हैं।

व्याख्या -1. सूक्ष्मभूतानि-इसका, उल्लेख आगे प्रसंग में किया जायेगा। आगे लिखे जाने वाली स्थूलभूतों की अपेक्षा जो सूक्ष्मभूत कहे जाते हैं तथा जाग्रत अवस्था में व्यवहारोचित नहीं होते, वे सूक्ष्मभूत कहे जाते हैं तथा जाग्रत अवस्था में व्यवहारोचित नहीं होते, वे सुक्ष्मभूत कहलाते हैं।

2. **तन्मात्राणि**-ये सूक्ष्मभूत दूसरे भूतों में सम्मिश्रित नहीं होते तथा अपने विशुद्ध स्वरूप में होते हैं। सूख्म दशा में आकाश में केवल रस और पृथिवी में केवल गन्ध ही रहता है। और जब इन पॉचों सूक्ष्मभूतों का पन्चीकरण हो जाता है तब ये स्थूलत्व को प्राप्त कर प्रत्येक (महाभूत) पन्चात्मक हो जाते हैं (प्रत्येक में पॉचों भूतो का अंश रहता है)। विद्वन्मनोरन्जिनी के अनुसार-**तान्येवेति तन्मात्रणिति समासविग्रहः। 'शब्दादितावन्मात्रैकस्वभावान्यपन्चीकृतानि परस्परमसंसुष्टानि चेति स्मृत्यादिषूच्यन्ते।'**

60. एतेभ्यः सूक्ष्मशरीरणि स्थूलभूतानि चोत्पद्यन्ते।।

अनुवाद-इन्हीं से सूक्ष्म शरीर एवं स्थूलभूत उत्पन्न होते हैं।

व्याख्या -1. **सूक्ष्मशरीररणि**-सांख्यमतानुसार सूक्ष्मशरीर के अट्ठारह अवयव होते हैं जबकि वेदान्त सूख्मशरीर को सत्रह भागों वाला मानता है। वेदान्तियों के सूक्ष्मशरीर का विवरण निम्न कारिका प्रस्तुत करती है-

'पन्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम्।

अपन्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माड्क भोगसाधनम्।।

61. सूक्ष्मशरीराणि सप्तदशावयवानि लिड्गशरीराणि।।

अनुवाद-सूक्ष्म शरीर के सत्रह अवयव हैं, ये ही लिड्गशरीर है।

व्याख्या -1. सूक्ष्मशरीरणि- इसकी व्याख्या ऊपर देखें।

2. **लिड्गशरीराणि**-सूक्ष्म शरीर ही लिड्गशरीर कहे जाते हैं, क्योंकि इनके द्वारा प्रत्यगात्मा की सत्ता का ज्ञापन होता है। जिस भॉति सूक्ष्म शरीर के वेदान्त में सत्रह अवयव माने गये हैं वे ही लिड्गशरीर के भी अवयव हुए, क्योंकि सूक्ष्म शरीर की ही दूसरी संज्ञा लिड्ग शरीर है। लिड्गशरीर संज्ञा से अभिहित होने का कारण इस प्रकार है-

''लिड्गयते ज्ञाप्यते प्रत्यगात्मसद्भाव एभिरिति लिड्गानि।

लिड्गानि चे तानि शरीरराणि चेति लिड्गशरीराणि।।

पन्चदशी के अनुसार लिड्ग (सूक्ष्म) शरीर के अवयव है-

बुद्धि, कर्मेन्द्रिय, प्राणपन्चकैर्मनसा धियां।

शरीरं सप्तदशभिः सूक्ष्मं तल्लिड्गमुच्यते।।

किन्तु सांख्यतत्वकौमुदी में इसके निम्नलिखित अवयव कहे गये हैं-

'महदड्कारैकादशोन्द्रियपन्चतन्मात्रर्प्यन्तम्।'

62. अवयवास्तु ज्ञानेन्द्रियपन्चकं, बुद्धिमनसों, कर्मेन्द्रियपनचकं, वायुपन्चकन्चेति।।

अनुवाद-वे अवयव हैं-पॉच ज्ञानेद्रियॉ, बुद्धि एवं मन, पॉच कर्मेन्द्रियॉ तथा पॉच वायु।

व्याख्या -1. ज्ञानेन्द्रियपन्चकम्-इसका तात्पर्य है पन्च (पॉच) ज्ञानेन्द्रियॉ आकाशादि में स्थित सत्वगुणांश से श्रोत्र (कान), वायु के सत्तवगुणांश से त्वक् (त्वचा), तेज के सत्वगुणांश से चक्षु (नेत्र), जल के सत्वगुणांश से रसना (जीभ) तथा पृथिवी के सत्वांश ये घ्राण (नासिका) का उद्भव होता है। कारिका भी है-

'सत्वांशैः क्रमाद्धीन्द्रियपन्चम।

श्रोत्रत्वगक्षिरसनघ्रणांख्यमुपजायते।।

63. **ज्ञानेन्द्रियाणि श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्रणाख्याणि**।।

अनुवाद-श्रोत्र, त्वक् चक्षु, जिह्वा तथा घ्रण ये (पॉच) ज्ञानेन्द्रियॉ हैं।

व्याख्या -1. ज्ञानेन्द्रियाणि ज्ञानेन्द्रियॉ आकाश आदि, भूतों के सात्विक भागों से उत्पन्न होती हैं। शेष इनके विषय में पृष्ठ 92 पर देखें

64.अवयवास्तु ज्ञानेन्द्रियपन्चकं, बुद्धिमनसो, कर्मेन्द्रियपन्चकं, वायुपन्चकन्चेति।।

अनुवाद-ये अवयव हैं-पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ, बुद्धि एवं मन, पॉच कर्मेन्द्रियॉ तथा पॉच वायु।

व्याख्या -1. **ज्ञानेन्द्रियपन्चकम्**- इसका तात्पर्य है पन्च (पॉच) ज्ञानेन्द्रियॅ आकाशादि के सात्विक अंशों से क्रमशः अलग-अलग प्रादुभूर्त होता हैं।

व्याख्या -एतानि.....उत्पद्यन्ते- यही क्रम तैत्तिरीय उपनिषद् का यह वचन भी प्रस्तुत करते हैं-

'तस्माद्वा एतस्मादाकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः।'

65. बुद्धिर्नाम निश्चयात्मिकान्तः करणवृत्तिः।।

अनुवाद-निश्चय करने वाली अन्तःकरण की वृत्ति बुद्धि।

व्याख्या -1. **अन्तः करणवृत्तिः**-आन्तरिक विचारों की (साधकतमं करणम् से करण) करणभूत इन्द्रि अथवा अन्तःकरण कहलाती है। (इसी अन्तरिन्द्रिय में 'मै स्त्री हूँ, मै गृहसथ हूँ' इस भॉति निश्चययुक्त जब वृत्ति उत्पन्न होती है तब उसे बुद्धि कहते हैं।)

2. अन्तःकरण वृत्ति के दो रूप होते हैं-(क) निश्चयात्मिका बुद्धि।(ख) संशयात्मिका वृत्ति मन।

66. मनों नामसङ्कल्पविकल्पात्मिकान्तःकरणवृत्तिः।।

अनुवाद-सङ्कल्प और विकल्प करने वाली (संशय करने वाली) अन्तःकरण की वृत्ति मन है।

व्याख्या -1. **सङ्कल्पविकल्पात्मिकान्तःरणवृत्तिः**- आन्तरिक भावनाओं की करणभूत इन्द्रिय अन्तःकरण में जब ''मैं चिद्रूप हूँ''- ''मैं देह हूँ'' इस प्रकार की संकल्पयुक्त अथवा 'मैं पढू या न पढ़ू-मैं जाऊँ' इस प्रकार की विकल्पात्मक वृत्ति उत्पन्न होती हैं तो इसे मन कहते हैं।

(2) विद्यारण्य स्वामी ने अन्तःकरण के वृत्ति भेद से दो भेद कहे है-

तैरन्तःकरणम् सर्वेवृत्तिभेदेन तद् द्विधा।

मनो विमर्शरूपम स्यात् बुद्धिः स्यात् निष्चयात्मिका।।

67. **अनयोरेव चित्ताहङ्कारयोरन्तर्भावः।।**

अनुवाद-इन्हीं दोनों (बुद्धि और मन) में चित्त ओर अंकार का अन्तर्भाव हो जात है।

व्याख्या -अनयो.....अन्तर्भावः-अनयोः-इन दोनों अर्थात् मन तथा बुद्धि में क्रमशः चित्त का बुद्धि में अन्तर्भाव हो जाता है क्योंकि स्मरणात्मिका चित्त वृत्ति निश्चय रूप ही होता है तथा अहंकार का मन में अन्तर्भाव हो जाता है क्योंकि अहङ्कार भी संकल्प होता है-कहा भी है-

'मनाःबुद्धिरहंकारश्चित्तं करणमन्तरम्। संशयों निश्चयो गर्वसमरणविषया अभी।।'

68. अनुसन्धनात्मिकान्त करणवृत्तिः चित्तम्।।

अनुवाद-अनुसन्धानकत्रीं अन्तःकरण की वृत्ति है।

व्याख्या -अनुसन्धानात्मिकान्तः.....चित्तम्-आन्तरिक विषयों के ग्रहण कर्ता अन्तःकरण में जब अनुसन्धानयुक्त अअर्थात् स्मरणात्मिका वृत्ति उत्पन्न होती है तो वह चित्त कहलाती है।

69. **अभिमानात्मिकान्तःकरणवृत्तिः अहङ्कारः।।**

अनुवाद-अभिमान करने वाली अन्तःकरण की वृत्ति अहंकार है।

व्याख्या _ अभिमानात्मिकान्त .....अहङ्कारः-पूर्वकथित अन्तःकरण में जब 'मैं बड़ा निपुण हूँ।' इस प्रकार की गर्वात्मक, (अभिमानरूपा) वृत्ति का प्रादुर्भाव होता है त बवह वृत्ति अङ्कार कही जाती है।

70**. एते पुनराकाशादिगतसात्तिवकाषेभ्यो मिलितेभ्य उत्पद्यन्ते।।**

अनुवाद-ये चारों (बुद्धि, मन चित्त और अहंकार) आकाशादि में स्थित सात्तिवक अंशों के मिश्रित अंशों से पैदा होते हैं।

व्याख्या -मिलितेभ्यः-मन, बुद्धि, (इन्ही में अन्तर्भूत होने वाले चित्त तथा अहड्कार) ये सभी (पॉचों) ज्ञानेन्द्रियों के साथ आवश्यक हैं क्योंकि बिना मन बुद्धि के सहयोग के ज्ञानेन्द्रियॉ अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने में समर्थ नहीं हो सकती। इसीलिये वे पॉचों भूतों के मिलित (मिले हुए) अंशों से उत्पन्न होने वाले कहे गये है।

71. एतंषां प्रकाशात्मकत्वात्सात्विकांशकार्यत्वम्।।

अनुवाद-इन (चारों) के प्रकाशयिता होने के कारण उन्हें सात्यिक अंशों से प्रादुर्भूत कहा जाता है।

व्याख्या -प्रकाशात्मकत्वात्-पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ, मन तथा बुद्धि से सात सत्वांश से उत्पन्नं होने के कारण सत्वगुणधर्म प्रकाश से युक्त हैं इसी से ये सत्वगुण का कार्यत्व है क्योंकि सत्वगुण प्रकाश माना गया है। गीता में सत्वगुण प्रकाशक कहा गया है-

'तत्र सत्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम्।'

72. इयं बुद्धिर्ज्ञानेन्द्रियः सहिता विज्ञानमयकोशो भवति।।

अनुवाद-(पन्च)ज्ञानेन्द्रियों सहित यह बुद्धि विज्ञानमय कोश कहलाती है।

व्याख्या - विज्ञानमयकोशः-पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ (श्रोत, त्वग्, चक्षु रसना तथा घ्राण)तथा छठी बुद्धि समवेत रूप में विज्ञानमयकोश रूप में परिभाषिक शब्द प्रयुक्त होता है।

73. अयं कर्तृत्वभोक्तृत्वसुखित्वदुःखित्वाद्यभिमानित्वेनेहलोकपरलोकगामी व्यवहारिको जीव इत्युच्यते।।

अनुवाद-यही (विज्ञानमय कोश से युक्त चैतन्य) कर्ता, उपभोक्ता, सुख, सम्पन्न, दुःखी होना आदि कारणों से (तथा) अभिमानत्व, के कारण इस लोक और परलोक का आवगमन कर्ता व्यवहारिक अवस्था में जीव कहलाता है।

व्याख्या -कतृत्व.....परलोकगामी-कर्ता होने तथा भोग करने वाला होना नित्यानन्द रूप अपरिच्छिन्ननिष्क्रिय होने पर भी विज्ञानमय कोश अभिमानी होने के कारण ईलोक परलोक में गत व्यवहारिक जीव के लोक-परलोक गमनरूप व्यवहार का हेतु बन जाता है।

74. **मनस्तु ज्ञानेन्द्रियै सहितं सन्मनोमयकोशो भवति।।**

अनुवाद-ज्ञानेन्द्रिय से युक्त मन को मनोमय कोश कहा जाता है।

व्याख्या -1. मनोमयकोशः-पॉच ज्ञानेन्द्रियों समेत मन के मिल जाने पर मनोमय कोश कहलाता है-यही वात पन्चदशी में निम्न प्रकार से कही गई है-

''सात्विकेधीन्द्रियैः साकं विमशत्माः मनोमयः।

तैरवे सांकं विज्ञानमयो धीर्निर्शात्माः मनोमयः।।

अर्थात् विमशीत्मा मन (पन्चमहाभूतों के) सत्वगुणाशों से उत्पन्न हुई इन्द्रियों से सुयुक्त होकर मनोमय कोश होता है। निश्चमहाभूतों के सत्वगुणांशों से उत्पन्न हुई इन्द्रियो से संयुक्त होकर मनोमय कोश होता है। निश्चयात्मिका बुद्धि उन्हीं ज्ञानेन्द्रियों से मिलकर विज्ञानमय कोश बन जाती है।

75. कर्मेन्द्रियाणि वाक्पाणिपादपायूपस्थाख्याणि।।

अनुवाद-याणी, हाथ पैर, पायु तथा उपस्थ-ये (पॉच) कर्मेन्द्रियॉ है।

व्याख्या - कर्मेन्द्रियाणि-ज्ञानेन्द्रियों के समान कर्मेन्द्रियॉ (वाणी, हाथ, पैर, पायु तथा उपस्थ) भी पन्चभूतों के रजोंऽशों से उत्पन्न हुई हैं इनके क्रमशः विषय है वचन, आदान, गमन, विसर्ग तथा आनन्द। पन्चदशी इसी भौतिकता का समर्थन करती है-

''रजोंऽशैः पन्चभिस्तेषां क्रमात्कर्मेन्द्रियाणि तु।

वाक्पाणिपादपायूपस्थाभिधानानि जज्ञिरे।।''

76. एतानि पुनराकाशादीनां रजोऽशेभ्यः पृथक्-पृथक् क्रमेणोत्पद्यन्ते।।

व्याख्या -ये (पन्चकर्मेन्द्रियॉ) आकाशादि के रजोगुणांशों से अलग-अलग क्रमशः पैदा होती है।

व्याख्या -एतानि...उत्पद्यन्ते-अर्थात् इन इन्द्रियों में आकाशादि के रजोगुणांश से क्रमशः पृथक्-पृथक् आकाश के राजोगुणांश से पायु और पृथिवी के रजोगुणांश से उपस्थ इन्द्रिय का प्रादुर्भाव होता है।

77.वायवः-प्राण, अपान्, व्यान, उदान तथा समान ये (पन्च) वायु है।

व्याख्या -ध्रुतियों में पॉचों वायुओ का विवरण मिलता है जो आगे कहा जायेगा।

78. प्राणों नाम प्राग्गमनवान्नासाग्रस्थानवर्ती।।

अनुवाद-समाने गमन वाली नाम के अग्रभाग में वर्तमान रहने वाली वायु 'प्राण' है।

व्याख्या -प्राणः-नासिका के अग्रभाग में इसकी उपलब्धि साक्षात् रूप से होती है तथा नाक पर हाथ लगाने से इसका प्रत्यक्ष अनुभव भी होता है, इसी से इसे नासाग्रसथानवर्ती कहा गया है तथापि 'प्राणो' हृदये' में इसे हृदय में रहने वाला कहा गया है।

79. **अपानों नामावाग्गमनवान् पाय्वादिस्थानवर्ती।।**

अनुवाद- निम्न गमन वाली पायु (गुदादि) स्थनों में रहने वाली 'अपान' वायु है।

80. **व्यानों नाम विष्वग्गमनवानखिलशरीरवर्ती।।**

अनुवाद-सब ओर गमन करने वाली सम्पूर्ण शरीर में वर्तमान रहने वाली वायु ध्यान है।

व्याख्या -व्यानों.....वर्ती-छान्दोग्य उपनिषद् के मतानुसार यह प्राण और अपान की सन्धि है- 'अथ यः प्राणापानयों सन्धि सः व्यानः।' इसका उपयोग वीर्ययुक्त कर्म करते समय किया है। इन्हें मनुष्य प्राण तथा अपान को रोक कर ही करता है। इसी से व्यान वायु प्राण और अपान की नियमनकत्रीं भी कही गई है।

81. **ऊदानो नाम कण्ठस्थानीय उर्ध्वगमनवानुत्क्रमणवायुः।।**

अनुवाद- ऊपर की ओर चलने वाली कण्ठ स्थानीय वायु उदान वायु है।

व्याख्या **-उदान-'चक्षुषो वा मूर्ध्नो वान्येभ्यो-वा शरीरदेशेभ्यः'** श्रुतिवाचनानुसार उत्क्रमण ऊपर की ओर जाने वाली वायु, आँख, शरीर या अन्य किसी शरीर के अवयव से निकाली, जाने वाली होने से किसी भी द्वार से जाते समय कण्ठ से अवश्य निकलेगी, अतः इसे कण्ठस्थानीय कहा गया है।

82. समानो नाम शरीरमध्यगताशितापीतान्नादिसमीकरणकरः।।

अनुवाद-शरीर में खाये-पिये हुए अन्नादि का अच्छी प्रकार परिपाक (समीकरण) करने वाली वायु समान है।

83. **समीकरणन्तु परिपाककरणं रसरूधिरशुक्रपुरीषादिकरणमिति यावंत्।।**

अनुवाद-रस, रक्त और शरीर के अन्य पदार्थो में (भोज्य पेय पदार्थो का) परिवर्तन करना और भोजन आदि का पाचन करना 'समीकरण' है।

व्याख्या -समीकरणम्-पेट में प्राप्त हुए अन्न से सार अंश को पृथक् करके रस रक्त आदि सात धातुओं (रसों) के रूप में पचाकर प्रविर्तित कर देना तथा वर्ज्याश को मलादिरूप में बाहर निकाल देना ही समीकरण है।

84**. केचित्तु नागकूर्मकृकलदेवदत्ताधनन्जयाख्याः पन्चान्ये वायवः सन्तीति वदन्ति।।**

अनुवाद-कुछ लोग तो (सांख्यमत वाले) 'नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त तथा धनन्जय नामक पाँच अन्य वायु हैं' ऐसा कहते हैं।

व्याख्या -केचित्तु.....वदान्ति-इन अतिरिक्त पन्चवायुओं का वर्णन गोरक्षाशतक तथा मनसोल्लास में भी किया गया है।

85. तत्र नाग उद्गिरणकरः। कर्म उन्मीलनकरः। कृकलः क्षुत्करः। देवदत्तो जृम्भणकरः। धनन्जयः पोषणकरः।।

अनुवाद-उनमें (अन्य पाँच वायुओं में) वमनादि कराने वाली वायु नाग, पलकों को खोलने तथा बन्द करने वाली कूर्म, बुभुक्षा उत्पन्न करने वाली कृकल, जम्भाई उत्पन्न करने वाली देवदत्त तथा शरीर को पोषण करने वाली वायु धनन्जय है।

व्याख्या -धनन्जयः- मानसोल्लास तथा गोरक्षाशतक के अतिरिक्त पन्चवायु वर्णन से इस वायु का स्वरूप कुछ और स्पष्ट होता है। यह सारे शरीर को पुष्ट करने के साथ ही मरने पर शरीर को छोड़ती नहीं।

86. एतेषां प्राणादिष्वन्तर्भावात्प्राणादयः पन्चैवेति केचित।।

अनुवाद-कुछ लोगों के अनुसार (वेदान्तमतानुसार) इन नागादि पाँच वायुओं का इन्ही प्राणादि पांच वायुओं में अन्तर्भाव हो जाने से ये पाँच हैं (न कि दस)।

87. एतत्प्राणादिपन्चकमाकाशादिगतरजोंऽशेभ्यों मिलितेभ्येः उत्पद्यन्ते।।

अनुवाद-ये प्राणादि पाँच वायु आकाशदि में स्थित रजोगुणमिश्रित अंशों से उत्पन्न होती है।

व्याख्या -मिलितेभ्यः-ये प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, आकाश आदि के मिश्रित रजोगुणांशों से उत्पन्न कही गई है क्योंकि आपेक्षित हैं।

88. इदं प्राणादिपन्चकं कर्मेन्द्रियैः सहितं सत्प्राणमयकोशो भवति। अस्य क्रियात्मकत्वेन रजोंऽशकार्यत्वम्।।

अनुवाद-ये प्राणादि पाँच वायु कर्मेन्द्रियों के सहित प्राणमयकोश कहलाती हैं। इनके क्रियात्मक होने के कारण इन्हें रजोगुण के अशों से उत्पन्न कहा जाता है।

व्याख्या -रजोंऽशकार्यत्वम्-प्राणमय कोश को रजोंऽशकार्यत्वम् कहा है-सांख्यमत तथा गीता के अनुसार क्रमशः प्रेरक तथा क्रियाशील रजोगुण बताया गया है-**'रजः कर्मणि भारत'** गीता तथा

उपष्टम्भकं चलं च रजः (सांख्यकारिका) अतः प्राणमयकोश क्रियाशील है क्योंकि वह रजोऽश का कार्य है।

89. एतेषु कोशेषु मध्ये विज्ञानमयो ज्ञानशक्तिमान् कर्तृरूपः। मनोमय इच्छाशक्तिमान् करणरूपः। प्राणमयः क्रियाशक्तिमान् कार्यरूपः। योग्यत्वादेवमेतेषां विभाग इति वर्णयन्ति। एतत्कोशत्रयं मिलितं। सत्सूक्ष्मशरीरमित्युच्यते।।

व्याख्या -इन तीनों कोशों में से विज्ञानमयकोशज्ञान शक्तिसम्पन्न कर्त्तारूप है। मनोमयकोश इच्छाशक्तियुक्त करणरूप है तथा प्राणमयकोश क्रियाशक्ति सम्पन्न कार्यरूप है। पृथक्-पृथक् तीनों की (अपनी-अपनी) योग्यता के अनुरूप ही इनका (कर्ता, करण तथा कार्य आदि द्वारा) विभाग वर्णन किया जाता है। ये तीनों कोश मिलकर 'सूक्ष्मशरीर' कहे जाते हैं।

व्याख्या -ज्ञानशक्तिमान् कर्त्तारूपः- विज्ञानमयकोश चैतन्य के परम सन्निकर्ष के कारण ज्ञानाशक्तिसम्पन्न होता है तथा वर्तमान भोक्ताभाव आदि का अभिमानी होने के कारण इसका कर्तारूप है। जैसा कि वृहदारण्यक उपनिषद् के वचनों से भी पता चलता हैं-

-योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योति पुरूषः।'

जे प्राणों में हृदय (बुद्धि)के अन्दर रहने वाला विज्ञानमय ज्योतिस्वरूप पुरूष हैं।

2. **इच्छाशक्तिमान् करणरूपः**-मनोमय कोश इच्छाशक्तियुक्त होता है। विवके का साधनभूत होने से इच्छा का करण होने सिद्ध है। आत्मा इन्द्रिय तथा विषय का सान्निध्य होने पर भी ज्ञान होना अथवा न होना मन पर आश्रित होता है। 'अन्यत्रमान अभ्वम् नादर्शमन्यत्रमना अभूवना श्रौषमिति मनसा ह्येव पश्यति मनसा श्रृणोति। प्रस्तुत श्रतिवचनम् 'मेरा मन अन्यत्र था, इससे मैंने देखा नहीं, मेरा मन अन्यासक्त था अतः सुन नहीं सका, वह मन से ही देखता है तथा मन से ही सुनता है' इस प्रकार मन को ही कारणरूप है। वृ0 उप0 कहता है-'कामः संकल्पों विचिकित्सा।'

3. **क्रियाशक्तिमान कार्यरूपः**-प्राण्मय कोश क्रियाशक्तिमान् होने से कार्यरूप हैं जैसे कि श्रुति भी इसके कार्यरूपत्व को प्रमाणित करती है-'तौ मिथुनं समैतां ततः प्राणोऽजायत।' इसके मिथुनीभूत (पारस्परिक संसर्गयुक्त) वाणी और मन से उत्पन्न होने से प्राणमयकोश कार्यरूप सिद्ध होता हैं।

90. **अत्राप्यखिलसूक्ष्मशरीरमेकबुद्धिविषयतया वनवज्जलाशयवद्धा समष्टिरनेकबुद्धिविषयतया वृक्षवज्जलवद्धा व्यष्टिरपि भवति।।**

अनुवाद-यहाँ पर भी सकल चराचर् के सूक्ष्म शरीर, एकत्व के ज्ञान का विषय होने के कारण वन अथवा जलाशय के समान समष्टि (समुदाय रूप), अनेकत्व के ज्ञान का विषय होने के कारण वृक्ष जल के समान व्यष्टि भी होते हैं।

व्याख्या -अत्रापि.....भवति-सम्पूर्ण चराचर अनन्त सूक्ष्मशरीरों को शरीररूपेण एक मानकर एकत्व की विवक्षा में एकता के ज्ञान का विषय होने के कारण वन अथवा जलाशय के समान समष्टि तथा उन्ही को अलग-अलग अनेक मानकर अनेक जीवों की विवक्षा होने पर स्वस्वबुद्धि का विषय होने के कारण वृक्ष होने के कारण वृक्ष अथवा जल के समान व्यष्टि पद कहते हैं।

(क) अनन्तं वै मनो अनन्ता विश्वेदेवाः। वृ0 उ0

(ख) वायुरेव व्यष्टिः वायुरेव समष्टिः।वृ0उ0

91. एतत्समष्ट्युपहितं चैतन्यं सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भः प्राणश्चेत्युच्यते सर्वत्रानुस्यूतत्वाज्ज्ञानेच्छाक्रियाशक्तिमदुपहितत्वाच्च।।

अनुवाद-इस समष्टि (समुदाय)उपाधि से युक्त चैतन्य को सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भ तथा प्राण कहते है क्योंकि (यह) सर्वत्र व्याप्त तथा (तीनों कोशों से युक्त होने के कारण) ज्ञान इच्छा तथा क्रिया से सम्पन्न है।

व्याख्या - 1. हिरण्यगर्भ-**'हिरण्यस्य गर्भः'** वृत्ति के अनुसार ज्ञानशक्तिमान् विज्ञानमय कोश ही हिरण्मय अण्डा है, उससे ढका होने के कारण उसके अभिमानी चैतन्य को हिरण्यगर्भ कहा जाता है। श्रुतिवाक्यों में यह सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ तथा प्राण आदि अभिधानों से विख्यात है-**'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे**।'

2. मनुस्मृति में स्वर्ग के अण्डे से ब्रह्ा के उत्पन्न होन की कथा है-

तदण्डमभवत् हैमम् सहस्रांशुसमप्रभम्।

तस्मिन् जज्ञे स्वयम् ब्रह्ासर्वलोकपितामहः।।

92. अस्यैषा समष्टिः स्थूलप्रपन्चापेक्षया सूक्ष्मत्वात् सूक्ष्मशरीर विज्ञानमयादिकोशत्रयं, जाग्रद्वासनामयत्वात्स्वप्नोष्त एवं स्थूलप्रपन्चलयस्थानमिति चोच्यते।।

अनुवाद-इस (हिरण्यगर्भ) की यह समष्टि स्थूलप्रपन्च की अपेक्षा सूक्ष्म होने के कारण सूक्ष्मशरीर, विज्ञानमयादि तीनों कोशों वाली, जाग्रत अवस्था में वासनायुक्त होने के कारण स्वप्न, इसी कारण स्थूलप्रपन्च के लय का स्थान कही जाती है।

विवृत्ति-जाग्रद्वासनामयत्वात्स्वप्नः-जागरण अवस्था के विषयानुभावों रूपी वासनाओं से बने होने के कारण चित्त में वासनायें ही स्वप्न को उत्पन्न करती है- इसी कारण स्वप्न केवल वासनामय

होता है। इस सूक्ष्मशरीर को भी जागरणावस्था के विषयानुभवरूप वासनाओं से उत्पन्न होने के कारण 'स्वप्न' की जाता है।

93. एतद्व्यष्टयु पहितं चैतन्यंतैजसो भवति तेजोमयान्तः करणोपहितत्वात्।

अनुवाद-यह व्यष्टि की उपाधि से युक्त चैतन्य तेजोमय अन्तःकरण की उपाधि से युक्त होने के कारण 'तैजस' कहलाता है।

व्याख्या -तेजोमय-पूर्व प्रसंग्रों में आन्तरिक इन्द्रियों को भूतो में मिलिताशी से बना हुआ कहने के पश्चात् तेजोमय कहना केवल तेज की प्रधानता को सूचित करता है।

संस्कृत में **'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति'** (जिसका प्राधान्य होता है उसी के नाम से वह व्यवहित किया जाता है) इसी के आधार पर यहाँ तेजोमय कहा गया है।

94. **अस्यापीयं व्यष्टिः स्थूलशरीरापेक्षया सूक्ष्मत्वादिति हेतोरेव सूक्ष्मशरीरं विज्ञानमयादिकोशत्रयं जाग्रद्वासनामयत्वात्स्वप्नोऽत एव स्थूलशरीरलयस्थानमिति चोच्यते।।**

अनुवाद-इसकी भी यह व्यष्टि सथूलशरीर की अपेक्षा सूक्ष्म होने के कारण सूक्ष्मशरीर विज्ञानामयादि तीन कोशों से सम्पन्न, चैतन्यानूभूत अवस्था की वासना से युक्त होने के कारण स्वप्न, इसी कारण स्थूलशरीर के विषय का स्थल कहलाती है।

95. एतौ सूत्रात्मतैजसो तदानीं मनोवृत्तिभिः सूक्ष्मविषयाननुभवतः प्रविविक्तभुक्ततैजस इत्यादिश्रुतेः।।

अनुवाद- उस समय (स्वप्नावस्था में) ये दोनों सूत्रात्मा तथा तेजस मनोवृत्तियों से (वासनामय शब्दादि) सूक्ष्मविषयों का अनुभव करते हैं। श्रुतिवचन भी है-**'तैजस सूक्ष्म भोक्त है।**''

व्याख्या -मनोवृत्तिभिः सूक्ष्मविषयानुभवतः- निद्रादि दोषों के कारण अन्तरिन्द्रिय में अदृष्यादिजागरित संस्कारों के सहयोग से तदनुरूपवृत्तियाँ चैतन्यगत अविद्याशक्ति से विषयाकार धारण करके उन वृत्तियों द्वारा दोनों (ससूत्रात्मा तैजस) जागरणावस्था की वासनाओं में उद्भूत सूक्ष्मविषयों की अनुभूति करते हैं।

96. अत्रापि समष्टिव्यष्टयोस्तदुपहितसूत्रात्मतैजसयोर्वनवृक्षवत्तदवच्छिन्नाकाशवच्च जलाशयजलवत्तद्गतप्रतिबिम्बाकाशवच्चाऽभेदः।।

अनुवाद-यहा पर भी समष्टि और व्यष्टि की तथा उन दोनों की उपाधि से युक्त सूत्रात्मा तैजस की, वन

और वृक्ष तथा उनसे अविच्छिन्न आकाश की तरह और सरोवर एवंज ल तथा उसमें प्रतिबिम्बित आकाश की भाँति अभिन्नता है।

व्याख्या -समष्टिव्यष्टयोरभेदः-यहाँ समष्टि तथा व्यष्टि में अभेद (ऐक्य) उदाहरणों द्वारा प्रतिपादित किया है। अर्थात् समष्टि ही व्यष्टि है तथा व्यष्टि ही समष्टि है। इस प्रकार दोनों एक ही हैं। इसी का समर्थन वृहदारण्यकोपनिषद् के निम्न वाक्य में हुआ है-

'वायुरेव व्यष्टिर्वायुः।

टीकाकार रामनाथ ने समष्टि और व्यष्टि को क्रमशः सामान्य और विशेष का वाचय माना है। सामान्य और विशेष में अभेद होता है। किन्तु किसी भेद की कल्पना कर पृथक्-पृथक व्यवहार किया जाता है।

97. एवं सूक्ष्मशरीरोत्पत्तिः।।

अनुवाद-इस प्रकार सूक्ष्मशरीर उत्पन्न होता है।

व्याख्या -विज्ञानमय कोश, प्राणमय कोश तथा मनोमय को मिलाकर सूक्ष्म शरीर बनते हैं। इसमें 17 अंग होते है-5 ज्ञानेन्द्रियाँ, 5 कर्मेन्द्रियाँ, 5 वायुऐं, और बुद्धि तथा मनस्। इस शरीर में ज्ञान, इच्छा तथा क्रिया तीनों शक्तियाँ रहती हैं और अपने अनुरूप कार्य करती है।

98. स्थूलभूतानि तु पन्चीकृतों (महाभूतों) को कहते हैं।

व्याख्या -अपन्चीकृत भूत सूक्ष्म स्वरूप् हैं। इससे विकसित जड़ प्रकृति (माया) स्थूल स्वरूप प्राप्त करती है। यही अवस्था पन्चीकृत की अवस्था है।

5.4 पंचीकरण की प्रक्रिया

99. पन्चीकरणं त्वाकाशादिपन्चस्वेककं द्विधा सम विभज्य तेषु दशसु भागेषु प्राथमिकान् पन्चभागान् प्रत्येकं चतुर्धा समं विभज्य तेषां चतुर्णा भगानां स्वस्वद्वितीयार्धभागपरित्यागेन भागान्तुरेषु संयोजनम्।।

अनुवाद-आकाशादि पाँच महाभूतों में से प्रत्येक को समान दो भागों में बाँटकर उन (5×2=10)दस भागों में से प्राथमिक (अर्धाश) पाँच भागों को पुनः चार बराबर भागों में प्रत्येक को विभक्त करके उनकी (1/8 भाग को) अपने-अपने द्वितीयार्ध भाग को छोड़कर दूसरे भागों को मिलाने की प्रक्रिया पन्चीकरण है (अर्थात् आकाश=1/2 भाग आकाश1/8 भाग वायु1/8 भाग अग्नि 1/8 भाग जल भाग पृथ्वी।। इसी प्रकार अन्य महाभूतों का अपने अंश का 1/2 भाग तथा अन्य चार महाभूतों का

1/8 अंश मिलकर पन्चीकृत महाभूत बनता है)।

व्याख्या -पन्चीकरण-सृष्टिविकासार्थ पन्चभूतों का परस्पर सम्मिश्रण ही पन्चीकरण है। इस प्रक्रियानुसार पांच भूतो के प्रत्येक के दो बराबर भाग करके उन-उन भूतों के आधे-आधे भागों में अन्य-अन्य भूतों के आठवें अंश को मिला देने से पन्चीकृत महाभूत बनते हें। अर्थात् पृथ्वी में केवल आधा भाग पृथ्वी का और अवशेष आधे में आकाश, वायु तेज तथा जल का 1/8 भाग साधारणतया रहता है। इसी भाँति अन्य भूतों में भी अपना अर्धाश तथा शेष अन्य का आठवाँ भाग रहता है।

100. तदुक्तम्-

'द्विधा विधाय चैकैकं चतुर्धा प्रथमं पुनः।

स्वस्वेतरद्वितीयांशैर्योजनात्पन्च पन्च ते।। इति।।

अन्वय-प्रथमम् (प्रत्येकं) द्विधा विधाय, पुनः एकैकं चतुर्धा (विधाय) स्वस्वेत्तरद्वितीयांशै योजनात् ते पन्च (एव) भवन्ति।

शब्दार्थ-प्रत्येकम्=आकाश, पृथिवी, जल, वायु, अग्नि इन पाँचों महाभूतों में हर एक को। द्विधा विधाय=दो-दो भाग करके। चतुर्धा विधाय=चार-चार भाग करके। स्वस्तेतरद्वितीयांशैः=अपने-अपने द्वितीय भाग 1/2 को छोड़कर अन्यों के अंशों में अपने अंशों के। योजनात् जोड़ने से। ते=वे आकाशादि पन्चमहाभूत। पन्च=पाँच ही। पन्च=पन्चीकृत हो जाते हैं।

अनुवाद-इसी को यह कारिका इस प्रकार कहती है- प्रत्येक को दो समान भागों में विभक्त करके पुनः पहले अर्धभागों को चार विभागों में बाँटकर भूतों के प्रत्येक अर्धभाग में अपने अंश को छोडकर अन्य भूतों के अर्धाश का चौथा अथवा आठवाँ भाग मिश्रित करने से पाँच (महाभूत), पाँच ही हो जातते हैं।

व्याख्या -इस कारिका को स्पष्ट करने के लिये 'एक-एक रूपये का नोट (पाँच) पाँच व्यक्तियों के पास है यह कल्पना करना अधिक अचित है। प्रत्येक व्यक्ति अपने रूपये को अठन्नियों में भुना ले और एक-एक अठन्नी अपने पास रखकर दूसरी अठन्नी की चार दुअन्नियाँ करा के उन चारों को शेष चार व्यक्तियों को देदे। यही काम पाँच व्यक्तियों ने किया, अपनी-अपनी एक अठन्नी पास रखकर दूसरी अठन्नी की चारों दुअन्नियों को चारों को दे दिया। इस भाँति सबके पास (चार दुअन्नीयों के रूप में आठ-आठ आने और आने कसे फिर एक-एक रूपया हो गया। इस तरह आकाशदि, पाँच महाभूतों को अपना-अपना आधा हिस्सा तथा शेष चार महाभूतों का आठवाँ भाग मिलाकर

पन्चीकृत महाभूत बनते हैं। प्रस्तुत कारिका में यही बात निर्दिष्ट की गई है;) यथा-

पृथ्वी=1/2 पृथ्वी1/8 जल1/8 वायु1/8 आकाश।

। शङ्करचार्य कहते हैं-पन्चमहाभूतानाम् एकैकं द्विधा विभजय चतुर्धा कृत्वा कृत्वा स्वार्धभाग विहाय इतरेषु पन्चधा पन्चीकृतेषु पन्चीकरणम् भवति।

101. अस्याप्रामाण्यं नाशङ्कनीयं त्रिवृत्करणश्रुतेः पन्चीकरणस्याप्युपलक्षणत्वात्।।

अनुवाद-उपनिषद् के त्रिवृत्करण के पन्चीकरण का उपलक्षण होने का कारण इस (पनचीकरण) के

प्रामाण्य मे आशंका नही करनी चाहिए।

व्याख्या – त्रिवृत्करण श्रुते : त्रिवृत्करण का अर्थ है भूतों मे तीन भूतो का ही सम्मिश्रण। पन्चीकरण की प्रामाणिकता की प्रतिष्ठा की समस्या का निराकरण इस प्रकार किया गया है – तीनों भूतो का परस्पर सम्मिश्रण बताने वाली श्रुति केवल निर्देशन मात्र है वस्तुत: यह पंन्चीकरण की ओर संकेत है। छान्दोग्य उपनिषद मे प्रथम अग्नि , अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी की उत्पत्ति कहकर इनके (प्रत्येक के आधे तथा शेष दो के चतुर्थ भाग) त्रवृत्करण द्वारा ही सृष्टि की उत्पत्ति कही गई है – **सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्त्रो देवता अनेन जीवेनात्मानाऽनुप्रविश्य नामरूपेवयाकररवाणि। तथा तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणि इति सेयं देवतेमास्तिस्त्रो देवता अनेनैव जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत्।**

102. पन्चानां पन्चात्मकत्वे समानेपि तेशु च वैशेष्यात्तद्वादस्तद्वाद इति 'न्यायेनाकाशादिव्यपदेशः' सम्भवति।।

अनुवाद-पॉचों (भूतो में) पॉचों के समान भाग मिश्रित होने पर भी प्रत्येक में विशेषांक के आधार पर ही उनके लिये आकाशादि न्यायसंगत व्यवहार होता है।

103. तदानीमाकाशे शब्दोभिव्यन्ज्यते वायौ शब्दस्पर्शावग्नौ शब्दस्पर्शरूपाण्यप्सु शब्दस्पर्शरूपरसा: पृथिवी में शब्दस्पशंरूपरसगन्ध अभिव्यन्जित होते है।

अनुवाद- तभी पन्चीकृत दशा मे आकाश में शब्द , वायु में शब्दस्पर्श, अग्नि में शब्दस्पर्शरूप, जल में शब्दस्पर्शरूरस तथा पृथिवी में शब्दस्पर्शरूपरसगन्ध अभिव्यन्जित होते है।

व्याख्या- अभिव्यक्त हुये पन्चीक़त स्थूलभूतों में क्रमश: उपर्युक्त अभिव्यक्ति होती है।

104. एतेभ्य- पन्चीक़तेभ्य: भूतेभ्यो भूर्भुव: स्वर्महर्जनस्तप: सत्यमित्येतन्नामकानामुपयुपार विद्यमानानामतलवितलसुतलरसातलतलातलमहातलपातालनाकानामधोधो विद्यमानानां लोकानां ब्रह्माण्डस्य तदन्तर्वर्तिधस्थू लशरीरराणां तदुचितानामन्नपानादीनान्चोत्पतिर्भवति।।

अनुवाद- इन पन्चीकृत महाभूतों से भू: भुव: स्व: मह:, जन:, तप:, तथा सत्यम् इत्यादि नामक ऊपर

से भुवनों का, अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल तथा पाताल नामक नीचे के विद्यमान लोकों का ब्रह्माण्ड और उसमें स्थित चतुर्विध स्थूलशरीरों और उनके पोषणार्थ अन्न पानादिकों का प्रादुर्भाव होता है।

व्याख्या- 1. ब्रह्मामण्डस्य- चौदह लोकों को चारों ओर से घेरे हुए लोका-लोक पर्वत के भी बाहर पृथ्वी तथा उससे भी बाहर समुद्रादि को मिलाकर ब्रह्मामण कहा जाता है। जैसा कि बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा है-'ह्यद्वात्रिशतं वे देवरथाह्न यान्ययं लोकस्तं समन्तं पृथिवीं द्विस्तावत् पर्येति तां समन्तं पृथिवीं द्विस्तावत् समुन्द्र: पर्येति।

105. चतुर्विधशरीराणि तु जरायुजाण्डजोद्भिज्जस्वेदजाख्यानि।।

अनुवाद- जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज तथा स्वेदज नामक चार प्रकार के शरीर हैं।

व्याख्या- चतुर्विध शरीराणि-अमरकोश भी इनका (चार प्रकार के शरीरों का उल्लेख इस प्रकार करता है- 'नृगवा। जरायुज:। स्वेदजा: कृमिदंशाद्या: पक्षिसर्पादयोण्डजा:) उद्भिदस्तरूगुल्माद्या: ।

106. जरायुजानि जरायुभ्यों जातानि मनुष्यपश्वादीनि।।

अनुवाद-जरायु से उत्पन्न होने वाले मनुष्य, पशु आदि जरायुज हैं।

107. अण्डजान्यण्डेभ्यो जातानि पक्षिपन्नगादीनि।।

अनुवाद- अण्डों से उत्पन्न होने वाले द्विज (पक्षी) तथा सर्पादि अण्डज हैं।

108. उद्भिज्जानि भूमिमुद्भिद्य जातानि लतावृक्षादीनि

अनुवाद- भूमि को उद्भेद कर उत्पन्न होने वाले लता, वृक्षादि उद्भिज्ज है।

109. स्वेदजानि स्वेदेभ्यो जातानि यूकामशकादीनि।।

अनुवाद- पसीने से उत्पन्न होने वाले जूं तथा मच्छरादि स्वेदज हैं।

110. अत्रापि चतुर्विधसकलस्थूलशरीरमेकानेकबुद्धिविषयतया वनवज्जलाशय वद्वा समष्टिर्वृक्षवज्ज्जवद्वा व्यष्टिरपि भवति।।

अनुवाद- यहॉ पर भी चतुर्विध स्थूलशरीर, एकात्व या अनेकत्व के ज्ञान का विषय होने के कारण वन या सरोवर की भॉति व्यष्टि भी कहे जाते है।

111. एतत्समष्टयु पहितं चैतन्यं वैश्वानरो विराडित्युच्यते सर्वनराभिमानित्वाद्विविधं राजमानत्वाच्च।।

अनुवाद-यह समष्टि से उपरिह चैतन्य, सवंमनुष्याभिमानी तथा विविध रूप से शोभायमान होने के

कारण वैश्वानर तथा विराड् कहा जाता है।

व्याख्या- 1. सर्वनराभिमानित्वाद्-अभिमानी शब्द का वेदान्त में अधिष्ठाता अर्थ किया जाता है। पर नर शब्द केवल मनुष्यों का ही नहीं-प्रत्युत समस्त प्राणियों का उपलक्षणमात्र है तथा 'सर्व' शब्द से 'विश्व ' अभिप्रेत है समस्त प्राणियों के शरीर समूह में 'यह मैं हूं' इस भॉति अभिमान रखने के कारण उसका वेश्वानरत्व है।

112. अस्येषा समष्टि: स्थूलशरीरमन्नविकारत्वादन्नमयकोश: स्थूल भोगयतनत्वाच्च स्थूलशरीरं जाग्रदिति च व्यपदिश्यते।।

अनुवाद-इनकी यह समष्टि स्थूलशरीर, (मात-पिता के खाये)अन्न (से उत्पन्न होने के कारण) का विकार होने के कारण अन्नमयकोश, स्थूल भोग का आश्रय होने के कारण स्थूल शरीर तथा (विषयभोगी होने के कारण) जाग्रत् कहा जाता है।

व्याख्या-जाग्रत्-इन्द्रियों के द्वारा विषयों की प्राप्ति होने से इसकी जाग्रत् कहा जाता है। सुबोधिनी टीका भी इसी का समर्थन करती है-

'इन्द्रियैरर्थोपलब्धेश्च जाग्रदवस्थात्वं घटतो'

जागरणावस्था की इसी परिभाषा को शड्कराचार्य भी मानते हैं। वे कहते हे- 'इन्द्रियैरर्थोपलब्धिर्जागरितम् ।'

113. एतद् व्यष्टयु चैतन्यं विश्व इत्युच्यते सूक्ष्मशरीराभिमातम-परित्यज्य स्थूलशरीरादिप्रविष्टत्वात्।।

अनुवाद-(स्थूल शरीरों की) इस व्यष्टयुपाधि से उपहित चैतन्य, सूक्ष्म शरीरों को बिना त्यागे ही स्थूलशरीरों में प्रवेश करने के कारण विश्व कहलाती है।

व्याख्या-1.स्थूलशरीरादिप्रविष्टत्वात्- यहॉ स्थूल शरीर के वाद आदि शब्द निरर्थक है, क्योंकि शरीर के बाद अन्य कोई स्थूल उपाधि ही शेष नहीं रहती। तथा प्रविष्टत्वात। का अर्थ है सम्पूर्ण शरीर में रहने के कारण ही (जीव) विश्व कहलाता है।

2. विश्व- प्रविष्टत्वात् तथा विश्व यद्यपि दोनों एक ही 'विश्' धातु से निष्पन्न हैं किन्तु प्रविष्टत्वात् की 'विश' धातु 'विश्वभाव' को नहीं कहती है बल्कि वह विश्व (सम्पूर्ण) शरीर में अभिमानी होने के कारण 'विश्व' कहलाती है।

114.अस्याप्येषा व्यष्टि: स्थूलशरीरमन्नयविकारत्वादेव हेतोरन्नमयकोश जाग्रदिति चोच्यते।

अनुवाद- इसकी भी व्यष्टि स्थूलशरीर, अन्नविकार होने के कारण अन्नमयकोश तथा जाग्रत कही जाती है।

115.तदानीमेती,विश्ववश्वानरौदिग्वातार्कवरूणाश्विभि:क्रमान्नियन्त्रितेनस्रोत्रादीन्द्रियपन्च केनक्रमाच्छब्दस्पर्शरूपरसगन्धानामग्नीन्द्रोपेन्द्रयमप्रजापतिभि:क्रमान्नियन्त्रितेनवागादीन्द्रि

यपन्चकेनक्रमाद्वचनादानगमनविसर्गानन्दाश्चन्द्रचतुर्मुखशड्कराच्युतै:क्रमात्सड्कल्पनिश्च याहड्कार्यचैतांश्चसर्वानेतान्स्थूलविशयाननुभवतो जागरितस्थानो बहि:प्रज्ञ: इत्यादिश्रुते:।।

अनुवाद-उस समय में (जाग्रत अवस्था में) विश्व और वैश्वानर दिक्, वायु सूर्य, वरूण तथा अश्विनीकुमारों से क्रमश: नियमित श्रोत्रादि (श्रोत्र त्वक्, चक्षु जिह्वा तथा घ्राण) पांच इन्दियों से क्रमश: शब्द, स्पर्श रूप, रस तथा गन्ध का तथा अग्नि, इन्द्र उपेन्द्र , यम और प्रजापति द्वारा क्रम से नियमित वाणी, हाथ पैर, वायु तथा चन्द्र, ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु द्वारा क्रमश: नियन्त्रित मन, बुद्धि, अहड्कार और चित्त नामक चार अन्तरिन्द्रियों से क्रमश: सड्कल्प निश्चय, गर्व, स्मरणरूपी सब स्थूल विषयों की अनुभूति करते है। इस समय में निम्न श्रुतिवचन प्रमाण हैं-'जाग्रत् अवस्था युक्त (चैतन्य) ही ब्रह्म विषयों से अवगत है।

व्याख्या -1. दिग्वातार्कवरूणाश्विभि:- भागवत् में बताई गई कल्पना के अनुसार इन्द्रियों के अभिमानी देवता की कल्पना मानी गई है।'

116.अत्राप्यनयों:स्थूलव्यष्टिसमष्टयोस्तदुपहितविवश्वैश्वानरयोश्च वनवृक्षवत्तदच्छिन्नाकाशवचच जलाशयजलवत्तद्गतप्रतिबिम्बाकाशवच्च पूर्ववदभेद:।।

अनुवाद-यहॉ पर भी इन दोनों स्थूल व्यष्टि ओर समष्टि में तथा इन दोनों से उपहित विश्व और वैश्वानर में वन और वृक्ष तथा उससे आच्छन्न आकाश के समान एवं जलाशय व तथा जल उसमें प्रतिबिम्बित आकाश की तरह पूर्वोल्लेख के अनुसार ही अभिन्नता है।

व्याख्या- विश्व तथा वैश्वानर रूप स्थूल शरीरों के आकृष्ट चैतन्य ज्ञानेन्द्रिय कमेन्द्रिय तथा अन्त:करणों के द्वारा स्थूल विषयों का भोग करता है। इन दोनों 'में' भी भेद केवल उपाधियों के द्वारा ज्ञात होता है। तात्विक वस्तु तो दोनों में वही एक चैतन्य है।

117. एवं पन्चीकृतपन्चभूतेभ्य: स्थूलप्रपन्चोत्पत्ति:।।

अनुवाद- इस प्रकार पन्चीकृत पॉच महाभूतों से स्थूलप्रपन्च उत्पन्न होता है।

व्याख्या- इस प्रकार कारण, सूक्ष्म तथ स्थूल प्रपन्चों के एक दृष्टि के विषय होने से समष्टि रूप में एक महान प्रपन्च होता है। इन प्रपन्चों में रहने वाले, 'ईश्वर-प्राज्ञं' 'सूत्रात्मा-तैजस्' तथा 'वैश्वानरविश्व' इन सब में कोई वास्तविक भेद नहीं है। देखने में जो भेद है, वह केवल उपाधियों के कारण है।

अभ्यास प्रश्न-

एक शब्द में उत्तर दीजिए।

1. सांख्यमत में सूक्ष्म शरीर के कितने अवयव है-
2. वेदान्तमत में सूक्षम शरीर के कितने अवयव है-

3. लिंग शरीर किसे कहते हैं-
4. महद और आकाश किसके मत में अवयव माने जाते हैं-
5. ज्ञानेन्द्रियों की संख्या कितनी है-
6. घ्राण कौन सी इन्द्रिय है-
7. अभिमान करने वाली अन्तकरण की वृत्ति कौन है-
8. अनुसन्धान कर्तो वृत्ति कौन है-
9. बुद्धि और ज्ञानेन्द्रिय को मिलाने से कौन सा कोश बनता है-
10. पॉच ज्ञानोन्द्रिय को मन से मिलाने पर कौन सा कोश बनता हे-
11. वायु कौन सी इन्द्रिय है-
12. निम्न गमन वाली वायु कहलाती है-
13. कण्डस्थानीय वायु कौन सी है-
14. भोजन परिपाक की वायु कौन सी है-
15. अनन्तं वै मनोअनन्ता विश्वेदवा: यह कथन किसका है-
16. विज्ञानमय, मनोमय और प्राणमयकोश को मिलाकर क्या बनता है-

5.5 सारांश

इन्ही के द्वारा सूक्ष्म शरीर एवं स्थूलभूत की उत्पत्ति हुआ करती है। सूक्ष्मशरीर कहे जाते हैं।उन (आकाश आदि पन्चमहाभूतो) में जाडय (जड़ता-अचैतन्य) की अधिकता साक्षात् दीख पडती है, अतः उनके कारणस्वरूप अज्ञान में भी जडता होना स्वाभाविक है। जड़ता तमोगुण का धर्म होन के कारण जैसा कि सांख्यकारिका कहती है (गुरू वरणकमेव तमः)अज्ञान तमोगुणप्रधान होता है। रामतीर्थ के कथनानुसार 'अधिक्य' पद भूतो (आकाश आदि) और उनके कार्यो में चैतन्य की भी अल्पोपस्थिति को सूचित करता है। वाक्यसुधा ' स्पष्ट कहती है-

'अस्ति भाति प्रियम् रूपम् नाम चेत्यंशपन्चकम्।

अद्यत्रयं ब्रह्ारूपं जगद्रूपं ततो ,द्वयम्।।

ये ही सूक्ष्मभूत तन्मात्रा और अपन्चीकृत कहे जाते हैं। जरायु से उत्पन्न होने वाले मनुष्य, पशु आदि जरायुज हैं। अण्डों से उत्पन्न होने वाले द्विज (पक्षी) तथा सर्पादि अण्डज हैं। भूमि को उद्भेद कर उत्पन्न होने वाले लता, वृक्षादि उद्भिज्ज है। पसीने से उत्पन्न होने वाले जूं तथा मच्छरादि स्वेदज हैं। इस इकाई के पश्चात आप महाभूतो की उत्पत्ति से जुड़े हुए समस्त तथ्यों को बताते हुए पंचीकरण के विधान का स्पष्ट ज्ञान करा सकेगें।

5.6 शब्दावली

विश्व- प्रविष्टत्वात् तथा विश्व यद्यपि दोनों एक ही 'विश्' धातु से निष्पन्न हैं किन्तु प्रविष्टत्वात् की 'विश' धातु 'विश्वभाव' को नहीं कहती है बल्कि वह विश्व (सम्पूर्ण) शरीर में अभिमानी होने के कारण 'विश्व' कहलाती है।

जाग्रद्वासनामयत्वात्स्वप्न:-जागरण अवस्था के विषयानुभावों रूपी वासनाओं से बने होने के कारण चित्त में वासनायें ही स्वप्न को उत्पन्न करती है- इसी कारण स्वप्न केवल वासनामय होता है। इस सूक्ष्मशरीर को भी जागरणावस्था के विषयानुभवरूप वासनाओं से उत्पन्न होने के कारण 'स्वप्न' की जाता है।

त्रिवृत्करण श्रुते : त्रिवृत्करण का अर्थ है भूतों मे तीन भूतो का ही सम्मिश्रण । पन्चीकरण की प्रामाणिकता की प्रतिष्ठा की समस्या का निराकरण इस प्रकार किया गया है – तीनों भूतो का परस्पर सम्मिश्रण बताने वाली श्रुति केवल निर्देशन मात्र है वस्तुत: यह पंन्चीकरण की ओर संकेत है

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अठारह	2. सत्रह	3. सुक्ष्म शरीर	4. सांख्य	5. पॉच ज्ञानेन्द्रिय	6.
7. अहंकार	8. चित्त	9. विज्ञान मय	10. मनोमय	11. कर्मेन्द्रिय	12. अपान
13. उदान	14. समान	15. बृहदारण्यक	16. सुक्ष्म शरीर		

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- उपनिषद्; भगवद्गीता; गौडपादकारिका; ब्रह्मसूत्र;
- उपनिषद्गीता और ब्रह्मसूत्र पर सांप्रदायिक भाष्य;
- राधाकृष्णन् : इंडियन फिलासफी, भाग 1-2;
- दासगुप्त : हिस्टरी ऑव इंडियन फिलासफी, भाग1
- वेदान्तसार – सदानन्द योगीन्द्र चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी

5.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- उपनिषद्; भगवद्गीता; गौडपादकारिका; ब्रह्मसूत्र;
- उपनिषद्गीता और ब्रह्मसूत्र पर सांप्रदायिक भाष्य;

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1- सूक्ष्म शरीर के अवयव पर प्रकाश डालिए।

2- भूतोत्पत्ति पर प्रकाश डालिए।

3- पंचीकरण प्रक्रिया की विवेचना कीजिए।